गाँधीवादी विचार-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों का अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में
पी-एच.डी. (हिन्दी)
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

2004

शोध निर्देशक :
डॉ0 मनुजी श्रीवास्तव
रीडर एवम् अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
बुन्देलखण्ड कॉलेज, झाँसी

अनुसंधित्सु :
प्रदीप कुमार

बुन्देलखण्ड महाविद्यालय, झाँसी
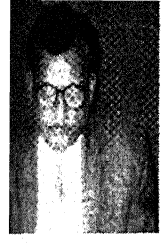
डॉ० मनुजी श्रीवास्तव
रीडर एवम् अध्यक्ष
(हिन्दी विभाग)
बुन्देलखण्ड महाविद्यालय,
झाँसी–284001

फोन न० : (0517) 2447669
1362–ई, सिविल लाइन्स्
गोंदू कम्पाउण्ड
झाँसी

ांक : ....

दिनांक : 03.8.04.

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री प्रदीप कुमार द्वारा बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की हिन्दी विषय की शोध उपाधि हेतु– "**गाँधीवादी विचार-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में, हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों का अध्ययन**" विषय पर किया गया शोध कार्य मौलिक होकर मेरे मार्ग दर्शन में पूर्ण किया गया है।

शोधार्थी ने नियमानुसार उपर्युक्त कार्य हेतु 200 दिवस की उपस्थिति मुझे दी है। मेरी जानकारी एवम् विश्वास के अनुसार यह ग्रंथ–

1. शोधार्थी का स्वयं का मौलिक कार्य है।
2. शोध–कार्य अपने आप में पूर्ण है।
3. विश्वविद्यालय की शोध–उपाधि हेतु निर्गमित अध्यादेशों की प्रतिपूर्ति करता है, और
4. शोध–कार्य भाषा एवम् विषयगत् अध्ययन की दृष्टि से स्तरीय होकर परीक्षकों की ओर प्रेषित किए जाने योग्य है।

डॉ० मनुजी श्रीवास्तव
शोध–निदेशक

आमुख

गाँधीवाद राजनीतिक क्षेत्र में ऐसा सशक्त दर्शन है जो राजनीति में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर बल देता है और इन्हीं मूल्यों के माध्यम से एक ऐसे समाज की क़ल्पना करता है, जो सत्य, न्याय और समता पर आधारित एक आदर्श समाज हो। इस आदर्श समाज की कल्पना महात्मा गाँधी ने राम–राज्य के रूप में की थी, किन्तु महात्मा जी की यह कोरी कल्पना नहीं थी, अपितु उन्होंने उसे व्यवहारिक रूप देने के लिए कुछ सिद्धान्त भी दिये और स्वयं ही उन सिद्धान्तों पर चल कर उनकी सत्यता भी सिद्ध की। इसलिए महात्मा गाँधी अपने युग में ही एक चमत्कारिक व्यक्तित्व के रूप में लोगों के आकर्षण के केन्द्र बन गये थे। एक बड़ा जन–समुदाय उनका अनुयायी भी हो गया था और अपने इन्हीं सिद्धान्तों पर चल कर ही महात्मा गाँधी ने एक सर्वथा नवीन प्रकार के अहिंसक युद्ध के प्रयोग से अंग्रेजी सत्ता को भी परास्त किया तथा भारत को पराधीनता से मुक्ति दिलायी। यही नहीं आने वाली पीढ़ियों के लिए उन्होंने अहिंसा और सत्याग्रह का मार्ग प्रशस्त किया। वस्तुतः स्थूल रूप में अहिंसा और सत्याग्रह को ही गाँधीवाद माना गया है।

यद्यपि गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को गाँधीवाद का नाम दिया जाता है, पर स्वयं गाँधी जी इस प्रकार के किसी वाद को नहीं मानते थे। उन्होंने स्वयं ही लिखा है.... "मैंने शाश्वत सत्यों को अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों से सम्बद्ध करने का प्रयास अपने ढंग से किया है। सत्य और अहिंसा अनादिकाल से चले आ रहे हैं। मैंने केवल यथा संभव इसके प्रयोग किये हैं। आप लोग इसे गाँधीवाद न कहें, इसमें वाद जैसा कुछ भी नहीं है।" फिर भी गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को गाँधीवाद का नाम दिया जाता है। इस गाँधीवाद ने केवल राजनीति को ही प्रभावित नहीं किया, अपितु जीवन के हर क्षेत्र को आन्दोलित किया। साहित्य पर भी गाँधी जी के व्यक्तित्व की और उनके सिद्धान्तों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है।

गाँधी जी के व्यक्तित्व और जीवन का प्रभाव उनके युग के साहित्य में तो पर्याप्त रूप से देखा जा सकता है। परवर्ती साहित्य पर भी उनका प्रभाव परिलक्षित होता है। साहित्य की विभिन्न विद्याओं में यह प्रभाव देखा जा सकता है।

कविता के क्षेत्र में, सर्वश्री मैथलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुमित्रा नन्दन पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी, रघुवीर शरण मिश्र, गोकुलचन्द्र शर्मा इत्यादि कवि गाँधीवादी विचारधारा से काफी प्रभावित हैं।

हिन्दी नाट्य शास्त्र में गाँधीवादी विचारधारा पर्याप्त रूप से दिखाई देती है। यद्यपि गाँधीवादी नाटकों का प्रणयन तो विधिवत् रूप से सेठ गोविन्ददास ने ही किया था। भारतेन्दु जी के कुछ नाटकों में और प्रसाद युग में मिश्र बन्धु लिखित (पूर्व भारत) नाटक में भी गाँधीवादी विचार धारा की झलक दिखाई देती है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध गाँधीवादी विचार दर्शन के परिप्रेक्ष्य में हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों पर उनके प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी मुख्यतः ऐतिहासिक नाटककार के रूप में विख्यात हैं क्योंकि उन्होंने अधिकांशतः ऐतिहासिक नाटकों का ही प्रणयन किया है। सामाजिक नाटकों में उनके तीन नाटक, पौराणिक नाटकों में एक नाटक मिलता है। उनके प्रत्येक नाटक में किसी न किसी रूप में गाँधीवाद के किसी न किसी अंश का प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तुतः साहित्यकार युग से असम्पृक्त होकर साहित्य का सृजन नहीं कर सकता। उस युग की प्रत्येक घटना और विचार धारा साहित्यकार पर अपना प्रभाव डालते हैं। फिर यह कैसे सम्भव था कि हरिकृष्ण प्रेमी अपने युग को प्रभावित करने वाले महापुरूष महात्मा गाँधी से प्रभावित न होते फिर हरिष्कृष्ण प्रेमी जी केवल साहित्यकार ही नही बल्कि एक स्वतंत्रता सेनानी भी थे। स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेकर उन्होंने जेल की भी यात्रा की थी। अतः ऐसे सक्रिय राष्ट्रभक्त और सच्चे साहित्यकार के साहित्य में अपने युग को प्रभावित करने वाले गाँधी जी सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में गाँधीवादी विचार दर्शन आदि को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में सुविधा की दृष्टि से समस्त शोध प्रबन्ध को आठ भागों में विभक्त किया गया है। शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय– "गाँधीवादी विचार दर्शन अर्थ एवम् सिद्धात" के अन्तर्गत गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्तों– सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन तथा पश्चाताप की विवेचना करते हुए महात्मा गाँधी के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवम् आध्यात्मिक विचारों की भी व्याख्या करने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय– "हरिकृष्ण प्रेमी का युग और साहित्य" इस अध्याय के अन्तर्गत हरिकृष्ण प्रेमी के जीवन एवम् साहित्य का परिचय प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक साहित्यकार अपने युग की परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होता है अतः प्रेमी जी पर भी अपने युग का प्रभाव पड़ा, यह देखने के लिए इसी अध्याय के अन्तर्गत प्रेमी जी युगीन परिस्थितियों का भी अध्ययन किया गया है।

गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्त– सत्य, अहिंसा इत्यादि प्रेमी जी के नाटकों में अनेक स्थलों पर व्यक्त हुए है। इन सिद्धान्तों को प्रेमी जी ने कहाँ–कहाँ किस–किस रूप में व्यक्त किया है, इसका अध्ययन शोध प्रबन्ध के तीसरे अध्याय– "प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिफलन" के अन्तर्गत किया गया है।

गाँधी जी ने एक ऐसे समता मूलक समाज की कल्पना की थी जहाँ किसी प्रकार की आर्थिक असमानता न हो इसके लिए उन्होंने सिद्धान्त विकसित किये थे। उनमें से प्रमुख थे– सम्पन्न–विपन्न की एकता, धन का समान वितरण और ट्रष्टीशिप का सिद्धान्त। प्रेमी जी के नाटकों में स्थान–स्थान पर इन सिद्धान्तों की बात दृष्टिगोचर होती है। प्रेमी जी ने इन सिद्धान्तों को किस ढंग से व्यक्त किया है। इस बात का अध्ययन शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय– "प्रेमी जी के नाटकों में समता मूलक गाँधीवादी अवधारणाओं" के अन्तर्गत किया गया है।

पंचम अध्याय– "प्रेमी जी के नाटकों में गाँधावादी आध्यात्मिक विचार" के अन्तर्गत इस तथ्य के अध्ययन का प्रयास किया गया है कि गाँधीजी की विविध धार्मिक, आध्यात्मिक मान्यताओं– ईश्वर, जगत, पुनर्जन्म, कर्मफल इत्यादि का प्रेमी जी के नाटकों में किस रूप में वर्णन है।

शोध प्रबन्ध का छटवां अध्याय है "प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवादी मानवतावाद" के अन्तर्गत महात्मा गाँधी ने जिस आदर्श समाज की कल्पना की थी वह मानवतावाद से परिपूर्ण था। वह व्यक्ति के नैतिक आग्रहों पर आधारित समाज था। उसके इस मानवतावादी दर्शन का प्रतिविम्ब प्रेमी जी के नाटकों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। इस अध्याय के अर्न्तगत इसी तत्व का अध्ययन किया गया है कि प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवादी मानवतावाद किस सीमा तक प्रतिविम्बित हुआ है।

प्रत्येक साहित्यकार अपने युग के अन्य समकालीन साहित्यकारों से प्रभावित होता है अथवा अपना प्रभाव उन पर छोडता है या अपना प्रभाव उन पर अंकित करता है। प्रेमी जी अपने समकालीन गाँधीवादी नाटककारों से कितने प्रभावित थे अथवा उन नाटककारों को किस रूप में प्रभावित किया। इस बात का अध्ययन शोध प्रबन्ध के सप्तम् अध्याय "प्रेमी जी और समसामयिक गाँधीवादी नाटककार" के अन्तर्गत किया गया है।

अष्टम् अध्याय–उपसंहार के अन्तर्गत समग्र रूप से किये गये अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है।

गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्त– सत्य, अहिंसा इत्यादि प्रेमी जी के नाटकों में अनेक स्थलों पर व्यक्त हुए है। इन सिद्धान्तों को प्रेमी जी ने कहाँ–कहाँ किस–किस रूप में व्यक्त किया है, इसका अध्ययन शोध प्रबन्ध के तीसरे अध्याय– "प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिफलन" के अन्तर्गत किया गया है।

गाँधी जी ने एक ऐसे समता मूलक समाज की कल्पना की थी जहाँ किसी प्रकार की आर्थिक असमानता न हो इसके लिए उन्होंने सिद्धान्त विकसित किये थे। उनमें से प्रमुख थे– सम्पन्न–विपन्न की एकता, धन का समान वितरण और ट्रष्टीशिप का सिद्धान्त। प्रेमी जी के नाटकों में स्थान–स्थान पर इन सिद्धान्तों की बात दृष्टिगोचर होती है। प्रेमी जी ने इन सिद्धान्तों को किस ढंग से व्यक्त किया है। इस बात का अध्ययन शोध प्रबन्ध के चतुर्थ अध्याय– "प्रेमी जी के नाटकों में समता मूलक गाँधीवादी अवधारणाओं" के अन्तर्गत किया गया है।

पंचम अध्याय– "प्रेमी जी के नाटकों में गाँधावादी आध्यात्मिक विचार" के अन्तर्गत इस तथ्य के अध्ययन का प्रयास किया गया है कि गाँधीजी की विविध धार्मिक, आध्यात्मिक मान्यताओं– ईश्वर, जगत, पुनर्जन्म, कर्मफल इत्यादि का प्रेमी जी के नाटकों में किस रूप में वर्णन है।

शोध प्रबन्ध का छटवां अध्याय है "प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवादी मानवतावाद" के अन्तर्गत महात्मा गाँधी ने जिस आदर्श समाज की कल्पना की थी वह मानवतावाद से परिपूर्ण था। वह व्यक्ति के नैतिक आग्रहों पर आधारित समाज था। उसके इस मानवतावादी दर्शन का प्रतिविम्ब प्रेमी जी के नाटकों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होता है। इस अध्याय के अर्न्तगत इसी तत्व का अध्ययन किया गया है कि प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवादी मानवतावाद किस सीमा तक प्रतिविम्बित हुआ है।

प्रत्येक साहित्यकार अपने युग के अन्य समकालीन साहित्यकारों से प्रभावित होता है अथवा अपना प्रभाव उन पर छोडता है या अपना प्रभाव उन पर अंकित करता है। प्रेमी जी अपने समकालीन गाँधीवादी नाटककारों से कितने प्रभावित थे अथवा उन नाटककारों को किस रूप में प्रभावित किया। इस बात का अध्ययन शोध प्रबन्ध के सप्तम् अध्याय "प्रेमी जी और समसामयिक गाँधीवादी नाटककार" के अन्तर्गत किया गया है।

अष्टम् अध्याय–उपसंहार के अन्तर्गत समग्र रूप से किये गये अध्ययन को प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध कार्य के प्रारम्भ से परिसमाप्ति तक मुझे अपने पूज्य गुरुवर का पत्र–पत्र पर सहयोग मिला है। मेरे गुरु, मेरे निर्देशक डॉ0 मनुजी श्रीवास्तव अत्यन्त विद्वान विद्या व्यसनी प्रतिभावान एवम् स्नेहिल व्यक्तित्व से युक्त हैं। यह शोध प्रबन्ध जिस भी रूप में सामने है उसका सम्पूर्ण श्रेय पूज्य गुरुवर को है। उनकी विचारोत्तेजक टिप्पणियाँ एवम् स्नेहिल प्रोत्साहन के अविस्मरणीय योग से ही यह विशद कार्य सम्भव हो सका है। उनकी इस महती कृपा के लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं है। मैं आजीवन उनका ऋणी रहूँगा। पूज्य गुरुमाता श्रीमती शशि श्रीवास्तव एवम् मातातुल्य श्रीमती पूर्णिमा श्रीवास्तव ने मुझे सदा प्रोत्साहित किया एवम् उनके स्नेहिल प्रोत्साहन ने मेरे शोध मार्ग की दुरुहताओं को सुगम किया है। मैं उनके प्रति भी अपनी हार्दिक श्रद्धा. एवम् कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।
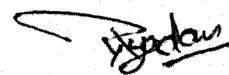
इस शोध प्रबन्ध हेतु जितनी पुस्तकों की आवश्यकता थी उनमें से अधिकांश तो गुरुदेव के निजी पुस्तकालय में ही उपलब्ध हो गईं। बुन्देलखण्ड महाविद्यालय झाँसी एवम् जिला पुस्तकालय झाँसी से भी मुझे अनेक पुस्तकें, सन्दर्भ ग्रन्थ प्राप्त हुये, दोनों ही पुस्तकालयाध्यक्षों का मैं हार्दिक आभारी हूँ।

मेरे दुर्भाग्य ने मुझे बाल्यावस्था से ही पिता की छत्रछाया से बंचित कर दिया, मेरी पूज्य माता श्रीमती राजकुमारी यादव ही मेरी माँ भी हैं एवम् पिता भी उनके अथक संघर्ष से एवम् अपने पूज्य दादाजी श्री भारत सिंह यादव के सहयोग से आज मैं इस मार्ग तक पहुँच सका हूँ। उनके प्रति आभार व्यक्त करना एक औपचारिकता ही होगी। वस्तुतः मैं उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

इस सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध को लिखने में मैंने जिन विद्वानों की पुस्तकों से कुछ ग्रहण किया है, जिनसे कुछ ज्ञानार्जन किया है उन समस्त विद्वानों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

अन्त में इस शोध प्रबन्ध को अत्यन्त धैर्य एवम् मनोयोग से टंकित करने के लिए मैं श्री अरविन्द कुमार जी के प्रति भी अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

शोध छात्र

P.Yadav

प्रदीप कुमार

अनुक्रमणिका

गाँधीवादी विचार–दर्शन के परिप्रेक्ष्य में हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों का अध्ययन

प्रथम अध्याय

गाँधीवादी विचार–दर्शन, अर्थ एवम् सिद्धान्त

(अ) गाँधीवाद का अर्थ एंवम् आधारभूत सिद्धान्त

1.सत्य

2.अहिंसा

3.सत्याग्रह एवम् इसके विभिन्न रूप

(i) असहयोग | (ii) सविनय अवज्ञा आन्दोलन
(iii) उपवास | (iv) हिज़रत
(v) धरना | (vi) हड़ताल
(vii) सामाजिक बहिष्कार

4.हृदय परिवर्तन

5.पश्चाताप

(ब) समतामूलक गाँधीवादी अवधारणा

1.सम्पन्न–विपन्न की एकता

2.धन का समान वितरण

3.ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

(स) गाँधी जी के धार्मिक एवम् आध्यात्मिक विचार

1. ईश्वर | 2. जगत

3. मानव | 3. पुनर्जन्म

4. कर्मवाद

(द) गाँधीवादी मानवतावाद

1.विश्व बन्धुत्व

2.जीव दया

3.दलित बन्धु के प्रति करुणा

4.सुधार की भावना

5.धार्मिक एकता

6.साम्प्रदायिक एकता

7.राष्ट्रीय एकता

प्रथम-अध्याय

गाँधीवादी विचार–दर्शन, अर्थ एवम् सिद्धान्त

अ. गाँधीवाद का अर्थ एवम् आधारभूत सिद्धान्त

(1). गाँधीवाद का अर्थः–

गाँधीवाद राजनीतिक क्षेत्र में एक ऐसा सशक्त दर्शन है जो राजनीति में नैतिक और मानवीय मूल्यों पर बल देता है और इन्ही मूल्यों के माध्यम से वह एक ऐसे समाज की कल्पना करता है, जो सत्य, न्याय और समता पर आधारित एक आदर्श समाज हो। इस आदर्श समाज की कल्पना महात्मा गॉधी ने राम राज्य के रूप में की थी। महात्मा जी की यह कल्पना कोरी कल्पना ही न थी, अपितु उन्होंने इसे व्यवहारिक रूप देने के लिए कुछ सिद्धान्त भी दिये और स्वयं ही उन सिद्धान्तों पर चलकर उनकी सत्यता भी सिद्ध की। इसी लिए महात्मा गॉधी अपने युग में ही एक चमत्कारिक व्यक्तित्व के रूप में लोगों के आर्कषण के केन्द्र बन गये थे। एक बड़ा जनसमुदाय उनका अनुयायी भी हो गया था और अपने इन्हीं सिद्धान्तों पर चलकर महात्मा गॉधी ने एक सर्वथा नवीन प्रकार के अहिंसक युद्ध के प्रयोग से अंग्रेजी सत्ता को परास्त किया और भारत को पराधीनता से मुक्ति दिलायी। यही नहीं आने वाली पीढ़ियों के लिए उन्होंने अहिंसा और सत्याग्रह का मार्ग प्रशस्त किया।

वस्तुतः स्थूल रूप में अहिंसा और सत्याग्रह को ही गॉधीवाद माना जाता है।

यद्यपि गॉधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को ही गॉधीवाद का नाम दिया जाता है, पर स्वयं गॉधी जी इस प्रकार के किसी वाद को नहीं मानते थे जैसा कि उन्होंने 'हरिजन–बन्धु' नामक पत्र में लिखा भी है– "गॉधीवाद जैसी कोई वस्तु है ही नही और मुझे अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़कर नहीं जाना है। मैंने कोई नया तत्व या सिद्धान्त खोज निकाला है, ऐसा दावा नहीं है। मैंने शाश्वत सत्यों को अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों से सम्बद्ध करने का प्रयास अपने ढंग से किया है। सत्य और अहिंसा अनादिकाल से चले आ रहे हैं। मैंने केवल यथासम्भव इसके प्रयोग किये है। आप लोग इसे गॉधीवाद न कहें, इसमें वाद जैसा कुछ भी नहीं है।"[1]

1. हरिजन बन्धु पत्र 29/3/39 का अंक

इसी सन्दर्भ में हरिजन–पत्र में गॉधी जी का अभिमत है... "मैं ये दावा नही करता कि मैंने नये सिद्धान्त को जन्म दिया है। मैंने तो केवल अपने निजी ढ़ंग से यह प्रयत्न किया है कि हम अपने नित्य के जीवन में सनातन सत्यों को किस प्रकार काम में ला सकते है।"[1] आगे उन्होंने कहा है... "मेरी सम्पूर्ण फिलॉसफी, अगर उसे फिलॉसफी का नाम देने की अहमन्यता की जाय तो जो कुछ मैंने कहा है उसमें आ जाती है।"[2]

गॉधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को ही गॉधीवाद का नाम दिया जाता है। इस सम्बन्ध में विश्वविख्यात अमेरिकन लेखिका–"पर्लबक" का यह कथन उल्लेखनीय है... "आज के विक्षुब्ध और सशक्त संसार में गॉधी जी के जीवन काल में ही उनके नाम से एक व्यक्ति का बोध न होकर जीवन के एक प्रकार का बोध होता है।"[3] वस्तुतः जीवन का यह प्रकार या जीवन को संचालित करने की शैली ही गॉधीवाद है।

गॉधी जी ने प्राचीन काल से चले आ रहे सत्य और अहिंसा का प्रयोग वर्तमान समस्याओं के समाधान के लिए नये ढ़ंग और नये रूप में किया। गॉधी जी ने ईश्वर को ही सृष्टि का आधार, ईश्वर की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य बनाना, सब मनुष्यों को ईश्वर की सन्तान होने के कारण समान माना तथा मानव सेवा को ही ईश्वर की आराधना माना है। उन्होंने अपने पत्र 'हरिजन–सेवक' में लिखा है:–"मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर का साक्षात्कार उसकी अनुभूति प्राप्त करना, उसके राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी कार्य इस अन्तिम उद्देश्य ईश्वरानुभूति को ध्यान में रखकर ही करने चाहिये। इस लिए मानव जाति की सीधी सेवा इस प्रयत्न का अनिवार्य भाग है, क्योंकि ईश्वर को पाने का एकमात्र उपाय है। उसी की बनाई हुई सृष्टि में परमात्मा का दर्शन करना और उसके साथ तादात्म्य सिद्ध कर लेना।"[4]

सत्य एवं अहिंसा पहले पारिवारिक और वैयक्तिक जीवन तक ही सीमित थे। गॉधी जी ने उन्हें राजनीतिक, धार्मिक तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनाया है। यहॉ तक कि भारत राष्ट्र की स्वतंत्रता प्राप्ति में भी गॉधी जी के इन सिद्धान्तों का काफी महत्व रहा। इस सम्बन्ध में भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री लाल बहादुर शास्त्री का अभिमत है–"आधुनिक भारतीय इतिहास में गॉधी जी की देन अपूर्व और अप्रतिम है उन्होंने भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग को स्पर्श किया है। धर्म,

---

1. हरिजन पत्र : 28/3/1936, पृ0–49
2. हरिजन पत्र : 29/3/1936, पृ0–49
3. आधुनिक राजनीतिक चिन्तन : हरिदत्त वेदा लंकार, पृ0– 635
4. हरिजन सेवक पत्र : 29 अगस्त, 1936, पृ0–218

शिक्षा, राजनीति, अर्थनीति, सार्वजनिक सदाचरण– प्रत्येक विषय में उनके अपने मौलिक विचार हैं। उन्होंने हमें अपने पैरों पर खड़ा किया, आजादी के दरवाजे तक पहुँचाया। एक राष्ट्र की जिन्दगी मे यह बहुत बड़ी बात है, परन्तु गाँधी जी ने इससे भी बड़ी बात तो हमें सिखाई वह था इंसान का इंसान बनना। उन्होंने हमें बताया कि मानवता के मौलिक गुणों से रहित होकर जीना, जीना नहीं है, बल्कि मृत्यु है।" उन्होंन हमें बताया कि मानव संस्कृति हिंसा, द्वेष, असत्य अनीति और विलासिता पर नहीं टिक सकती। वह केवल प्रेम पर एक दूसरे के मंगल पर, समाज में सबके उदय पर ही टिक सकती है हिंसा पर नहीं–अहिंसा मनुष्य की मूल प्रवृत्ति है और असत्य नही सत्य ही उसका धर्म है, गन्तव्य है।"[1]

2. गाँधीवाद के प्रेरणा स्रोत

गाँधीवाद के प्रेरणा स्रोतों को दो भागों में बाँट सकते हैं–प्राचीन तथा अर्वाचीन।

क. प्राचीन स्रोतः–

इसके अन्तर्गत प्राचीनकाल के व्यक्ति तथा उस समय की कृतियाँ आती हैं व्यक्तियों में हरिश्चन्द्र, राम, कृष्ण, प्रहलाद, श्रवणकुमार, महावीर, बुद्ध, सुकरात, ईसा, मुहम्मदसाहब आदि है। प्राचीन कृतियों में मुख्य रूप से गीता, राम–चरित्र मानस, योग दर्शन, ईशावास्योपनिषद, कुरान शरीफ, बाइबिल आदि हैं।

ख. अर्वाचीन स्रोतः–

इसके अन्तर्गत गाँधी जी की माता पुतलीबाई, लाधा महाराज श्री मद्राचन्द्र (रामचन्द्र भाई), टालस्टाय अज्ञात, अंग्रेज बन्धु, कीट्स, स्पेयर बाल्टन रामचन्द्र परमहंस तथा अर्वाचीन कृतियों में सर्वोदय (अनटु दिस लास्ट), पिलग्रिम्स प्रोग्रेस, बैकुण्ठ तुम्हारे हृदय में है, व्हाट टु डू? (क्या करें), जरथुस्त्र के वचन (सेइंग ऑफ़ ज़रथुस्त्र), धर्मविचार व्हाट केन इट टीच अस? (भारत क्या सिखाता है?) इत्यादि सभी उपरोक्त व्यक्तियों तथा कृतियों ने गाँधी जी को प्रभावित किया।

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्या परिग्रहा यमाः"[2] योगदर्शन के इस सूत्र का गाँधी जी पर पूर्ण प्रभाव देखने को मिलता है। गाँधी जी को अहिंसक प्रतिकार की भावना श्यामल भट्ट द्वारा रचित गुजराती कविता से हुई।

---

1. अहिंसा और सत्य, दो शब्द, श्री रंगनाथ दिवाकर
2. पंतजलियोगदर्शन : साधनावाद–2, सूत्र–30, भाष्यकार श्री रामशर्मा।

कविता का सारांश इस प्रकार था– "यदि कोई तुम्हे पानी पिलावे बदले में तुमने भी पानी पिला दिया तो उसका कोई महत्व नही है, अपकार के बदले में उपकार करने में ही सच्ची खूबी है।"[1]

ईसाई धर्म का प्रतिनिधि धर्मग्रन्थ बाइबिल गॉधी जी को इग्लैण्ड में पढ़ने को प्राप्त हुई। उसके ओल्ड टेस्टामेन्ट ने उन्हे बिल्कुल आकर्षित नहीं किया, किन्तु न्यूटेस्टामेन्ट के प्रवचन वाले भाग ने काफी प्रभावित किया। उनके शब्दों में– "अत्याचारों का प्रतिकार मत करो, बल्कि जो तुम्हें सीधे गाल पर चॉटा मारे उसके सामने बॉया गाल भी कर दो। अपने शत्रु से भी प्रेम करो ऐसे बचन मैंने पर्वत प्रवचन में पढ़े और मुझे अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। भगवत् गीता के द्वारा यह विश्वास अधिक दृढ़ हुआ है।"[2] गॉधी जी ने श्री रस्किन की पुस्तकें पढ़ी। दक्षिण अफ्रीका में एक मित्र पोलक द्वारा दी हुई जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन टु दिस लास्ट' (सर्वोदय) नामक पुस्तक पढ़ी। इस पुस्तक ने गॉधी जी को अधिक प्रभावित किया। उन्होंने इस पुस्तक से तीन बाते प्राप्त कीं–

"1. सबके भले में ही अपना भला समाया हुआ है।

2. वकील एवं नाई दोनों के काम की एक–सी कीमत होनी चाहिये, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको समान है। एवं

3. सादा, श्रमपूर्ण कृषक का जीवन ही सच्चा जीवन है।"[3]

गॉधी जी ने उपरोक्त पुस्तक का 'सूर्योदय' नाम से अनुवाद भी किया है। गॉधी जी को रामचन्द्र भाई ने भी अधिक प्रभावित किया, उन्हीं के शब्दों में– "मेरे जीवन पर मुख्य रूप से श्री मद्रामचन्द्र ने मुझ पर गहरा असर डाला है। मैंने अनेकों बार कहा और लिखा है कि मैंने अपने जीवन में बहुतों से बहुत कुछ ग्रहण किया है तो वह कवि श्री रामचन्द्र के जीवन से ग्रहण किया है। दया धर्म को तो मैंने उन्हीं के जीवन से सीखा है। बहुत से प्रसंगो में तो हमें जड़ होकर वैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। शुद्ध जड़ और चैतन्य में भेद नही के बराबर है। सारा जगत जड़ रूप ही दीख पड़ता है। आत्मा तो क्वचित ही प्रकाशित होती है। ऐसा व्यवहार तो अलौकिक पुरूषों का होता है और मैंने यह देखा है कि ऐसा व्यवहार श्री मद्रामचन्द्र भाई का था।"[4]

---

1. सत्याग्रह मीमॉसा : रंगनाथ दिवाकर, पृ0–18
2. सत्याग्रह मीमॉसा : सम्पादक–रंगनाथ दिवाकर, पृ0–19
3. धर्मनीति, दर्शन : प्र0 सम्पादक–श्री रामनाथ सुमन, पृ0–941
4. धर्म नीति, दर्शन : प्र0 सम्पादक–श्री रामनाथ सुमन, पृ0–941?

गाँधी जी को ईशावास्योपनिषद के प्रथम श्लोक ने प्रभावित किया, जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने ट्रष्टीशिप (न्यासिता) सिद्धान्त को जन्म दिया–

ईशावास्यमिदं सर्वयत्किञ्चम् जगत्यांजगत
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा भा गृधः कस्यस्विद्धनम्।[1]

अर्थात्–इस संसार में जो कुछ है वह ईश्वर का है–यह मानकर ईश्वर द्वारा उच्छिष्ट जो प्राप्त हो हम उसी का भोग करें और किसी के धन की लालसा न रखें। माता पुतलीबाई का प्रभाव गाँधी जी पर प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में प्रभाव पड़ा। वे बड़ी साध्वी तथा धार्मिक विचारों वाली महिला थीं। पूजा पाठ किये बिना कभी भी भोजन नहीं करतीं थीं। रोज हवेली दर्शन के लिए जाया करती थीं। चातुर्मास्य का व्रत वे हमेशा करती थीं। जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है।

"मेरे मन पर यह छाप है कि माता जी साध्वी स्त्री थीं, बडी भावुक पूजापाठ किये बिना कभी भोजन नहीं करतीं थीं, हवेली (वेष्ठव मन्दिर) पर रोज जाती थीं। मैंने जब से होश सम्भाला याद नहीं पड़ता कि उन्होंने चार्तुमास्य का व्रत कभी छोड़ा हो। कठिन से कठिन व्रत लेती और उसे दृढ़ता से पूरा करतीं। बीमार पड़ जाने पर भी कभी लिये हुए व्रत को नहीं छोड़ती। एक बार की बात मुझे याद है कि उन्होंने चन्द्रायण व्रत आरम्भ किया था। उसमें बीमार पड़ गई, पर व्रत न छोड़ा। चातुर्मास्य में एक समय के भोजन का व्रत तो उनके लिए साधारण सी बात थी। इतने से न सन्तोष मान कर एक चौमासे में उन्होंने एक दिन बीच में एक दिन छोड़ कर भोजन करने का नियम बना लिया था। लगातार दो–तीन उपवास उनके लिए मामूली सी बात थी। एक चौमासे में उंन्होंने सूर्य नारायण के दर्शन करने के बाद ही भोजन करने का व्रत लिया था। उस चौमासे में हम बच्चे बादलों की ओर देखते ही रहते कि कब सूर्य के दर्शन हो और कब माँ भोजन करें। यह तो सभी जानते है कि चौमासे में सूर्य दर्शन दुर्लभ होते हैं। मुझे ऐसे दिन भी याद हैं कि जब सूर्य को हम देखते और चिल्लाते माँ–माँ सूर्य निकला। माँ जल्दी–जल्दी आती, तब तक सूर्य भाग जाता। वह यह कहते हुए लौट जाती कोई बात नहीं आज खाना वदा ही नहीं है।"[2]

ऐसी धर्म निष्ठा माता का प्रभाव गाँधी जी पर पड़ा। जब गाँधी जी विदेश गये, विदेश जाने से पहले उन्होंने माँ से प्रतिज्ञा की थी कि मैं माँस, मद्य तथा स्त्री का सेवन नहीं करूँगा। माँ के सामने ली गयी इस प्रतिज्ञा ने विदेश में भी जहाँ उनकी माँ उनके साथ नहीं थी परोक्ष रूप में प्रभावित किया। गाँधी जी के शब्दों में–"माँ बोली मुझे तेरा विश्वास है। पर दूर देश में कैसा होगा? मेरी तो अक्ल काम नही करती। मैं बेचर जी स्वामी से पूछूँगी। बेचर जी स्वामी पहले मोढ़ बनिये थे फिर

1. ईशावास्योपनिषद् : प्रथमश्लोक
2. आत्मकथा–(सत्य के प्रयोग) : गाँधी जी, भाग–1, अध्याय–1, पृ0–16

साधु हो गये थे। जोशी जी की भॉति सलाहकार भी थे। उन्होंने मेरी मदद की। कहा मै। इस लड़के से इन तीनों चीजों के बारें में प्रतिज्ञा कराऊँगा, फिर उसे जाने देने मे हर्ज न होगा। उन्होंने प्रतिज्ञा करवाई। मैंने मॉस, मदिरा और स्त्री संगम से दूर रहने की प्रतिज्ञा की। माता ने जाने की अनुमति दे दी।"[1]

गॉधी जी के घर में रंभा नाम की एक सेविका थी, उसने भी गॉधी जी को काफी प्रभावित किया राम नाम का आध्यात्मिक मंत्र गॉधी जी को उसी से प्राप्त हुआ। गॉधी जी बचपन में भीरू एवं भीत स्वभाव के बालक थे। उन्हें भूत और सॉप आदि का डर लगा करता था, वे अपने भय को दूर भगाने वाली औषधि की तलाश में थे। उन्होंने रम्भाबाई को अपना भय कह सुनाया तो सीधी–सादी दासी ने उन्हें अपना रामबाण उपाय सुझा दिया। उसने बालक गॉधी से कहा कि भय के प्रसंगों पर कि वह राम–नाम ले लिया करें, इससे उनकी रक्षा होगी। गॉधी जी ने दासी की सलाह पर राम नाम लेना सीख लिया। और यह शाश्वत सत्य नाम आगे चलकर उनके जीवन का संबल बन गया। देहावसान के समय गॉधी की अन्तिम श्वॉस ने भी पूर्ण दृढ़ता से राम नाम का उच्चारण किया।"[2]

2. गॉधीवादी दर्शन के आधार भूत सिद्धान्त

1. सत्यः–

सामान्यतः सत्य का अर्थ मात्र सत्य बोलने से लिया जाता है, किन्तु गॉधी जी ने सत्य को विस्तृत अर्थों में प्रयुक्त किया है। गॉधी जी के शब्दों में–

"साधारणतः सत्य का अर्थ सच बोलना मात्र ही समझा जाता है, लेकिन हमने विशाल अर्थ में सत्य शब्द का प्रयोग किया है विचार में, वाणी में, आचार में सत्य का होना ही सत्य है।"[3] पातंज्जलि योग–दर्शन में सत्य के सम्बन्ध में निम्न सूत्र है–

"सत्य प्रतिष्ठायां कियाफलाश्रयत्वम्।"

अर्थात् सत्य इन्द्रिय मन से प्रत्यक्ष देखा हुआ एवं अनुमान द्वारा अनुभव किया हुआ यथार्थ प्रिय और हितकर वचन सत्य है।[4]

गॉधी जी ने सत्य की व्याख्या करते हुए मंगल प्रभाव में लिखा है–
"सत्य शब्द सत् से बना है, सत् का अर्थ है अस्ति सत्य अर्थात् अस्तित्व। सत् के बिना दूसरी चीज की हस्ती ही नही है। परमेश्वर का सच्चा नाम ही सत् अर्थात्

1. आत्मकथा–(सत्य के प्रयोग) : गॉधी जी, भाग–1, अध्याय–1, पृ0–48
2. नीति धर्म दर्शन : प्र0 सम्पादक–रामनाथ सुमन, पृ9–930
3. बापू की सीख ' गॉधी जी, पृ0–25
4. पातंत्र्जलि योग दर्शन : भाष्यकार श्री रामशर्मा, पृ0–163

"सत्य" है। इसीलिए परमेश्वर "सत्य" है। यह कहने की अपेक्षा सत्य ही परमेश्वर है, कहना अधिक योग्य है। हमारा काम राजकर्त्ता के बिना सरदार के बिना नहीं चलता। इस कारण परमेश्वर नाम अधिक प्रचलित है और रहेगा लेकिन विचारने पर लगेगा कि सत् या "सत्य" ही सच्चा नाम है। और यही पूरा अर्थ प्रकट करने वाला है।"[1]

हिन्दी नवजीवन पत्र में गॉधी जी ने सत्य के सम्बन्ध में कहा है–"जो सत्य जानता है, मन से, वचन से, काया से सत्य का आचरण करता है वह परमेश्वर को पहचानता है इससे वह त्रिकालदर्शी हो जाता है उसे इसी देह में मुक्ति प्राप्त हो जाती है।"[2]

हरिजन–सेवक पत्र में गॉधी जी ने सत्य के विषय में बताया है कि सत्य के दर्शन किस प्रकार कर सकते हैं, गॉधी जी के शब्दों में– "सत्य की शोध की ऐसी कठिन शर्त है हम ओठ, कान, ऑख को पूरी तरह बन्द न करें ...परन्तु हम इतना तो कर सकते हैं कि ओठ से कटु या असत्य न बोलें, कान से किसी की निन्दा या गन्दी बातें न सुनें, ऑख से अपनी इन्द्रिय को विचलित करने वाली कोई वस्तु न देखें, हम सत्य ही बोलें वही सुनें जो हमें आगे ले जाये और ऑख से दया ममता देखें, सन्त जनों का दर्शन करें जो ऐसा करेगा वही सत्य के दर्शन पा सकेगा।"[3]

गॉधी जी ने सत्य और अहिंसा का अटूट सम्बन्ध बताते हुए अहिंसा को साधन तथा सत्य को साध्य माना है। उनके शब्दों में अहिंसा और सत्य ऐसे ओत–प्रोत हैं जैसे सिक्के के दोनों रूप, या चिकनी चकती के दो पहलू। उनमें से किसे उल्टा कहें किसे सीधा? फिर भी अहिंसा को साधन और सत्य को साध्य माना जाना चाहिये। साधन अपने हाथ की बात है। इससे अहिंसा परम धरम मानी गई है। सत्य परमेश्वर द्वारा, साधन की चिन्ता करते रहने पर साध्य के दर्शन किसी भी दिन कर ही लेंगे?[4]

2. अहिंसा:–

गॉधी दर्शन का मूल आधार अहिंसा ही है योग दर्शन में भी अहिंसा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। पाश्चात्य दर्शनों में बाइबिल में भी अहिंसा का प्रतिपादन हुआ है। महात्मा गॉधी के ऊपर इन सबके प्रभाव का सम्मिलित रूप दिखाई देता है। उन्होंने सभी धर्मो और दर्शनो से अहिंसा को ग्रहण करके अपने जीवन पथ का एक संबल बनाया, उसी के माध्यम से स्वतंत्रता संग्राम तथा जीवन की समस्याओं

1. मंगलप्रभात : पृ0–5
2. हिन्दी नवजोवन पत्र : दिनांक 27–11–21
3. हरिजन–सेवक पत्र : दिनांक 29–4–1993
4. बापू की सीख : अध्याय–5

की लड़ाई लड़ी। महर्षि पातंज्जलि ने अपने योग दर्शन में अहिंसा का प्रतिपादन किया है– "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ बैर तयांग"[1] अर्थात् अहिंसा की प्रतिठा हो जाने पर साधक के समीप सबका बैर–भाव नष्ट हो जाता है।

गॉधी जी की अहिंसा में सबका सार समाहित हैं, उन्होंने लिखा है– "नम्रता के बिना अहिंसा का पालन असम्भव है।"[2] हिन्दी नवजीवन में ही उन्होंने लिखा था– "अहिंसा और तिरस्कार परस्पर विरोधी हैं।"[3] गॉधी जी ने अहिंसा के मूल में प्रेम को समाहित किया हैं, उनके शब्दों में– "बकरे को न मारना ही अहिंसा नहीं है, सबसे प्रेम करना ही अहिंसा है।"[4] गॉधी जी ने प्रेमी के साथ प्रेम किया जाना ही अहिंसा नहीं माना हैं, उन्होंने इसे फर्ज अदा करना कहा है, जो हमारे साथ द्वेष करे उसके साथ भी प्रेम का व्यवहार करें यही अहिंसा है। गॉधी जी के शब्दों में– "द्वेष के कारण कोई द्वेष नहीं करता। इसीलिए हमारे सामने कोई द्वेष का कारण उपस्थित करें तो भी द्वेष न करते हुए उससे प्रेम करना, उस पर दया करना, उसकी सेवा करना ही अहिंसा है। प्रेमी के प्रति किये गये प्रेम में अहिंसा नहीं है, वह तो व्यवहार है। अहिंसा को दान कहेंगे। प्रेम के बदले में प्रेम करना फर्ज अदा करने के बराबर है।"[5] गॉधी जी ने अहिंसा को नये आयाम दिये। वे खाने–पीने की वस्तुओं में हिंसा और अहिंसा को नहीं मानते थे। गॉधी जी के मतानुसार– "अहिंसा का विचार करते समय हम केवल खान–पान का विचार करते हैं। यह तो अहिंसा नहीं कही जा सकती।"[6]

एक बार सेवा ग्राम में रहते हुए किसी मनुष्य ने प्रश्न किया कि मांसाहारी या अण्डाहारी को अहिंसक कहा जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर गॉधी जी ने इस प्रकार दिया– "अहिंसा को इससे बाधा नहीं पहुँचती यदि ऐसा है तो हम मुसलमानों, ईसाइयों और बहुत से हिन्दुओं को अहिंसा के क्षेत्र में साथ नहीं रख सकेंगे। मैंने तो कई मांसाहारी देखे हैं जो शाकाहारियों से ज्यादा अहिंसक है।"[7]

गॉधी जी हमेशा ही प्राणियों पर दया करना अहिंसा नहीं मानते थे अनेक अवसरां पर वे जीवन लेना भी अहिंसा मानते थे। एक बार उनके आश्रम में एक बछड़ा बेदना से छटपटा रहा था, गॉधी जी से उसकी बेदना देखी नही जा रही थी।

---

1. योग दर्शन : महर्षि पातंज्जलि, साधन पाद–2, सूत्र–35
2. हिन्दी नवजीवन पत्र दिनांक 2–2–24
3. हिन्दी नवजीवन पत्र दिनांक 18–5–24
4. अहिंसा औऱ सत्य : रंगनाथ दिवाकर, पृ0–59
5. अहिंसा और सत्य : रंगनाथ दिवाकर, पृ0–53
6. हिन्दी नव जीवन पत्र दिनांक 19–728
7. हरिजन सेवक पत्र, दिनांक 31–8–40

इसलिये उन्होंने उसे बेदना से मुक्त कराने के लिए डाक्टर द्वारा सुई लगवा दी जिससे वह क्षण भर में मर गया। गाँधी जी द्वारा पीड़ित की बेदना समाप्त करने के लिए उसी के हित में किया गया कार्य जो ऊपर से हिंसा पूर्ण दिखाई देता है वह हिंसा नहीं है, वरन् करुणा का कार्य है, अहिंसा है। इस सम्बन्ध में गाँधी जी ने कहा भी है– "जीवन लेना सदा हिंसा नहीं है। अनेक अवसरों पर जीवन न लेने में ही हिंसा है।"[1]

समग्र रूप में मन, वाणी और कर्म से किसी को किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचना ही अहिंसा है।

3. सत्याग्रह एवम् इसके विभिन्न रूप

अ. सत्याग्रहः–

सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ है– सत्य के प्रति आग्रह अर्थात् उसका पालन करने के लिए चाहे कितनी ही परेशानियों को उठाना पड़े, परन्तु उस सत्य को न त्यागना ही सत्याग्रह है। गाँधी जी ने इण्डियन ओपेनियन पत्र में सत्याग्रह का अर्थ बताते हुए लिखा है कि– "सत्याग्रह का अर्थ है जिसे हम सत्य समझते हैं उसे मरणपर्यन्त न छोड़ना। सत्य के लिए चाहें कितनी तकलीफें उठानी पड़े सब उठाना कष्ट किसी को नहीं पहुँचाना चाहिये क्योंकि कष्ट पहुँचाने से सत्य का उल्लंघन होता है।"[2]

गाँधी जी ने तुलसीदास द्वारा रचित दोहा–

"दया धर्म को मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्रान।।"

पर विशेष बल देते हुए दयाबल को ही आत्मबल या सत्याग्रह कहा है– "मुझे तो यह वाक्य शास्त्र जैसा लगता है जैसा दो और दो चार होते हैं उतना ही भरोसा मुझे ऊपर के वचन पर है। दयाबल आत्मबल है, सत्याग्रह है और इस बल के प्रमाण पग–पग पर दिखाई देते हैं अगर यह बल नहीं होता तो पृथ्वी रसातल (सात पातालों में से एक) में पहुँच गयी होती है।"[3] आगे इसी तथ्य को गाँधी जीनेऔर अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है– "दुनियाँ में इतने लोग आज भी जिन्दा हैं यह बताता है कि दुनियाँ का आधार हथियार बल पर नहीं है, परन्तु सत्य, दया या आत्मबल पर है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि दुनियाँ लड़ाई के हंगामों के

1. हिन्दी नव जीवन–पत्र, दिनांक 28–10–26
2. इण्डियन ओपेनियन पत्र दिनांक 26–9–1908
3. हिन्द स्वराज्य : गाँधी जी, पृ0–61

बावजूद टिकी हुई है। इसलिए लड़ाई के बल के बजाय दूसरा ही बल उसका आधार है।"[1] आगे इसी पुस्तक हिन्द स्वराज्य में सत्याग्रह के विषय में कहा है कि– "सत्याग्रह या आत्मबल को अंग्रेजी में 'पैसिव रेजिस्टेन्स' कहा जाता है। जिन लोगों ने अपने अधिकार पाने के लिए खुद दुःख सहन किया था, उनके दुःख सहने के ढंग के लिए यह शब्द बरता गया है, उसका ध्येय लड़ाई के ध्येय से उल्टा है। जब मुझे कोई काम पसन्द न आये और वह काम मैं न करूँ, तो उसमें मैं सत्याग्रह या आत्मबल का उपयोग करता हूँ।"[2] इसी तथ्य को गॉधी जी ने उदाहरण के तौर पर इस तरह समझाया है। उन्हीं के शब्दों में– "मिसाल के तौर पर मुझ पर लागू होने वाला कोई कानून सरकार ने पास किया। वह कानून मुझे पसन्द नहीं है। अब अगर मैं सरकार पर हमला करके यह कानून रद्द करवाता हूँ तो कहा जायेगा। कि मैंने शरीर बल का उपयोग किया है। अगर मैं इस कानून को मंजूर ही न करूँ और उस कारण से होने वाली सजा भुगत लूँ, तो कहा जायेगा कि मैंने आत्मबल या सत्याग्रह से काम लिया। सत्याग्रह में मैं अपना ही बलिदान देता हूँ।"[3]

गॉधी जी ने किसी व्यक्ति के साथ किस प्रकार सत्याग्रह करना चाहिये इसका विवेचन करते हुए लिखा है कि– "अन्याय का सर्वथा विरोध करते हुए भी अन्यायी के प्रति बैर भाव न रखना सत्याग्रह का मूल लक्षण है। जगत में निर्बल मनुष्य बैर रखते हैं। सबल मनुष्य अपने बैर भाव का त्याग कर सकते हैं। सबल का अर्थ शरीर में बल रखने वाले मनुष्य नहीं। सबल पुरूष और सबल स्त्री वही है जिन्हें मरना आता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें सत्य का पालन करते हुए निर्भरता पूर्वक मृत्यु का वरण करना चाहिये और मरते–मरते भी, जिसके विरूद्ध सत्याग्रह कर रहे है। उसके प्रति वैर भाव अथवा क्रोध न रखना चाहिये।"[4]

---

1. हिन्द स्वराज्य : गॉधी जी, पृ0–62
2. हिन्द स्वराज्य : गॉधी जी, पृ0–63
3. हिन्द स्वराज्य : गॉधी जी, पृ0–63
4. सत्याग्रह : गॉधी जी, पृ0–24

सत्याग्रह के विभिन्न रूप

क. असहयोग
ख. सविनय अवज्ञा आन्दोलन
ग. उपवास
घ. हिजरत
ड़. धरना
च. हड़ताल
छ. सामाजिक वहिष्कार

इनका विवरग कमशः निम्न प्रकार है:–

क. असहयोग:–

असहयोग का शाब्दिक अर्थ होता है– सहयोग न करना। सन् 1920–21 में गॉधी जी द्वारा चलाये गये आन्दोलन को असहयोग आन्दोलन कहते है। उनका विचार था कि अंग्रेजी सरकार भारत के लोगों के सहयोग से टिकी है, यदि वे इसका विरोध करेंगे, सहयोग नहीं देगे तो अंग्रेजी सरकार उखड़ जायेगी। भारतीयों द्वारा अंग्रेजी सरकार के दफ्तरो में जो लोग नौकरी करते हैं, उनका नौकरियों को छोड़ना, अदालतों, स्कूल, कालेजों का बहिष्कार करना आदि कार्यों को करेंगे तभी सरकार निरांधार होकर शीघ्र ही समाप्त हो जायेगी। गॉधी जी के शब्दों में– "अधिकतम अत्याचारी शासन भी शासितो की सहमति के बिना नहीं टिक सकता। प्रजाजन ज्यों ही इस शासन से डरना बन्द कर देते हैं तो शासक की शक्ति समाप्त हो जाती है। सामान्य रूप से प्रत्येक नागरिक को सरकारी आदेशों तथा कानूनों का पालन करना चाहिये, किन्तु यदि सरकार जनता की इच्छाओं की परवाह नहीं करती है, यदि उसके कार्य अनैतिक और अन्यायपूर्ण हैं तो जनता और नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे सरकार के साथ असहयोग करें।"[1]

गॉधी जी ने असहयोग के लिए आपस का प्रेम बहुत ही आवश्यक बताया है। क्रोधपूर्ण वातावरण में असहयोग नहीं चल पायेगा। गॉधी जी के शब्दो में– "जब तक हमारी प्रकृति पूर्व और पश्चिम जैसे विरुद्ध विचारों तक को परस्पर निभा लेने योग्य नहीं बनायी जायेगी तब तक असहयोग असंभव है। कोध के वायुमण्डल में असहयोग नहीं चल सकता।"[2]

---

1. दि फिलॉसफी ऑफ महात्मा गॉधी : गोपीनाथ धवल, पृ0–210
2. यंग इण्डिया पत्र, दिनांक 15–8–1920

गॉधी जी भारत की स्वतंत्रता के लिए भी असहयोग को आवश्यक मानते थे। उन्होंने 16 जून, 1920 ई0 के 'यंग इण्डिया' पत्र में कहा था कि– "यदि किसी संस्था का कोई सदस्य बेईमान है तो उस संस्था के सदस्यों का धर्म है कि वे उसमें सहयोग का त्याग करें और उसकी बेईमानी में सहायक न हों। इसी प्रकार कोई सरकार अन्याय करती है तो प्रजा का धर्म है कि उसका सहयोग करना छोड़ दे और इस तरह उसे अन्याय से दूर हटायें। इस तरह की यातनाओं को स्वीकार किये बिना स्वराज्य की प्राप्ति कठिन ही नहीं असम्भव है।"[1]

ख. सविनय अवज्ञा आन्दोलनः–

सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी सत्याग्रह का एक रूप है। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का शाब्दिक अर्थ होता है कि जो बात असत्य है, लेकिन सरकार या अन्य कोई हम पर उसे सत्य रूप में पूर्ण करा रही है तो इसके विपरीत उस आज्ञा को विनय के साथ न मानना ही सविनय अवज्ञा–आन्दोलन है। गॉधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सम्बन्ध में निम्न लिखित विचार प्रकट किये हैं– "सत्य के अनुसरण काल में मैंने देखा है कि कानूनो को स्वेच्छापूर्वक मानना हमारा कर्तव्य है। किन्तु मैंने यह भी देखा है कि यह कर्तव्य करते हुए समान रूप से हमारा यह भी कर्तव्य हो जाता है कि यदि कोई कानून असत्य को पोषण देता है तो उसकी अवज्ञा करें। प्रतिकूल परिस्थितियों में लड़ते हुए भी सत्याग्रही अधिकारियों से सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रख सकें, क्योंकि सत्याग्रह में क्रोध या दुर्भावना के लिए स्थान ही नही है। प्रतिपक्ष पर सत्य का प्रभाव पड़ता है। जिसका परिणाम यह होता है, इसके कारण दोनों पक्षों में पारस्परिक आदरभाव और मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बना रहता है, यद्यपि दोनों लड़ते है।"[2]

गॉधी जी ने मौ0 मुहम्मद अली के नाम पत्र में सविनय अवज्ञा आन्दोलन को युद्ध की तुलना में श्रेष्ठ बताया है क्योंकि इस आन्दोलन से दो पक्षों (जो आन्दोलन कर रहा हो तथा जिसके लिये कर रहा है) को कोई हानि नहीं उठानी पड़ती है। गॉधी जी के अनुसार– "मैं यह बात अवश्य कहूँगा कि एकान्त में प्रार्थना पूर्वक चिन्तन और मनन करने के बाद भी सविनय भंग की सफलता और धर्म्यता के सम्बन्ध में मेरा विश्वास जरा भी कम नहीं हुआ है। जब किसी व्यक्ति या राष्ट्र की आत्मा को आघात पहुँचता हो, तब सविनय अवज्ञा करना उसका अधिकार और धर्म है। मैं आज पहले की अपेक्षा दृढ़ता के साथ वह बात मानता हूँ। मुझे इस बात का निश्चय हो चुका है कि युद्ध की अपेक्षा सविनय अवज्ञा में कम खतरा है। युद्ध के अन्त में जहॉ

1. यंग इण्डिया पत्र, दिनांक 16–6–1920
2. गुजराती नव जीवन पत्र, दिनांक 7–9–1919

विजेता और विजित दोनों को हानि पहुँचती है वहाँ सविनय भंग दोनों का मंगल करता है।"[1]

ग. उपवासः–

महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह के साधनों में उपवास को भी एक साधन माना है। उपवास की प्रथा तो हिन्दू धर्म में प्राचीन काल से चली आ रही है। हिन्दू समाज के लोग उपवास में विश्वास करते हैं। हिन्दू धर्म में ऐसी मान्यता है कि उपवास करने से मेरा हृदय पवित्र हो जाता है तथा जो हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं वह सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। गाँधी जी ने उपवास को आत्म शुद्धि के लिए आवश्यक माना है। उन्हीं के शब्दों में– "मेरी राय यह है कि अपनी और उसी तरह दूसरों की भी शुद्धि के लिए उपवास करना युगों पुरानी प्रथा है और जब तक मनुष्य ईश्वर के बारे में आस्था रखता है, तब तक यह प्रथा जारी रहेगी। वह आर्त–हृदय की परमात्मा के प्रति प्रार्थना है।"[2]

गाँधी जी ने उपवास में भोजन करना तो आवश्यक बताया ही है, साथ ही वे ईश्वर से प्रार्थना करना ही उपवास का सबसे बड़ा अंग मानते हैं। एक बार गाँधी जी ने आत्मशुद्धि के लिए इक्कीस दिन का उपवास किया था इस उपवास के अनुभव द्वारा उन्होंने मीरा बहिन को पत्र लिखा था– "यह उपवास ईश्वर की आज तक मिली हुई किसी देन से बड़ी देन है। मैं इसे भय और कम्पन के साथ कर रहा हूँ। यह मेरी दुर्बल श्रद्धा का चिन्ह है, परन्तु इस बार मेरे भीतर वह खुशी है, जो पहले कभी नही हुई कुछ परिस्थितियों में यही (उपवास ही) एक हथियार होता है, जो ईश्वर ने घोर लाचारी के समय काम में लाने को दिया है। हमें इसका उपयोग करना ही नही आता या हम समझ लेते हैं कि इसका आदि और अन्त केवल शरीर को आहार न देना ही है। यह ऐसी चीज नहीं है। भोजन न करना अनिवार्य तो है, परन्तु यह इसका सबसे बड़ा अंग नहीं है। सबसे बडा अंग तो है प्रार्थना– ईश्वर से लौ लगाना। यह शारीरिक भोजन से बढ़कर है।"[3]

गाँधी जी ने उपवास को महासंयम माना है। उपवास से हृदय तो शुद्ध होता है साथ ही ईश्वर से प्रार्थना भी हो जाती है। गाँधी जी के अनुसार– "सभी धर्म में उपवास को महा संयम माना गया हैं, जो स्वेच्छा से उपवास करते हैं वे उससे नम्र बनते हैं और शुद्ध होते है। शुद्ध उपवास बड़ी कारगर प्रार्थना है।"[4]

---

1. हिन्दी नवजीवन पत्र, मौ0 मुहम्मद अली के नाम लिखे गये पत्र से
2. महादेव भाई की डायरी–दूसरा भाग, पृ0–261
3. बापू के पत्र–मीरा के नाम, पृ0–216
4. महादेव भाई की डायरी, खण्ड–5

घ. हिजरत:–

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह के साधनों में हिजरत भी एक साधन है। हिजरत का अर्थ होता है– देश त्याग कर चले जाना। यह बहुत पुराना साधन है। प्राचीन रोम में धनी वर्ग के लोग, निर्बल वर्ग पर अत्याचार कर रहे थे, इन अत्याचारों से छुटकारा पाने के लिए वे रोम छोड़ कर अन्यत्र चले गये तो धनी वर्ग को उनकी माँगे स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा था। हजरत मुहम्मद मक्का के कट्टरपंथियों के अत्याचारों से बचने के लिए मदीना चले गये थे। गाँधी जी ने हिन्द स्वराज्य में काठियाबाढ़ की एक रियासत का उदाहरण प्रस्तुत किया है– "इसके एक राजा की आज्ञा प्रजा को पसन्द नहीं आयी, इस पर लोगों ने गाँव खाली करना शुरू कर दिया। यह देख कर राजा घबराया उसने प्रजा से माँफी माँगी और अपनी आज्ञा वापस ले ली।"[1]

जब किसी देश के शासक के अत्याचार असहनीय हो जाये, वहाँ सम्मानपूर्वक जीवन न बिताया जा सके तो सत्याग्रही को वह स्थान छोड़ देना चाहिये। सन् 1928 के करबन्दी आन्दोलन में बारड़ोली के कृषकों पर जब बम्बई की सरकार द्वारा भीषण अत्याचार किये गये तो गाँधी जी ने उन्हें हिजरत करने की सलाह दी। वहाँ के किसान पास के बड़ौदा राज्य में चले गये।

ड़. धरना:–

गाँधी जी के सत्याग्रह के साधनो में धरना भी एक साधन है। धरना देकर बैठने का अर्थ यह है कि जब तक हमारी बात नहीं मानी जायेगी तब तक एक ही आसन पर स्थिर होकर भूखे बैठे रहेंगे। धरना में भी अपने को ही कष्ट देकर सही बात मानने के लिए ही बाध्य किया जाता है।

गाँधी जी मादक पेय पदार्थो तथा शराब की दूकानों पर धरना देते समय निम्न लिखित नियमों का पालन करना आवश्यक मानते थे–

1. दुकानों पर धरना देने में आपका ध्यान खरीदने वाले से जुड़ना चाहिये।
2. आपको कभी क्रेता–विक्रेता से असभ्य नहीं होना चाहिये।
3. आपको भीड़ आकर्षित नहीं करनी चाहिये या घेरा नहीं बनाना चाहिये।
4. आपका प्रयत्न मौन–प्रयत्न होना चाहिये।
5. आपको क्रेता और विक्रेता को अपनी सज्जनता से जीतना है, संख्या के भय से नहीं।
6. आपको यातायात में बाधा नहीं डालनी चाहिये।

---

1. हिन्द स्वराज्य–गाँधी जी, पृ0–89

7. आपको हाय–हाय नहीं चिल्लाना चाहिये या शर्माने वाले अन्य उद्‌गार नहीं प्रकट करने चाहिये।
8. आपको क्रेता–विक्रेता की कठिनाइयों को समझना चाहिये और जहाँ आप उनको स्वयं दूर न कर सकें, आपको अपने से बड़े कार्य–कर्ता को सूचना देनी चाहिये।
9. अगर आप विदेशी वस्त्र की दूकान पर धरना दे रहे हैं तो आपको थोड़ी खादी या नमूना पुस्तिका रखनी चाहिये जिसमें दाम लिखे हों। आपको पास का खादी भण्डार जानना चाहिये। जहाँ आप खरीददार को ले जा सकते हैं। यदि खरीददार खादी नहीं खरीदना चाहता और मिल के कपड़े पर जोर देता है तो आपको उसे देशी मिल वस्त्र बता देने चाहिये।
10. आपको खरीददारो में बाँटने के लिए अपने पास सम्बद्ध साहित्य रखना चाहिये।
11. आपको मैजिक लालटेन और भजन दल के साथ या उसके बिना जूलूस या सभा का गठन करना चाहिये अथवा उसमें शामिल होना चाहिये।
12. आपको दिन भर के काम की सही डायरी रखनी चाहिये।
13. यदि आपको आपने प्रयत्न असफल होते लगें, तो निराश न हों, किन्तु कारण और प्रभाव के सार्वभौम नियम पर भरोसा रखें और अश्वस्त रहें कि अच्छे विचार, बचन या कार्य निरर्थक नहीं जा सकते। सद् विचार या सद्‌भाषण हमारा धर्म है फल देना भगवान के हाथ है।"[1]

गाँधी जी मादक वस्तुओं की दूकानों पर स्त्रियों द्वारा धरना दिलवानें के पक्ष में थे उनके शब्दों में–"विचार यह है कि बीस से पच्चीय स्त्रियाँ एक दल बनाकर प्रत्येक शराब की दूकान पर खड़ी हो जायें और वे शराब या ताड़ी की दूकान में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति से सम्पर्क स्थापित करें, उन्हें इस दुर्व्यसन से विरत करें वे दूकानदारों से भी यह अनैतिक व्यवसाय छोड़ का किसी अच्छे साधन द्वारा जीविका अर्जित करने की अपील करें।"[2]

गाँधी जी स्त्रियों को धरना देने के साथ ही पुरूषो को भी इन धरनों मे सहयोग करना आवश्यक मानते थे। गाँधी जी के शब्दो में–"हम पुरूष लोग स्त्रियों द्वारा छेडे गये शराब और विदेशी वस्त्र की दूकानो पर धरने को विश्रृंखलित न करें, हम उन्हें अनेक तरह से सहायता दे सकते हैं। हम शराब और ताड़ी के व्यवसायियों से परिचय बढ़ाकर और व्यक्तिगत रूप में उनसे मुलाकात करके, उनसे कहकर कि वे यह व्यापार छोड़ दें क्योंकि राष्ट्र जब जन्म की प्रसव बेदना से गुजर रहा है, सहायता कर

1. यंग इण्डिया पत्र, दिनांक 19–3–1931, मूल अंग्रेजी से अनूदित
2. सत्याग्रह मीमांशा : गाँधी जी, पृ0–464

सकते हैं। एक व्यक्ति हमारी स्त्रियों के प्रति अधिक और नम्रतापूर्ण आदर प्रदर्शित करके भी सहायता दे सकता है।"[1]

च. हड़तालः–

गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित साधनों में हड़ताल भी सत्याग्रह का एक प्रमुख साधन है। हड़ताल का आशय किसी अन्याय का प्रतिकार करने के लिए दूकान व्यापार एवं कार्यालयों को बन्द रखना है। हड़ताल का उद्‌देश्य सरकार या जनता का ध्यान अन्याय की ओर आकर्षित करना है।

गाँधी जी हड़ताल में किसी को भी जबरन दूकान इत्यादि को बन्द कराने के पक्ष में नहीं थे। वे हड़ताल में शान्तिप्रियता को ही महत्व देते थे। "किसी के ऊपर किसी का दवाव नहीं डाला जाना चाहिये, न व्यापार बन्द रखने के लिए किसी के विरूद्ध किसी प्रकार का बल प्रयोग होना चाहिये, क्योंकि जबरदस्ती से करायी गयी दुकानबन्दी, दुकानबन्दी है ही नहीं... हम लोग न केवल दुकान खोलने की इच्छा रखने वाले दुकानदार या गाड़ी हॉकने की इच्छा रखने वाले गाड़ीवान के कार्य में बाधा न डालने के लिए वरन् उन्हें संरक्षण देने के लिए बाध्य हैं।"[2]

गाँधी जी सत्याग्रही हड़ताल में मौन को आवश्यक मानते थे, उन्हीं के शब्दों में– "सत्याग्रह धर्म पर आश्रित है इसमें केवल सत्य, शान्ति, धैर्य, उदारता एवं अभय इत्यादि पर ही दृष्टि रखनी चाहिये। सत्याग्रह हड़ताल अन्य हड़तालों से अलग ही होगी... सामान्य आन्दोलनों में जो हम वाहवाही में प्राप्त करने की आशा करते हैं। मानव वाणी उस दूरी तक कभी नहीं पहुँच सकती। जिस दूरी तक अन्तः करण की मौन लघुवार्णः पहुँचती है।"[3]

आज–कल छोटी–छोटी बातों पर भूख हड़ताल कर बैठते हैं। गाँधी जी इसके सख्त विरोधी थे। भूख हड़ताल में जो लोग मरजाने के लिए तैयार हो जाते थे, गाँधी जी उनको मरने के लिये कहते थे... "भूख हड़ताल ने निश्चय ही एक महामारी का रूप ले लिया है जरा–जरा सी बातों पर लोग भूख हड़तालों का सहारा लेना चाहते हैं। ...यदि कोई कैदी भूखों मरजाने का निश्चय करे मेरी राय में उसे वैसा करने देना चाहिये। भूख हड़ताली को जबरदस्ती खाना खिलाने से भूख हड़ताल अपना जोर और गौरव, खो देती है।"[4]

---

1. यंग इण्डिया, दिनांक 17–4–1903
2. सत्यागह, कमांक 15, दिनॉक 5–5–1919
3. सत्याग्रह, कमांक 15, दिनॉक 5–5–1919, पृ0–386
4. हरिजन सेवक पत्र, दिनांक 19–8–1939

छ. सामाजिक बहिष्कार:–

महात्मा गाँधी द्वारा प्रतिपादित सत्याग्रह के साधनों में सामाजिक बहिष्कार भी एक महत्वपूर्ण साधन है। यह साधन बहुत पुराने समय से चला आ रहा है। यदि कोई व्यक्ति समाज द्वारा बहुत बुरा समझा जाने वाला कार्य करता है तो उसके जाति या समाज के लोग उसके साथ सभी प्रकार का सामाजिक सम्पर्क रखना बन्द कर देते है। इसी को सामाजिक बहिष्कार कहते है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है यदि समाज उसके सम्पर्क रखना बन्द रख देता है, तो वह व्यक्ति समाज विरोधी कार्य छोड़ने को बाध्य हो जाता है। गाँधी जी के शब्दों में– "सामाजिक बहिष्कार एक बहुत पुरानी परम्परा है। जातियों के उदय के साथ इसका भी जन्म हुआ है। यह एक ऐसा भयंकर दण्ड है। जिसका प्रयोग बड़े प्रभावशाली ढ़ंग पर किया जाता है। यह इस विचार पर आश्रित है कि जातिच्युत की सेवा अथवा आतिथ्य के लिए जाति विवश नहीं है। जब प्रत्येक गाँव अपने में स्वयं सन्तुष्ट इकाई था और हठधर्मी के विरले अवसर सामने आते थे। तब उसकी अच्छी मान्यता थी।"[1]

गाँधी जी सामाजिक बहिष्कार को अहिंसक रूप में प्रयोग करने पर बल देते थे– "मतभेद के कारण यदि हम सामाजिक बहिष्कार की घोषणा करें तो यह एक खतरनाक बात होगी। जल और आहार की पूर्ति को रोकना अहिंसा के सिद्धान्त के सर्वथा विरूद्धहोगा। अहिंसा का युद्ध 'कथनी' को 'करनी' में परिणत करने के प्रचार का एक कार्यक्रम है। प्रत्यक्ष हिंसा द्वारा दूसरो को आज्ञापालन के लिए विवश करना नहीं। हमें अत्यन्त धैर्यपूर्वक अपने विरोधियों को अपने विचारों के अनुकूल बनाने की चेष्टा करनी चाहिये।"[2]

यदि कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से अस्वस्थ है तो उसे चिकित्सक की सेवा से वंचित रखना हिंसा माना है तथा किसी मनुष्य को कुएँ के उपयोग से वंचित रखना गाँव छुड़वाने के बराबर माना है। गाँधी के शब्दों में– "किसी व्यक्ति को चिकित्सक की सेवाओं से वंचित कर देना एक ऐसा अमानुषिक कार्य है जो नैतिक संहिता के अनुसार हत्या करने की चेष्टा करने के समकक्ष है। मुझे तो उसे मनुष्य को हत्या करने और चिकित्सीय सहायता से वंचित करने के बीच कोई अन्तर दृष्टि गोचर नहीं होता जो मरणासन्न है, मेरा विचार है कि आवश्यकता पड़ने पर बैरी को भी चिकित्सा की सुविधा प्रदान करना युद्ध के नियम के सर्वथा अनुकूल है। एक मनुष्य को एक मात्र कुएं के उपयोग से बंचित करने का अर्थ उसे गाँव छोड़कर चले जाने का नोटिस देना है। निश्चय ही उन लोगों के विरूद्ध इस प्रकार के परमदबाव का

1. यंग इण्डिया पत्र, मूल अंग्रेजी से अनूदित, दिनांक 8–12–18
2. यंग इण्डिया पत्र, मूल अंग्रेजी से अनूदित, दिनांक 8–12–18

प्रयोग करने का अधिकार असहयोगियों को प्राप्त नहीं है।"[1] इसी पत्र में आगे गॉधी जी सामाजिक बहिष्कार को स्पष्ट करते हुए कहते हैं– "सामाजिक बहिष्कार का विकल्प निःसन्देह सामाजिक मेल जोल नहीं है। जो व्यक्ति ज्वलन्त समस्याओं सम्बन्ध में सुदृढ़, स्पष्ट जनमत का उल्लंघन करता है। वह सामाजिक हितो और सुविधाओं को प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है। ऐसे व्यक्ति के सामाजिक उत्सवों जैसे–विवाह सम्बन्धी प्रीतिभोजों आदि में न तो हमें भाग लेना चाहिये और न उनकी भेंट स्वीकार करनी चाहिये। लेकिन हमें सामाजिक सेवा से इन्कार करने का साहस नहीं करना चाहिये। यह तो हमारा कर्तव्य है।"[2]

4–हृदय परिवर्तन

हृदय परिर्वतन भी गॉधी वाद का एक प्रमुख सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के प्रयोग से बड़े–बड़े हिंसक, क्रूर और निर्दयी लोगों का प्रेम की शक्ति से हृदय परिवर्तन किया जा सकता है और उन्हें सत्य के मार्ग पर लाया जा सकता है। गॉधी जी ने इस साधन का प्रयोग बाल्यावस्था में ही किया था। उनके एक मित्र ने उन्हें मॉस खिलाने के तरह–तरह के प्रयत्न किये अन्ततः वे मॉस खाना सीख भी गये और जब उनके मन में विचार आया कि मेरे पिता जी को जब यह ज्ञात हो गया कि उनका बच्चा मॉस खाने लगा है, इस विचार के आते ही गॉधी जी का हृदय परिवर्तन हो गया और उन्होने अपने मित्र से कहा कि मैं जीते जी कभी मॉस नहीं खाऊँगा गॉधी जी ने अपनी आत्मकथा में समस्त विवरण को इन शब्दो में व्यक्त किया हैं– "यदि माता पिता जान पायें कि लड़का मॉसाहारी हो गया है तब तो उन पर वज्र ही गिर जायेगा। ये विचार मेरे हृदय को कुतर रहे थे। अतः मैने निश्चय किया यद्यपि मॉस खाना आवश्यक है उसका प्रचार करके हिन्दुस्तान का सुधार करना है। पर मॉ–बाप से झूँठ बोलना और धोखा देना मॉसाहार से बुरा है इस लिये उनके जीते जी मैं मॉस नहीं खा सकता।"[3]

25 मार्च, 1939 ई0 के हरिजन पत्र में हृदय परिवर्तन के सम्बन्ध में गॉधी जी ने लिखा है–"सत्याग्रही न तो अन्यायी को नीचा दिखाना चाहता है, उसका तो उद्देश्य ही है कि प्रेम से समझा–बुझा कर उसके मस्तिष्क एवं हृदय को आस्वस्त कर, उसका हृदय परिवर्तन किया जाय।"[4]

---

1. यंग इण्डिया पत्र, मूल अंग्रेजी से अनूदित, दिनांक 16–2–1931
2. यंग इण्डिया पत्र, मूल अंग्रेजी से अनूदित, दिनांक 16–2–1931
3. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, अध्याय–7 पृ0–33
4. हरिजन पत्र, दिनांक 25–3–1939

गॉधी जी ने अपनी प्रेरक जीवनी में लिखा है कि–"सच्चाई और भलमनसाहत से विरोधी का हृदय भी बदला जा सकता है।"

जब पूँजी पति श्रमिकों का शोषण करता है तो हमे उसके विनाश के विषय में नहीं सोचना चाहिये वरन् असहयोग करके उसका हृदय परिवर्तन करना चाहिये। गॉधी जी के शब्दो में–"पूँजीपति का विनाश मेरा लक्ष्य नहीं हो सकता। मुझे उसके हृदय परिवर्तन की कोशिश करनी चाहिये। मेरा असहयोग जो अन्याय वह कर रहा होगा उसके प्रति ऑखें खोल देना।"[1]

5–पश्चाताप

पश्चाताप भी गॉधीवाद का एक सिद्धान्त है। जब मनुष्य को यह पता लग जाय कि यह कार्य गलत है। तो वह अपनी भूल स्वीकार कर ले। और वह ऐसा गलत कार्य कभी नहीं करने की प्रतिज्ञा करे, इसे ही पश्चाताप कहते हैं।

एक बार गॉधी जी गलत मित्रों की संगत में पड़ गये थे, जिससे वे ऐसी वस्तुओ का सेवन करने लगे थे, जिनका प्रयोग समाज में वर्जित था। गॉधी जी ने इन वर्जित वस्तुओं (बीड़ी, सिगरेट, मॉस) का प्रयोग चोरी छिपे किया तथा चुरा कर पैसे भी खर्च किये, किन्तु शीघ्र ही उनमें प्रायश्चित का भाव आया और उन्होंने आत्मबल बटोर कर दण्ड प्राप्त करने की पूरी तैयारी कर पिता के सामने सब कुछ खोलकर कह दिया। इनके पिता ने चुपचाप दुःख के कुछ ऑसू बहाकर उन्हें बिल्कुल क्षमा कर दिया इससे उनका सारा पाप धुल गया और छिपाकर कोई काम करना ही वे सदा के लिए भूलगये।[2]

पश्चाताप के विषय में गॉधी जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है–"अधिकारी के सामने जो आदमी स्वेच्छा पूर्वक खुले दिल से और कभी न करने की प्रतिज्ञा के साथ अपना दोष स्वीकार कर लेता है वह शुद्धतम प्रायश्चित है।"[3]

मीरा बहिन के नाम लिखे गये पत्र में गॉधी जी ने पश्चाताप के विषय में कहा था– "जहॉ भूल होने का ज्ञान हो वहॉ अधिकॉश मामलों में सुधार कर लेने की तैयारी ही प्रायश्चित और इलाज है।"[4]

---

1. अहिंसक समाजवाद की ओर– गॉधी जी, पृ0–84
2. महात्मा गॉधी का दर्शन– अनुवादक डॉ0 रामजी सिंह, पृ0–6
3. आत्मकथा भाग–1, अध्याय, महात्मा गॉधी, पृ0–6
4. बापू के पत्र मीरा के नाम– नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, पृ0– 18

गॉधी जी ने बीवी अमतुस्सलाम के नाम पत्र में पश्चाताप के विषय में लिखा था– "दोष सब करते हैं लेकिन उसको स्वीकार करना उस दोष का सच्चा प्रक्षालन (प्रायश्चित) है।"[1]

गॉधी जी ने अपनी प्रार्थना सभा में पश्चाताप की महत्ता बताते हुए कहा था– "जो सबसे बड़ा पापी हो उसे अगर सच्चा पछतावा हो जाता है, तो वह सबसे बड़ा सन्त बन जाता है। ऐसे उदाहरण हिन्दू धर्म, इस्लाम धर्म और ईसाई धर्म सब में मिलते हैं।"[2]

इस प्रकार गॉधी जी के पश्चाताप सम्बन्धी विचारों से निष्कर्ष निकलता है कि भूल को स्वीकार करना तथा जीवन में ऐसी भूल कभी न करना ही पश्चाताप है।

ब. समतामूलक गॉधीवादी अवधारणा

गॉधी जी साम्यवाद के समर्थक थे। वे एक ऐसा संगठन बनाना चाहते थे, जिनमें आर्थिक समानता हो सभी का धन्धा सुनिश्चित हो और प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिले। गॉधी जी का साम्यवाद कार्ल मार्क्स के साम्यवाद से अलग है। उन्होंने साम्यवाद के विषय में कहा था– "विश्लेषण करके यदि हम देखें तो अन्त में साम्यवाद का क्या अर्थ होता है? इसका अर्थ है–वर्ण भेद रहित समाज। इस आदर्श को सिद्ध करने का प्रयत्न करने लायक है। केवल उसके प्राप्ति के लिए जब हिंसा की सहायता ली जाती है, तब उसका और मेरा रास्ता अलग हो जाता है ... मनुष्य, मनुष्य के बीच असमानता का, ऊँच–नीच का विचार बुरा है। परन्तु इस बुराई को मैं मनुष्य के हृदय से तलवार के बल पर नहीं निकालना चाहता।"[3]

गॉधीवाद एवं साम्यवाद में मात्र हिंसा और अहिंसा का भेद है, दोनों की समानता के आधार पर कहा जाता है कि– "हिंसावर्जित साम्यवाद गॉधीवाद है तथा साम्यवाद हिंसायुक्त गॉधीवाद है।"[4]

गॉधी जी अर्थिक समस्याओं का समाधान स्थाई रूप में करना चाहते थे। उनके सभी सिद्धान्त सत्य और अहिंसा से जुड़े हैं। उन्होंने आंर्थिक समानता, सबको रोजी तथा शरीर की आवश्यकताओं की पूर्ति का लक्ष्य अहिंसात्मक उपायों द्वारा वैयक्तिक स्वाधीनता और श्रम की प्रतिष्ठा के साथ, हिंसा द्वारा नहीं। इस प्रकार की आर्थिक समानता के लिए उन्होंने सम्पन्न–विपन्न की एकता, धन का समान वितरण,

1. बापू के पत्र बीबी अमतुस्सलाम के नाम, दिनांक 3–6–1940
2. हिलसा, प्रार्थना सभा दिनांक 20–5–1947, हरिजन सेवक दिनांक 1–6–1947
3. गॉधी जी की चुनौती कम्युनिज्म की : गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–110
4. गॉधी जी और साम्यवाद : मशरूवाला, पृ0–13

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त आदि को अपने साम्यवाद के अन्तर्गत रखा है। संक्षेप में इन आर्थिक सिद्धान्तों का विवरण निम्न प्रकार है:-

1. सम्पन्न-विपन्न की एकता:-

गॉधी जी सम्पन्न-विपन्न (मालिक और मजदूर) की एकता को साम्यवाद का ही अंग मानते थे। वे समाज की उन्नति के लिए दोनों की एकता को आवश्यक मानते थे तथा इनकी एकता के लिए अहिंसात्मक उपायों पर बल देते थे। गॉधी जी का विश्वास था यदि मालिक तथा मजदूर (सम्पन्न-विपन्न) एक नहीं होंगे तो उनकी उन्नति नही होगी, बल्कि विनाश होगा। गॉधी जी के शब्दो में- "अहिंसक तरीके में हम पूँजीपति का नहीं पूँजीवाद का नाश करना चाहते हैं। हम पूँजीपति से कहते है कि वह अपने को उन लोगों का संरक्षक समझें, जिन पर उसकी पूँजी के बनने, रहने और बढ़ने का दारोमदार है। श्रमिक को पूँजीपति के हृदय परिवर्तन की प्रतीक्षा की भी जरूरत नहीं है। यदि पूँजी में बल है तो श्रम में भी है। बल का उपयोग ध्वंसात्मक और रचनात्मक दोनों प्रकार से किया जा सकता है। दोनों एक दूसरे पर निर्भर है। ज्यों ही वह पूँजीपति का गुलाम बना रहने के बजाय उसका बराबरी का हिस्सेदार बनने की स्थिति में आ जाता है। यदि वह अकेला ही मालिक बनना चाहेगा तो वह सम्भवतः सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी को मार डालेगा। बुद्धि और अवसर की असमानताऐं अनन्त काल तक रहेंगी। नदी के किनारे रहने वाले आदमी के लिए सूखी मरूभूमि में रहने वाले की अपेक्षा फसल उगाने का अवसर सदा ही अधिक रहेगा। परन्तु यदि असमानतायें हमारे सामने हैं तो मूलभूत समानताओं को भी हमें अपनी पहुँच के बाहर नहीं समझना चाहिये। पशु-पक्षियों की तरह ही प्रत्येक मनुष्य को जीवन की आवश्यकताओं के लिए समान अधिकार है।[1]

हिन्दी नवजीवन पत्र में गॉधी ने सम्पन्न-विपन्न की एकता के सम्बन्ध में लिखा है- "मैं ऐसे किसी समय की कल्पना नहीं कर सकता जब कोई भी मनुष्य दूसरे से अधिक धनवान नहीं होगा। लेकिन मैं ऐसे समय की कल्पना जरूर कर सकता हूँ जबकि धनी लोग गरीबो को लूट कर मालामाल होने से घृणा करेंगे और गरीब लोग धनी लोगों से ईर्ष्या करना बन्द कर देंगे। आदर्श समाज में भी गरीबी अमीरी का फर्क न मिट सकेगा, लेकिन हम झगड़ों को तो अवश्य दूर कर सकते है और हमें करना भी चाहिये। ऐसे बहुत से उदाहरण मौजूद है जिनमें अमीर और गरीब पूर्ण मित्रता के साथ रहते पाये गये हैं। ऐसे उदाहरणो की संख्या बढ़ाना ही हमारा कर्तव्य है।"[2]

---

1. गॉधी जी की चुनौती कम्युनिज्म को : गोपीनाथ दीक्षित, पृ0-140
2. हिन्दी नवजीवन पत्र, 6 अक्टूबर, 1926

2. धन का समान वितरणः–

गाँधी जी ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सर्वोदय नाम से किया। उन्होंने अपने लेखों में धन के समान वितरण पर विचार प्रकट किये– "समान वितरण का सच्चा अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी सारी कुदरती जरूरतें पूरी करने का साधन मिल जाय, उससे ज्यादा नहीं। उदाहरणार्थ, यदि किसी आदमी का हाजमा कमजोर है और उसे रोटी के लिए पावभर आटे की जरूरत है और दूसरे को आधासेर की जरूरत है, तो दोनों अपनी–अपनी आवश्यकतायें पूरी करने का मौका मिलना चाहिये।"[1]

"मेरी कल्पना की आर्थिक समानता का अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को शब्दशः एक ही रकम मिले। इसका अर्थ केवल यह है कि प्रत्येक को अपनी आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त रकम मिलनी चाहिये। दृष्टांत के तौर पर जाड़े में मुझे दुशाले की आवश्यकता होती है, जबकि मेरे भतीजे के लड़के कनु गाँधी को जो साथ रहता है और मेरे पुत्र की तरह है, किसी तरह के गर्म कपड़े की आवश्यकता नहीं होती। कनु का काम साधारण भोजन से चल जाता है। मैं कनु से ईर्ष्या करता हूँ, किन्तु यह व्यर्थ है, कनु एक नवयुवक है, जबकि मैं 76 वर्ष बूढ़ा आदमी हूँ। मेरे भोजन का मासिक व्यय कनु से कहीं अधिक है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हम लोगों के बीच आर्थिक असमानता है। हाथी की आवश्यकता चीटी से हजारो गुना अधिक है, किन्तु यह असमानता का चिन्ह नहीं है। इस प्रकार आर्थिक समानता का वास्तविक अर्थ यह है– प्रत्येक को अपनी आवश्यकतानुसार मिले मार्क्स की व्याख्या भी यही है कि यदि अकेला आदमी भी उतना ही माँगे जितना स्त्री और चार बच्चों वाला व्यंक्ति तो यहाँ आर्थिक समानता के सिद्धान्त का भंग होगा।"[2]

हरिजन सेवक पत्र में गाँधी जी ने आर्थिक समानता काअर्थ बताते हुए कहा था– "प्रत्येक को सन्तुलित भोजन, रहने के लिए साफ सुथरा मकान, बच्चों की शिक्षा की सुविधा और दवा–दारू की काफी मदद मिलनी चाहिये। यह है मेरी आर्थिक समानता की तस्वीर। मैं मूल आवश्यकताओं के अलावा और सभी बातों का निषेध नहीं करता, मगर उनका नम्बर तभी आता है जब पहले गरीबों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हो गयी हो। पहले करने लायक काम पहले होने चाहिये।"[3]

प्रत्येक व्यक्ति से क्षमता के अनुसार काम लिया जाय तथा उसके बदले में आवश्यकतानुसार धन प्राप्त किया जाये जिससे उसका भरण पोषण हो सके यही धन का समान वितरण है।

1., 2. गाँधी जी की चुनौती कम्युनिज्म को : गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–132

3. हरिजन सेवक पत्र : 31 मार्च 1946

3. ट्रस्टीशिप का सिद्धान्तः–

ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त गाँधी जी ने आर्थिक समानता के लिए प्रतिपादित किया था। सर्व प्रथम गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में 1903 में ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इस सिद्धान्त का आधार ईशोपनिषद् का प्रथम श्लोक "ईशावास्यमिदं सर्वंयत्किंचं जगत्यां जगत। तेन त्यक्तेन भुंज्जीथाः मा गृध, कस्मस्विद्धनम्।।"[1] अर्थात् इस जगत मे जो कुछ भी जीवन है वह सब ईश्वर का बनाया हुआ है। इसलिये ईश्वर के नाम से त्याग करके तू यथा प्राप्त भोग किया कर किसी के धन की वासना न कर।

ट्रस्टीशिप का अर्थ गाँधी जी ने गीता से सीखा है, उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा भी है-- "मेरे लिए तो वह पुस्तक (गीता) आचार की एक प्रौढ़ मार्ग दर्शिका बन गयी। वह मेरे लिए धार्मिक कोश का काम देने लगी। जिस प्रकार नये अंग्रेजी शब्दों के हिज्जों या उनके अर्थ के लिए मैं अंग्रेजी शब्द कोश देखता था उसी प्रकार आचार सम्बन्धी कठिनाइयो और उसकी अटपटी समस्याओं को मैं गीता जी से हल करता था। उसके अपरिग्रह और समभाव शब्दो ने मुझे पकड़ लिया। समभाव का विकास कैसे हो उसकी रक्षा कैसे की जाय? ...घर जलाकर तीर्थ करने जाऊँ? तुरन्त ही उत्तर मिला कि घर जलाये बिना तीर्थ किया ही नहीं जा सकता। यहाँ अंग्रेजी कानून ने मेरी मदद की। स्वेल की कानूनी सिद्धान्तों की चर्चा याद आयी। गीता जी के अध्ययन के फल स्वरूप 'ट्रस्टी' शब्द का अर्थ विशेष रूप से मेरी समझ में आया। कानून शास्त्र के प्रति मेरा आदर बढ़ा। ट्रस्टी के पास करोड़ो रुपयों के रहते हुए भी उनमें की एक भी पाई उसकी नहीं होती। मुमुक्षु को ऐसा ही बरताव करना चाहिये, यह बात मैंने गीता से समझी।"[2]

ट्रस्टीशिप के सम्बन्ध में गाँधी जी ने कहा है कि– "सभी सम्पत्ति ईश्वर की है, इसलिए मनुष्य सम्पत्ति के स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता। वह उसे ईश्वरीय सम्पत्ति के रूप में अपने पास रखने का अधिकारी है। विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न प्रकार की क्षमतायें होती हैं, इसलिये यह आवश्यक है कि उनका उत्पादन भी भिन्न प्रकार का होगा और उनकी आवश्यकतायें भी भिन्न प्रकार की होगी। प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि वह अपनी आय का उपयोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की मर्यादा में करे। जो कुछ बचे वह ईश्वर की सम्पत्ति माने और ट्रस्टी की तरह उसका प्रबन्ध करे।"[3]

---

1. ईशोपनिषद् का प्रथम श्लोक
2. आत्मकथा : गाँधी जी, पृ0–228
3. गाँधी जी की चुनौती कम्युनिज्म को : गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–112

निष्कर्ष रूप में प्रत्येक मनुष्य भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद जो सम्पत्ति का भाग बचे उसका स्वामी तो बना रह सकता है और उस सम्पत्ति का उपयोग समाज के हित में किया जावे। जिससे समाज में समता का प्रतिपादन हो सके।

निष्कर्ष रूप में सम्पन्न विपन्न की एकता, धन का समान वितरण, ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त समान रूप से सभी मनुष्यों की अपने जीवन यापन करने के लिए धन अर्जित करने के सम्बन्ध में है तथा जिनमें परिवार का भरण–पोषण ठीक प्रकार से हो सके। ट्रस्टीशिप में अपने जीवन निर्वाह के बाद जो भी शेष बचता है, उसे समाज के उपयोग में लाये जिस पर उसके मालिक का उस पर स्वामित्व तो होता है, लेकिन उसका उपयोग समाज के हित में होता है। गॉधी जी के धन के समान वितरण में ये आवश्यक नहीं है कि सबको एक जैसी ही रकम मिले बल्कि जितने धन में उस मनुष्य का जीवन निर्वाह हो सके उतना उसे मिलना आवश्यक है। सम्पन्न–विपन्न की एकता में मालिक और मजदूर मैत्रीपूर्ण रूप से साथ–साथ कार्य कर सके, उनमें वर्ग संघर्ष की भावना का विकास नहीं होना चाहिये।

स. गॉधी जी के धार्मिक एवम् आध्यात्मिक विचार

1. ईश्वरः–

गॉधी जी आस्तिक, एवम् ईश्वर के अस्तित्व में आस्था रखने वाले सच्चे भक्त थे। उनके आराध्य राम थे किन्तु वे भी राम के ऐसे स्वरूप को मानते थे जो आदि है, सनातन है और शाश्वत है उन्होंने राम के विषय में लिखा भी है– "मेरे राम ऐतिहासिक राम नहीं है, वे नित्य अनादि और अद्वितीय है। मैं केवल उन्हीं की पूजा और भक्ति करता हूँ।"[1]

राम के प्रति भक्ति का भाव और उनमें अडिग आस्था गॉधी जी को अपने परिवार से संस्कार के रूप में प्राप्त हुई थी। उनकी मॉ परम् सात्विक धार्मिक परम्पराओं में आस्था रखने वाली महिला थीं। वे अत्यन्त कठोर से कठोर व्रत का अनुपालन भी प्रसन्नता पूर्वक करती थी। मॉ की इस धार्मिकता का गॉधी जी के जीवन पर यथेष्ठ प्रभाव पड़ा गॉधी जी के बचपन की अनेक घटनाओं में से ऐसी महत्वपूर्ण घटना है, जिसने उन्हें राम नाम का मंत्र प्रदान किया। वस्तुतः गॉधी जी बचपन में बड़े ही भीरू प्रवृत्ति के थे उन्हें हर जगह अकेले में डर लगता था। वे अन्धकार में जाने से डरते थे, उनका यह भय उनके घर कार्य करने वाली एक महिला रम्भाबाई ने दूर किया। रम्भाबाई ने उन्हें अनायास ही राम नाम का आध्यात्मिक मंत्र दे दिया। उसने गॉधी जी से कहा–

1. हरिजन पत्र : गॉधी जी, पृ0–34

"यदि तुम्हें डर लगा करे तो राम का नाम ले लिया करो।" गाँधी जी ने इस मूल मंत्र को स्वीकारा और इससे लाभ का अनुभव भी किया फिर तो आजीवन वे राम के नाम का ही जाप करते रहे।

गाँधी जी ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते थे। इसके लिए वे तर्क भी देते थे– "यदि हमारा अस्तित्व है और हमारे पिता का और फिर उनके पिता, पितामह और परपितामह आदि का अस्तित्व है तो फिर हमें सम्पूर्ण जगत् पिता के अस्तित्व को भी स्वीकार करना ही होगा।"[1]

भारतीय दर्शन में अनेक मत मतान्तर हैं। ईश्वर के सन्दर्भ में अनेक अवधारणायें हैं। ये अवधारणायें परस्पर अन्तर्विरोधी भी है, किन्तु गाँधी की दृष्टि में ईश्वर की जो परिकल्पना थी। वह समस्त अन्तर्विरोधी अवधारणाओं से मुक्त होते हुए भी अन्तविरोधों से दूर थी। उनसे प्रायः लोग ईश्वर के सन्दर्भ में प्रश्न किया करते थे और वे उनको उत्तर भी देते थे। अपने ईश्वर सम्बन्धी मान्यता को उन्होंने 'यंग इण्डिया' में व्यक्त करते हुए लिखा था–

"मैं ईश्वर को सृजनशील मानता भी हूँ और नहीं भी मानता हूँ। जैन दृष्टि से विचार करने पर मैं ईश्वर की सृजनशीलता का प्रश्न ही नहीं उठने दूँगा। किन्तु रामानुज की दृष्टि से उसे मैं स्वीकार करता हूँ। असल बात तो यह है कि हम अज्ञात और अज्ञेय ब्रह्म को जानना चाहते हैं और इसीलिए हमारी वाणी असमर्थ हो जाती है और अक्सर आत्मविरोध पूर्ण लगती है। इसीलिए वेदों में ब्रह्म को नेति–नेति कहा गया है। वह एक ही है फिर भी अनेक है। वह अणु से भी सूक्ष्म है किन्तु आकाश से भी महान् है।"[2]

महात्मा गाँधी मोक्ष प्राप्ति के लिए भी ईश्वर की कृपा 'आवश्यक मानते थे– "पूर्णतः मोक्ष केवल ईश्वर कृपा में ही सम्भव है। उनकी कृपा के समक्ष अपने को सम्पूर्ण रूप से समर्पित किये बिना संयम एवं नियम भी संभव नहीं है।"[3]

महात्मा गाँधी ने ईश्वर साक्षात्कार को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य स्वीकार किया। यहाँ तक कि उससे पृथक उनके व्यक्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती उनकी दिनचर्या का प्रारम्भ ही प्रार्थना से होता था। यहाँ तक कि उनके जीवन का अन्तिम क्षण भी प्रार्थना का ही था और उन्हें प्रार्थना सभा में प्रार्थना के समय ही गोली लगी और उनके मुख से जो अन्तिम शब्द निकले वे यही थे– 'हे राम!' इससे बढ कर उनकी ईश्वर भक्ति का कोई अन्य प्रमाण भी नहीं मिल सकता।

---

1. महात्मा गाँधी का दर्शन : अनुवादक डॉ0 रामजी सिंह, पृ0–31
2. यंग इण्डिया : दिनांक 21–1 –26
3. महात्मा गाँधी की आत्मकथा

2. जगतः–

गॉधी जी के धार्मिक एवं आध्यात्मिक विचारों में जगत को गॉधी जी ने मानव का इस जगत में जीव के प्रति करुणा करने के पीछे मानव का निर्वाण पाने का लालच बताया है। उन्होंने कहा यदि मानव जगत को इसी रूप में ले तो सम्पूर्ण जगत स्वर्ग बन जायेगा। उन्होंने गुजराती पत्र इण्डियन ओपेनियन में लिखा था– "जो आदमी खुदा का बन्दा बनकर निरन्तर मनुष्य जाति अथवा जीव मात्र की सेवा करता है और उसी में मग्न रहता है। उसे अवश्य खुदा की चाकरी में रहने–निर्वाण पाने का लालच बताया है। ऐसे मनुष्य की हम पूजा करते हैं। यदि संसार में इस प्रकार के बहुत से मनुष्य हो जाये तो आज जो पाप, क्लेश, दुःख, भुखमरी, रोग आदि दिखाई पडते है। उनके बजाय पुण्य, समृद्धि, शान्ति, सुख और ऐक्य दिखाई देने लगेंगे।"[1]

उन्होंने प्रेम तत्व को संसार का शासक मानते हुए उसे संसार की सूक्ष्म शक्ति माना है। गॉधी जी के शब्दों में– "प्रेम तत्व ही संसार पर शासन करता है। मृत्यु से घिरा रहते हुए भी जीवन अटल रहता है। विनाश के निरन्तर जारी रहते हुए भी यह विश्व बराबर चलता ही रहता है। असत्य पर सत्य सदा जय पाता है। प्रेम घृणा को जीत लेता है, ईश्वर शैतान पर सदैव विजय पाता है।"[2]

"प्रेम ही संसार में सबसे सूक्ष्म शक्ति है।"[3]

गॉधी जी जगत का आधार तत्व प्रतिज्ञा मानते थे। उनका मानना था कि जगत में प्रतिज्ञा ही है; जिसके बल पर सम्पूर्ण जगत की क्रियाओं का सम्पादन होता है। उन्होंने प्रतिज्ञा का अर्थ निश्चल होना बताया। उन्होंने कहा–"प्रतिज्ञा के बल पर ही यह संसार टिका हुआ है। अगर मनुष्य के आपसी व्यवहार प्रतिज्ञा बद्ध न हो तो संसार छिन्न–भिन्न हो जाय। हिमालय प्रतिज्ञाबद्ध है। अगर वह जब चाहे तब हलचल कर सकता होता तो, आज भारत का अस्तित्व नहीं होता, हो भी नहीं सकता... अनिश्चित मनुष्य के सहारे संसार का कोई काम नहीं किया जा सकता।"[4]

गॉधी जी ने अपनी आत्मकथा में आत्म शुद्धि के विभिन्न मार्ग बतलाये वे मन के विकारों की जगत के साथ तुलना करते हुए कहते हैं– "मन के विकारों को जीतना संसार को शस्त्र युद्ध से जीतने की अपेक्षा मुझे कठिन मालूम होता है। हिन्दुस्तान आने के बाद मैं भी अपने भीतर छिपे विकारों को देख सका हूँ, शर्मिन्दा

1. इण्डियन ओपेनियन पत्र : गुजराती संस्करण, दिनांक 15–2–1908
2. यंग इण्डिया : हिन्दी नवजीवन पत्र : दिनांक 26–10–1924
3. यंग इण्डिया : हिन्दी नवजीवन पत्र : दिनांक 7–12–1924
4. हिन्दी नवजीवन पत्र : दिनांक 15–8–1929

हुआ हूँ किन्तु हारा नहीं हूँ।"[1]

गॉधी जी गोपनीयता को पाप मानते हैं। जगत में गोपनीयता एक अभिशाप है। मानव की प्रवृत्ति ही छिपाने की होती है। गॉधी जी का मानना है– "हम गन्दी चीजों को देखना या छूना नही चाहते, हम उन्हें दृष्टि से दूर रखना चाहते है। हमारे वचन के साथ भी यही होना चाहिए। मैं सुझाव दूँगा कि हम ऐसे विचारों का चिन्तन भी टाल जायें, जिनको हमें संसार से छिपाना पड़े।"[2]

गॉधी जी ने जब आश्रम के लिए नियम बनाये तो उन्होंने अपने कई मित्रों को आलोचना एवं समालोचना करने के लिए पत्र भेजे सर गुरूदास बनर्जी भी उन्हीं में से एक थे बनर्जी जी ने सुझाव दिया कि एक नम्रता का व्रत भी नियमों में होना चाहिये गॉधी जी अपने विचार इस सन्दर्भ में इस प्रकार व्यक्त करते हैं– "जो व्यक्ति सारे संसार के साथ यहाँ तक कि शत्रु कहे जाने वाले के साथ भी प्रेम करना चाहता है, .वह जानता है कि केवल अपने बल पर ऐसा करना कितना असम्भव है। जब तक वह अपने को क्षुद्र रजकण नहीं समझने लगेगा तब तक अहिंसा तत्व को ग्रहण नहीं कर सकता... इस संघर्ष पूर्ण जगत में कौन कहने का साहस कर सकता है. .. जो बात भौतिक विषय में सत्य है वही आध्यात्मिक विषय में भी सत्य है यदि एक सांसारिक संग्राम में विजय पाने के लिए यूरोप ने पिछले युद्ध में, जो कि स्वयं नाशवान वस्तु है, कितने करोड़ लोगों का बलिदान कर दिया, तो यदि आध्यात्मिक युद्ध में करोंड़ो लोगों को इसके प्रयत्न में मिट जाना पड़े, ताकि संसार के सामने एक पूर्ण उदाहरण रह जाय, तो क्या आश्चर्य है? यह हमारे अधीन है कि हम असीम नम्रता के साथ इस बात का उपयोग करें।"[3]

"मेरा सत्य, मेरी अहिंसा, मेरा ब्रह्मचर्य, ये मेरे और मेरे कर्ता से सम्बन्ध रखने वाले विषय है। ये बिक्री की चीजें नही हैं। जो युवक इनका व्यापार करने का साहस करेगा, वह अपना ही नाश कर बैठेगा। संसार के पास ऐसा कोई बाट नहीं है, कोई साधन नहीं है जिससे इन बातों की तोल की जा सके। वहां छानबीन और विश्लेषण की गुजर नहीं। इसलिए हम कार्यकर्ताओं को चाहिए कि हम इन्हें केवल अपने शुद्धकरण के लिए प्राप्त करें। हम संसार से कह दें कि वह हमारे कामों से हमारी पहिचान करे।"[4]

---

1. आत्म कथा : पृ0– 432–433, संस्करण 1957
2. यंग इण्डिया पत्र– 22–12–1920, मूल अंग्रेजी से अनूदित, कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी खण्ड 19, पृ0–144–145
3. यंग इण्डिया–हिन्दी नवजीवन, 25–6–1924
4. यंग इण्डिया–हिन्दी नवजीवन, 25–6–1924

महात्मा गॉधी हिन्दी नवजीवन पत्र के माध्यम से इन्द्रियों के उपयोग आवश्यक हैं या नहीं इस विषय पर कहते हैं– "यह सिद्धान्त नहीं है कि इन्द्रिय मात्र का उपयोग आवश्यक है। जो पुरूष ज्ञान पूर्वक बाचा के उपयोग का त्याग करता है, वह संसार पर उपकार करता है, ज्ञान और इच्छापूर्वक किये गये इन्द्रिय दमन से आत्मा को लाभ होता है हानि नहीं... विकारों की बृद्धि अथवा तृप्ति में ही जगत का कल्याण है, ऐसी कल्पना करना अत्यन्त दोषपूर्ण है, ऐसा मेरा विश्वास है। शास्त्र कहते है और यही आत्मदर्शियों का स्वच्छ अनुभव है।"[1]

गॉधी जी सांसारिक विषय वस्तुओं भोग लिप्सा से दूर जगत को परम् ब्रह्म के सच्चे दर्शन कराना चाहते थे। गॉधी जी का मानना है कि प्रत्येक सांसारिक वस्तु में गुण के पीछे कोई न कोई दोष अवश्य ही छिपा होता है गॉधी जी के इस विचार का पता हमें कुसुम बहिन देसाई को गॉधी जी द्वारा लिखे एक पत्र से चलता है– "प्रत्येक गुण ढूँढ कर उनका चिन्तन करना। दोष दिखे तब सोचना कि दोष रहित संसार में एक भी चीज नहीं होती। 'जड़–चेतन गुण दोषमय' नामक दोहा गाना और उसका मनन करना।"[2]

महात्मा गॉधी कई जटिल समस्याओं का समाधान पत्रों के द्वारा ही कर दिया करते थे। गॉधी जी को मांडले से एक डाक्टर साहब ने कई सबाल भेजे जिसमें से पहला सवाल श्रद्धा पर विश्वास के विषय में था। गॉधी जी ने पत्र के जबाव में लिखा– "यह तो केवल उस व्यक्ति की विश्वासालुपता का प्रश्न है। संसार की बातों में प्रायः धोखा खाते रहने पर भी हम लोगों की बात पर विश्वास करते है। तब हम जीवन–मरण की समस्या पर संसार के सन्तों की यह बात क्यों न मान लें कि ईश्वर वास्तव में अवश्य है और उसकी प्राप्ति सत्य और निष्पाप मार्ग (अहिंसा) से होगी। यह कम से कम युक्तियुक्ति अवश्य है कि मैं पत्र लेखक से सारे संसार की साक्षी में उतनी श्रद्धा रखने को कहूँ जितनी मुझरो आशा रखेंगे कि अनेक डाक्टरो द्वारा कोई फायदा न होने पर भी मैं उनकी दी हुई दवा ऑख–कान मूँद कर केवल उसी श्रद्धासहित खा लूँ। मैं यह कहने का साहस करता हूँ कि श्रद्धा और विश्वास न हो तो क्षण भर में प्रलय हो जाय।"[3]

महात्मा गॉधी संसार के पापों में से आत्महत्या को महापाप मानते थे। वे ऐसे व्यक्ति को दोषी मानते थे। उनका यह मत आश्रम की बहिनों को लिखे पत्र से

1. हिन्दी नवजीवन, दि0– 8–10–1924
2. सक्खर, दि0– 9–2–1929, बापू के पत्र : कुसुम बहिन देसाई के नाम, पृ0–19, नवजीवन प्रकाशन, मंगल प्रभात
3. यंग इण्डिया : हिन्दुस्तान नवजीवन, दि0– 14–4–1927

स्पष्ट हो जाता है– "आत्महत्या करने वाले संसार की झूठी चिन्ता करने वाले होते हैं या दुनिया से अपने दोष छिपाने वाले होते है। हम जो नहीं है वह दीखने का ढोंग कभी न करें, जो न हो उस करने के मनोरथ न करें।"[1]

3. मानवः–

गॉधी जी जीवन पर्यन्त ही जनकल्याण और मानव के विकास के लिए कार्य करते रहे। वे मानवता के सच्चे पुजारी थे। एक बार किसी ने गॉधी जी से प्रश्न किया कि गौ रक्षा के विषय में बताइये तो गॉधी जी ने उत्तर दिया– "मैं गाय को पूजता हूँ, वैसे मैं मानव को भी पूजता हूँ। जिस प्रकार गाय उपयोगी है उसी प्रकार मनुष्य भी... फिर चाहे वह मुसलमान हो या हिन्दू उपयोगी है। तब क्या गाय को बचाने के लिए मैं मुसलमान से लडूँगा? क्या उसे मारूँगा? ऐसा करने से मैं मुसलमान का और गाय का दुश्मन बनूँगा। इसलिये मैं कहूँगा कि गाय की रक्षा करने का एक यही उपाय है कि मुझे अपने मुसलमान भाई के सामने हाथ जोड़ने चाहिये और उसे देश की खातिर गाय को बचाने के लिये समझाना चाहिये।"[2]

गॉधी जी ने हमेशा ही हिन्दू मुसलमान सबकी भलाई के लिये कार्य किये। सम्पूर्ण विश्व को ही भाई चारे की दृष्टि से देखा। गॉधी जी के शब्दों में– "मुझे विश्वास है कि मानव का समस्त पुरूषार्थ उसके अपकर्ष के लिए नहीं, बल्कि उत्कर्ष के लिए है, वह कुछ और नहीं अज्ञात रूप में, किन्तु निश्चित रूप से विश्व में प्रेम के नियम का प्रभाव है।"[3]

गॉधी जी धर्म, राजनीति और समाज आदि में मानव का विखण्ड नहीं चाहते, वे मानव की एकता में ही मानव का विकास मानते थे। गॉधी जी के शब्दों में– "मैं यह मानता हूँ कि मानव–जीवन, मानव समाज को हम राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक टुकडों में नहीं बॉट सकते। सभी एक दूसरे को प्रभावित करते रहते है।"[4]

गॉधी जी सम्पूर्ण मानव समाज के बड़े हिमायती थे, उन्होंने मशीनों के वढते हुए प्रयोग को देख कर मानव समाज के सम्बन्ध में कहा था– "मैं यन्त्रों का विरोधी नहीं मैं तो उसके पागलपन का विरोधी हूँ। मानव के लिए भला उस यन्त्र का क्या उपयोग जिससे हजारो व्यक्ति बेकार होकर भूख से सड़कों पर मारे–मारे फिरें। मैं

1. बापू के पत्र आश्रम की बहिनो को, पृ0–41, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, दिनांक– 1–8–1927 श्रावण सुदी 4 सम्वत् 1983
2. हिन्द स्वराज्य : गॉधी जी, पृ0–34
3. यंग इण्डिया पत्र : दिनांक 12–11–1921
4. यंग इण्डिया पत्र : दिनांक 2–3–1922

तो मानव के एक अंश के लिए नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के लिए सोचता हूँ कि सबको अधिक से अधिक अवकाश कैसे मिले? इसलिये मैं कुछ चुने हुए व्यक्तियों के पास नहीं, बल्कि सबों के पास सम्पत्ति देखना चाहता हूँ। आज यन्त्र के कारण एक व्यक्ति लाखों व्यक्तियों का मालिक बन जाता है। इसके पीछे मनुष्य के परिश्रम बचाने की मानवीय भावना नहीं है, बल्कि मुनाफे का शुद्ध लाभ है इसलिए इस व्यवस्था के विरूद्ध सम्पूर्ण शक्ति से संघर्ष कर रहा हूँ। मैं सभी यन्त्रों के खिलाफ नहीं हूँ क्योंकि मेरे विचार से यंत्र मनुष्यो के लिए है, मनुष्य यंत्र के लिए नहीं।"[1]

गॉधी जी ने हरिजन पत्र में मानव सेवा को ही ईश्वर सेवा माना है– "ईश्वर साक्षात्कार ही मानव का अन्तिम लक्ष्य है यह जनसेवा से ही सम्भव है। मैं मानवता से अलग ईश्वर की कल्पना नहीं कर सकता हूँ।"[2]

गॉधी जी मानव के अर्न्तगत धार्मिक विचारों में ईश्वर जगत, मानव, कर्मवाद आदि रूप देखने को मिलते हैं। गॉधी जी ने मानव के प्रत्येक क्षेत्र को स्पर्श किया है। उन्होंने निम्न से निम्न जाति, सम्प्रदाय धर्म किसी भी क्षेत्र में मानवता से हटकर कभी भी कोई कार्य नहीं किया। वे आजीवन ही मानव की सेवा में संलग्न रहे। वे मानव मात्र में ही ईश्वर के दर्शन करते थे। इसी लिए मानव के बीच ऊँच--नीच का भाव उन्हें दु:खी कर देता था। समाज में अछूत कहे जाने वाले वर्ग को सम्मान दिलाने के लिए उन्होंने उसे हरिजन शब्द का नाम देकर समाज में सम्मान जनक स्थान दिलवाया।

4. पुनर्जन्म:–

गॉधी जी की पुनर्जन्म में आस्था थी क्योंकि वे भारतीय दर्शन से पूर्णत: प्रभावित थे। भारतीय दर्शन परम्परा आत्मा को अमर मानती है, साथ ही पुनर्जन्म में भी विश्वास करती है। श्रीमद्भगवत् गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन का मोह दूर करने के लिए उपदेश देते है, उसमें आत्मा की अमरता की तथा पुनर्जन्म की बात आती है–

"वासासि जोर्णानि यथा विहाय नवानि गृहाणाति नरोअपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयति नवानि देही।।"[3]

अर्थात् हे! अर्जुन न कोई मरता है और न कोई मारता है। आत्मा तो अजर–अमर है। जिस प्रकार से मनुष्य पुराने कपड़ों को त्यागकर नये वस्त्र धारण

1. यंग इण्डिया पत्र : दिनांक 13–11–1924
1. हरिजन पत्र : दिनांक 19–3–1936
2. श्रीमदभगवत् गीता : अध्याय–2, श्लोक–22

करता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग कर नये शरीर में प्रवेश करती है। महात्मा गॉधी को गीता ने बहुत ही प्रभावित किया, जिसका उन्होंने अपनी आत्मकथा तथा प्रवचनों में जिक्र किया है। उन्होंने गीता के सम्बन्ध में यहॉ तक कहा है कि मैं जब किसी समस्या से जूझता हूँ तो उसका समाधान मुझे गीता जी में मिल जाता है। गॉधी जी पुनर्जन्म को मानते थे। उन्होंने कहा भी है– "मैं वेद, उपनिषद्, पुराण और जो कुछ हिन्दू धर्म शास्त्र नाम से जाना जाता है, तथा अवतारों और पुनर्जन्म में मेरा विश्वास है।"[1] वे हिन्दू धर्म को शाश्वत मानते हैं तथा मोक्ष या मुक्ति को भी मानते हैं। उन्होंने कहा है– "हिन्दू धर्म की मूलभूत मान्यताएँ अन्य विशाल धर्मों के समान शाश्वत हैं और आसानी से समझ में आने वाली है। हर हिन्दू एक ही ईश्वर को मानता है, पुनर्जन्म मानता है और मुक्ति या मोक्ष मानता है।"[2]

5. कर्मवादः–

गॉधी जी की कर्म में अटूट श्रद्धा थी गॉधी जी के अनुसार आदर्श को ध्यान में रख कर किया गया, श्रम ही कर्म है। गॉधी जी भारतीय दर्शन में पूर्ण आस्था रखते थे। उनके मतानुसार प्रत्येक कर्म का ईश्वर नियमानुसार फल प्रदान करता है। वे कहते भी है– "जैसा मुनष्य बोयेगा वैसा ही काटेगा। कर्म का सिद्धान्त अखण्डित और अखण्डनीय है। इसलिए ईश्वर के हस्तक्षेप का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर तो नियम का निर्धारण कर देता है, फिर वह हमें भी यूँ ही छोड़ देता है।"[3]

महाभारत में भी अर्जुन जब अपने सगे सम्बन्धियों को देख कर युद्ध करने के लिए तैयार नहीं थे। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने का उपदेश दिया भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है–

"कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फल हेतु भूर्मा ते सङ्गोअस्त कर्माणि।।"[4]

अर्थात् तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे। इस कर्म के नियम के अनुसार ही गॉधी जी शरीर श्रम की महत्ता पर बल देते थे, जिसकी झलक उन्हें भगवत गीता के तृतीय अध्याय में मिली– "जिसमें बिना यज्ञ किये खाने वाले को चोर कहा गया है।" गॉधी जी के आश्रम के लोग खेती–बाड़ी

1. हिन्दू धर्माभिमानी महात्मा गॉधी : जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–14
2. हिन्दू धर्माभिमानी महात्मा गॉधी : जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–15
3. महात्मा गॉधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0–43–44
4. श्रीमद्भगवत गीता : अध्याय–2, श्लोक–47

करते थे तथा बचे हुए समय में चरखा कातते थे। जिसके फलस्वरूप उन्हें खेती से खाने के लिए अनाज एवं सूत कातने से कपड़ा उपलब्ध होता था। गॉधी जी कहते थे– "खेती का आदर्श ध्यान में रखते हुए लोग उसके विकल्प में दूसरे श्रम जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगीरी, लुहारी इत्यादि भी कर सकते हैं।"[1]

द. गॉधीवादी मानवतावादः–

सन् 1920 में महात्मा गॉधी ने राजनीति में सक्रीय रूप से भाग ले लिया था। गॉधी जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन में मानवता को प्रमुख स्थान दिया। गॉधी जी ने दुःखी और निराश्रित जनता की भलाई के कार्य किये। उन्होंने धार्मिक, साम्प्रदायिक जातीय एवं राष्ट्रीय एकता पर विशेष बल दिया तथा 'वसुधैवकुटुम्बकम' की भावना को बढावा देते हुए उन्होंने विश्व बन्धुत्व की भावना, दलित जीवन के प्रति करुणा और बन्धुत्व, जीव दया जैसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए दीन–हीन मानव को गले लगाया। वेदनावतार विश्व मानवता को हिंसा वृत्ति का परित्याग करते हुए स्थापित किया।

गॉधी जी मानवतावादी विचारो से ओत–प्रोत थे। ये मानवता वादी विचार गॉधी वादी मानवतावाद के नाम से जाने जाते है जो निम्न है–

1. विश्व बंधुत्वः–

यह गॉधीवादी विचारधारा प्रमुख तत्व है। गॉधी जी मानवतावादी विचारक थे। 'बसुधैव कुटुम्बकम' की भावना से ओत–प्रोत थे। उनका कहना था कि मानव जाति के विकास में सार्वजनिक जीवन के अनेक स्तर देखने को मिलते हैं जैसे परिवार, जाति, गॉव, प्रदेश और राष्ट्र। इन सबको पार करने के बाद ही विश्वबन्धुत्व या अर्न्तराष्ट्रीयता के अन्तिम आदर्श को प्राप्त किया जा सकता है।"[1] गॉधी जी विश्वबन्धुत्व की भावना के लिए राष्ट्रीय एकता को आवश्यक मानते थे। गॉधी जी के शब्दों में– "मेरे विचार में बिना राष्ट्रवादी हुए अन्तर्राष्ट्रीयवाद तभी सम्भव हो सकता है, जब कि राष्ट्रवाद एक यथार्थ बन जाय।"[2]

गॉधी जी भारत का उत्थान भी विश्व बन्धुत्व की भावना के लिए ही करना चाहते थे। गॉधी जी ने 'यंग इण्डिया' के 4 अप्रेल, 1929 के अंक में लिखा भी था– "मैं भारत का उत्थान इसलिये चाहता हूँ कि जिससे सम्पूर्ण विश्व का हित हो

1. महात्मा गॉधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0–84
1. भारतीय राजनीतिक चिन्तन : डॉ0 पुखराज जैन, पृ0–179
2. भारतीय राजनीतिक चिन्तन : डॉ0 पुखराज जैन, पृ0–179

सके। मैं भारतवर्ष का स्थान दूसरे राष्ट्र के विनाश पर नहीं चाहता। मैं उस राष्ट्र भक्ति की निन्दा करता हूँ। जो हमें दूसरे राष्ट्रों के शोषण तथा मुसीबतों से लाभ उठाने के लिये उत्साहित करती है।"[1]

2. जीव दयाः–

जीव दया गॉधीवादी मानवतावाद के प्रमुख तत्वों में से एक है गॉधी जी ने जीवदया को आत्मा का महान गुण माना है। उन्होंने जीवदया के सम्बन्ध में बताया है कि– "जीवदया में विचार, विवेक, उदारता, अभय, नम्रता और शुद्ध ज्ञान की आवश्यकता है।"[2]

गॉधी जी हमेशा ही प्राणियों पर दया ही केवल जीवदया नही मानते हैं। अनेक अवसरों पर जीव लेना भी जीवदया माना है। एक बार उनके आश्रम में एक बछड़ा वेदना से छटपटा रहा था, गॉधी जी से उसकी वेदना देखी नहीं गई। इसलिए उन्होंने उसे वेदना से मुक्त कराने के लिए डॉक्टर द्वारा सुई लगवादी। जिससे वह क्षण भर में मर गया। इस सम्बन्ध में गॉधी जी ने कहा भी है– "जीव लेना सदा हिंसा नहीं है। अनेक अवसरों पर जीव न लेने में ही हिंसा है।"[3]

समग्र रूप में मन, वाणी और कर्म से किसी प्रकार का जीव को कष्ट न पहुँचाना ही जीवदया है।

3. दलित बन्धु के प्रति करुणाः–

महात्मा गॉधी ने दीन–दुःखी मानवता के कष्टों का पूर्णतया निवारण करने का प्रयास किया। वे भगवान का निवास भी दीन–दुःखियों के बीच ही मानते थे। जैसा कि उन्होंने कहा भी है– "...मुझे यह अनुभूति हो चुकी है कि भगवान दुखियों के बीच में ही रहते हैं, इसलिये शोषित और संत्रस्त व्यक्तियों के लिए इतनी करुणा है। चूँकि मैं राजनीति में हिस्सा लिए बिना इस प्रकार की सेवा नहीं कर सकता, इसलिये मैं उनके लिये इस राजनीति में हूँ।"[4]

गॉधी जी ने समाज में अछूत कहे जाने वाले लोगों को हरिजन का नाम दिया। गॉधी जी ने बी0 ए0 के विद्यार्थियों को लिखे एक पत्र में कहा था देखिये–

1. भारतीय राजनीतिक चिन्तन : डॉ0 पुखराज जैन, पृ0–179
2. अहिंसा और सत्य : गॉधी जी, पृ0–310
3. हिन्दी नव जीवन–पत्र : दिनांक 28–10–26
4. महात्मा गॉधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0–37

"जात–पॉत के बारे में मैंने बहुत बार कहा है कि आज के अर्थ में मैं जात–पॉत को नहीं मानता। यह फालतू अंग है और तरक्की के रास्ते में रुकावट जैसा है... कोई भी मनुष्य अपने को दूसरे से ऊँचा मानता है, तो वह ईश्वर और मनुष्य दोनों के सामने पाप करता है।"[1]

गॉधी दलित बन्धुओं को समाज में बराबर का दर्जा देते थे। वे वर्णाश्रम की व्याख्या करते हुए प्रार्थना सभा में कहते हैं– "ब्राह्मण ने यदि ज्ञान के द्वारा सेवा करने के अपने कर्तव्य का त्याग नही किया है तो, वह अपने शूद्र भाई के साथ भोजन पान करने पर भी ब्राह्मण बना रह सकता है... जो हिन्दू अपने को श्रेष्ठ समझ कर किसी दूसरे के साथ भोजन पान करने से इंकार करता है। वह अपने धर्म का आदर्श बिल्कुल उल्टा दिखाता है।"[2]

हिन्दू धर्म के प्रति गॉधी जी को विश्वास था। उन्होंने हिन्दू धर्म में प्रचलित प्रथाओं को उठाते हुए छुआ–छूत को गलत माना और कहा– "मैं तो अछूत जातियों को अपने से अलग रखने की अपेक्षा अपने शरीर के टुकडे–टुकडे कर दिये जाने से अधिक सन्तुष्ट रहूँगा। अगर हिन्दू लोग अपने उच्च और उदान्त धर्म को, अस्पृश्यता के कलंक को कायम रखते हुए, निन्दनीय बनायेंगे तो वे अवश्य ही कभी न तो स्वतंत्रता के योग्य होगे और न ही उसे प्राप्त कर सकेंगे और चूंकि हिन्दू धर्म को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ, यह कलंक मेरे लिए एक असह्य भार हो जायेगा। अपनी जाति के पंचमांश मनुष्यों को बराबरी के साथ रहने–घरने का अधिकार देने से इन्कार करके हम ईश्वर से मुँह न मोडें।"[3]

4. सुधार की भावना:–

यह गॉधीवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। गॉधी जी ने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में अत्यधिक उपयोगी मानकर इसका व्यवहार किया। वे इस बात पर विश्वास करते थे कि जो व्यक्ति अपना सुधार नहीं कर सकता वह किसी अन्य के सुधार के बारे में सोच भी कैसे सकता है। स्वयं के सदाचारी हुए बिना सदाचार नही सिखाया जा सकता जैसा कि कहा गया है– "पर उपदेश कुशल बहु तेरे।" इसलिए हजार उपदेशों से एक सदाचार अच्छा है। फिर यदि कोई किसी दूसरे,

1. समाज सुधार की समस्याएं और समाधान : ले0 गॉधी जी, प्रधान सम्पादक श्री रामनाथ सुमन, पृ0–44–45
2. हिन्दू धर्म सिद्धान्त : महात्मा गॉधी संकलन, पृ0–371
3. हिन्दू धर्म सिद्धान्त : महात्मा गॉधी, पृ0–374, महात्मा गॉधी संकलन, गॉधी हिन्दी पुस्तक भण्डार, बम्बई, संस्करण पौष–1978

के आचरण को सुधारने के लिए प्रेम का मार्ग अपनाता है तो उसको आदर, विश्वास प्रेम मिलेगा ही किन्तु यह तभी हो सकता है जब वह स्वयं अपने दोषों को दूर करने का प्रयास करेगा।"[1]

5. धार्मिक एकताः—

भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। अतः यहाँ पर किसी एक धर्म को राष्ट्रधर्म नहीं माना गया है। हमारे यहाँ सभी धर्मों के प्रति समभाव है। महात्मा गाँधी भी धार्मिक एकता के पक्षधर थे। उन्होंने सभी धर्मो की एकता के लिए समय—समय पर विचार प्रकट किये। एक स्थान पर गाँधी जी ने धार्मिक एकता के सम्बन्ध में कहा है— सभी धर्म मेरे लिए मेरे अपने हिन्दू धर्म के ही समान हैं, क्योंकि सभी मानव आपस में भाई—भाई है। इसलिए मुझे दूसरे धर्मों के प्रति भी वही आदर भाव हैं जो मुझे अपने धर्म के प्रति है। इसलिए मेरे सामने धर्म—परिवर्तन का प्रश्न ही नहीं उठता। 'धार्मिक भ्रातृत्व' का यही उद्देश्य होना चाहिये कि किस प्रकार एक हिन्दू को अच्छा और आदर्श हिन्दू तथा एक मुसलमान और एक ईसाई को अच्छा मुसलमान और ईसाई बनाया जाय।"[2] गाँधी जी सभी धर्मों की विविधता में एकता चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है— "हम सब धर्मो को मृतवत् एक सतह पर लाना नहीं चाहते, बल्कि विविधता में एकता चाहते हैं। पूर्व—परम्परा तथा आनुवांशिक संस्कार, जलवायु ओर दूसरी आस—पास की बातों के प्रभाव को उन्मूलन करने का प्रयत्न केवल असफल ही नही अधर्म भी होगा। आत्मा सब धर्मो की एक है ...हाँ, वह विभिन्न आकृतियों में मूर्तिमान होती है और यह बात कालान्तर तक बनी रहेगी। इसलिए जो बुद्धिमान हैं, समझदार है,. वे तो ऊपरी कलेवर पर ध्यान न देकर विभिन्न आकृतियों में उसी एक आत्मा का दर्शन करेंगे। हिन्दुओं के लिए यह आशा करना कि इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म और पारसी धर्म को हिन्दुस्तान से निकाल दिया जा सकेगा एक निरर्थक स्वप्न है। उसी तरह मुसलमानो को भी यह आशा करना कि किसी दिन सिर्फ उनके कल्पनागत इस्लाम का राज्य सारी दुनियाँ में हो जायेगा, कोरा स्वप्न है। पर अगर इस्लाम के लिए एक ही खुदा को और उसके पैगम्बरों की अनन्त परम्परा को मानना काफी होता है तो हम सब मुसलमान है। इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं। सत्य एक ही धर्म—ग्रन्थ की एकान्तिक सम्पत्ति नहीं है।"[3]

---

1. महात्मा गाँधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0—67
2. महात्मा गाँधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0—36
3. हिन्दू धर्मभिमानी महात्मा गाँधी : संम्पादक, जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0—22—23

6.साम्प्रदायिक एकता:--

गाँधी जी साम्प्रदायिक एकता चाहते थे। स्वतंत्रता के दौरान देश का विभाजन हुआ। भारत और पाकिस्तान दोनों ही नव–निर्मित देशो में साम्प्रदायिक पागलपन की बाढ़ को रोकने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगादी और उसे रोकने में वे बहुत कुछ सफल भी हुए।[1] गाँधी जी ने हिन्दू–धर्म की विशेषतायें बताते हुए हिन्दू–धर्म का अनेक मत सम्प्रदायों के साथ सह अस्तित्व भी स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में उनका कथन उल्लेखनीय है– "हिन्दू धर्म नकारात्मक नहीं है इसमें दुनियाँ भर के पैगम्बरों की पूजा के लिए स्थान है। सामान्य अर्थो में यह मिशनरी धर्म नहीं है। निःसन्देह इसने अनेक जातियों को अपने में मिलाने का काम किया है। मगर आत्मसात की यह प्रक्रिया बड़ी सूक्ष्म एवं सतत् विकासमान प्रवाह का परिणाम थी। हिन्दू धर्म प्रत्येक को अंपने विश्वास के अनुसार ईश्वरोपासना का उपदेश देता है और इसीलिये अनेक मत सम्प्रदायों के साथ इसका शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व है।"[2]

गाँधी जी भारत के सभी सम्प्रदायों (हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई और पारसी) को एकता के सूत्र में आबद्ध करना चाहते थे। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता विशेषकर हिन्दू–मुस्लिम एकता पर जोर दिया।[3]

गाँधी जी केवल मानव जाति को ईश्वर का अंश मानते हुए सभी को अपने कार्य लगन एवं जिम्मेदारी से निभाने पर बल देते थे– "धर्म हर एक की व्यक्तिगत वस्तु है और अगर हम उसे वैयक्तिक वस्तु बनाये रखने में सफल हुए तो हमारे राजनीतिक जीवन में किसी प्रकार की गड़बड़ी नही पैदा होगी।... सरकारी अधिकारी और जनता धर्म–निरपेक्ष राज्य स्थापित करने का दायित्व लें और उसके लिए पूरी लगन से काम करें, तभी हम नये हिन्दुस्तान को जन्म दे सकेंगे जो संसार का गौरव होगा।"[4] गाँधी जी ने अल्लाहो–अकबर नारे पर अपना विचार व्यक्त करते हुए साम्प्रदायिक एकता पर जोर देते हुए कहा– "मेरी राय में दुनियाँ ने शायद इस (अल्लाहो--अकबर) से बडे नारे को कभी जन्म नही दिया। यह आत्मा को ऊँचा उठाने बाला धार्मिक नारा है, जिसका अर्थ है–केवल भगवान ही बड़ा है। यह अर्थ अत्यन्त ऊँची भावना वाला है। ...भगवान कई नामों और गुणों से पहचाना जाता है। राम, रहीम, कृष्ण, करीम सब एक ही भगवान के नाम है। सिक्खों का सत् श्री अकाल भी उतना ही शक्तिशाली नारा है। क्या किसी हिन्दू या मुसलमान को उसे पुकारने में

1. हिन्दू धर्मभिमानी महात्मा गाँधी : संम्पादक, जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–16
2. हिन्दू धर्माभिमानी महात्मा गाँधी : जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–16
3. भारतीय राजनीतिक चिन्तन : डॉ0 पुखराज जैन, पृ0–178
4. देशबन्धु पार्क : कलकत्ता, 22–8–1947, ह0 ज0, ह0से–31–8–1947

हिचकिचाना चाहिए? उसका अर्थ भगवान है, अन्य कुछ नही है। रामधुन की भी यही विशेषता है।"[1] गॉधी जी ने धर्मो की एकता के विषय में 'यंग इण्डिया' नामक पत्र में साम्प्रदायिक एकता पर बल देते हुए लिखा था– "मैं इस विश्वास से सहमत नहीं हूँ कि पृथ्वी पर एक धर्म हो सकता है या होगा। इसीलिए विविध धर्मो में पाया जाने वाला सहिष्णुता का भाव रखें। इस बात को पैदा करने की कोशिश मै कर रहा हूँ।"[2] महात्मा गॉधी ने ईसाई आश्रम वासियो को सुश्री एस्थर फेरिंग को लिखे एक पत्र में कहा कि प्रार्थना सभा में किसी को वलात् नही लाया जा सकता और किसी को बलपूर्वक किसी धर्म के लिए या प्रार्थना के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता उन्होंने लिखा– "यदि आश्रम तुम्हें दिनानुदिन प्रभु की अधिकाधिक अनुभूति करने में समर्थ नहीं दनता, तो वह कुछ नहीं है– ...सत्य समस्त धर्मो में समान है, यद्यपि किरण वक्रता के कारण कुछ देर के लिए यह विभिन्न रंग का लगता है, जिस प्रकार धनप्रिज्म पर प्रकाश पड़ने (इन्द्र धनुष) से होता है।"[3] महात्मा गॉधी जीनापत्रो नामक गुजराती पत्र में गॉधी जी सभी सम्प्रदायों की तुलना करते हुए मानव को अपने मन से आपसी भेदभाव दूर कर साम्प्रदायिक एकता पर बल देते है। उनके शब्दों में– " 'ब्रह्म सत्यं जगतमिथ्या', यह दूसरा सूत्र है जो सबको भा जाय, ऐसा एक भी सूत्र मिलना कठिन है। लगता है कि आत्मा की शोध में लगे व्यक्ति को उचित समय पर ऐसा कोई उपयुक्त वचन सहज ही मिल जाता है। ...सच पूछिए तो जितने ही मनुष्य हैं उतने ही धर्म हैं। जब तक मनुष्यों के मन में भेद है, तब तक धर्म भिन्न–भिन्न रहेंगे ही। जो व्यक्ति अपनी और दूसरे की आत्मा में ऐक्य देखता है, वह विभिन्न धर्मों में भी ऐक्य देखेगा।"[4]

महात्मा गॉधी ने हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'हरिजन सेवक' एवं अंग्रेजी साप्ताहिक विचार पत्र 'हरिजन' के माध्यम से भी विभिन्न सम्प्रदायों के बीच में साम्प्रदायिक एकता के विषय में समय–समय पर अपने विचार प्रकट किए हैं– "विभिन्न धर्म एक ही पेड़ के अलग–अलग पत्तों की तरह हैं। कोई दो पत्ते एक से नहीं होते, फिर भी उनमें या जिन डालों में वे लगे हैं उनके बीच कोई शत्रुता नहीं होती। इसी प्रकार हमें ईश्वर की सृष्टि में जो अनेकता दीख पडती है उसके अन्दर

1. वुडलैण्डर्स : अलीपुर, 23–8–1947, ह0 ज0/ह0 से 31–8 1947
2. यंग इण्डिया : दिनांक 21–7–1924
3. कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गॉधी: खण्ड 16, पृ0–333 (लाहौर 7–12–1919)
4. महात्मा गॉधी जीना पत्रों : गुजराती पत्र, ज्येष्ठ बदी 14, 1969, 2–7–1913 (सम्पूर्णगॉधी वाडमय : भारत का प्रकाशन) खण्ड–12, पृ0–121–122

एक एकता निहित है।"[1]

7. राष्ट्रीय एकता:–

गॉधी जी मानवतावादी विचारक थे। वे धार्मिक, साम्प्रदायिक एवं जातीय एकता के साथ राष्ट्रीय एकता के भी पक्षधर थे। गॉधी जी सर्व स्वीकृत रूप से भारतीय राष्ट्र के पिता माने गये है। उन्हीं के उपदेशों से प्रोत्साहित होकर भारतीय संविधान सभा ने, जिसके अधिकांश सदस्य उनके भक्त और सहयोगी थे, उनके देहान्त के बाद भारतीय संविधान बनाया।"[2] संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है– "हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न लोक तन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उनके समस्त नागरिकों के लिए, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता को सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज ता0 26 नवम्बर 1949 ई0 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत अधिनियमित और आत्मसमर्पित करते है।"[3]

गॉधी जी जीवन पर्यन्त राष्ट्र की एकता के लिए संघर्षरत रहे थे। बुराई का जबाब भी भलाई से देने का सिद्धान्त मानते थे। उनका मानना था कि ऐसा करने से मानव मात्र में फैली विषमताएँ दूर होगी और राष्ट्र को एक सूत्र में बॉधने में सहायता मिलेगी– "हम ऐसे राष्ट्र के लोग है जिसमें धर्म–चिन्तन बहुत होता है और जिसमे लोग बदला न लेने और बुराई का जवाब भलाई से देने के सिद्धान्त में निष्ठा रखते है। हम तो यहॉ तक मानते हैं, कि हम अपने विचारों से उनके उन कर्मों पर भी रंग चढ़ा सकते है। जिनका हम विचार करते हैं... इसलिए हम अपना यह परम कर्त्तव्य समझें कि हमारे विचार से जो हमारे साथ बुरा व्यवहार भी करते हैं, उनके बारे में हम बुरे विचार अपने मन में न आने दें। जो हमारे साथ भलाई करते हैं, उनके साथ अगर हम भलाई करें तो इसमें कौन बड़े सदगुण की बात है? इतना तो कुकर्मी लोग भी करते है। हॉ विरोधी के प्रति भलाई करें तो जरूर कुछ बात हुई। अगर हम सीधी सीधी बात ध्यान में रखें तो हमें इतनी जल्दी सफलता मिल सकती है, जिसकी हम

1. हरिजन सेवक/हरिजन पत्र : रिगरोड, प्रार्थना सभा, नई दिल्ली, 21–5–1946 एवं 26–5–1946
2. गॉधी जी की चुनौती : कम्युनिज्म को, गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–62
3. गॉधी जी की चुनौती : कम्युनिज्म को, गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–62

कल्पना भी नही कर सकते।"[1]

गॉधी जी राष्ट्र की एकता को बनाये रखने के लिए अपने शरीर को राष्ट्र की सम्पत्ति मानते थे। यह बात एक बंगाली असिस्टेन्ट एकाउन्टेन्ट जनरल को लिखे पत्र से स्पष्ट हो जाती है– "आप मेरे शरीर की बहुत चिन्ता रखते हैं, जिसकी मैं कद्र करता हूँ। आप जो यह कहते है कि यह राष्ट्र की सम्पत्ति है, इसे मैं पूरी तरह स्वीकार करता हूँ।"[2]

---

1. इण्डियन ओपेनियन पत्र : दिनांक 20–8–1903, 'मुसीबतों के फायदे'
2. महादेव भाई की डायरी, नव जीवन प्रकाशन दिनांक 25–11–1932, भाग–2, पृ0–235

द्वितीय अध्याय

प्रेमी जी का युग और साहित्य

(क) युगीन परिस्थितियाँ

1.राजनीतिक परिस्थितियाँ

2.धार्मिक परिस्थितियाँ

3.साहित्यिक परिस्थितियाँ

4.आर्थिक परिस्थितियाँ

(ख) प्रेमी जी का जीवन वृत्त

(ग) प्रेमी जी का साहित्य

द्वितीय-अध्याय

प्रेमी जी का युग और साहित्य

क–युगीन परिस्थितियाँः

किसी भी रचनाकार की विचार धारा से अवगत होने के लिए उस युग की विशेष परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के जन्म का काल प्रसाद जी का काल था। उन पर युगीन परिस्थितियों का प्रभूत प्रभाव पड़ा है।

1. राजनीतिक परिस्थितियाँ :–

राजनीतिक दृष्टि से देश परतन्त्र था तथा भारतीयों द्वारा स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए प्रयास किये जा रहे थे। सन् 1919 में प्रथम विश्व युद्ध समाप्त होने के अनन्तर भारतीयों को स्वराज्य प्राप्ति की आशा थी, परन्तु अंग्रेजो द्वारा विविध एक्ट लागू किये जाने के कारण वह आशा निराशा में परिणत हो गयी। सन् 1924–25 में साम्प्रदायिक मत–भेद बढ़ गये तथा सन् 1925–26 में दिल्ली, कलकत्ता, इलाहाबाद आदि अनेक स्थानों पर साम्प्रदायिक दंगे हुए। उस समय गाँधी जी ने कलकत्ते के मिर्जापुर पार्क में कहा था-- "यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते हैं तो एक दिन हम हिन्दू और मुसलमानों को एक होना पड़ेगा।"[1]

सन् 1927 में देश में हिन्दू–मुस्लिम दंगो की अधिकता देखकर वायसराय ने एकता की अधिकता पर बल दिया। तदन्तर एक एकता सम्मेलन किया गया, परन्तु उससे अधिक लाभ न हुआ।[2] इसी वर्ष में कॉग्रेस के मद्रास अधिवेशन में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध नवयुवकों का असन्तोष उग्र रूप में प्रकट हुआ, फलतः उन्होंने गुप्त संगठन स्थापित करने प्रारम्भ कर दिये। सन् 1928 में बम्बई, दिल्ली, लाहौर, लखनऊ आदि स्थानों पर साइमन कमीशन का वहिष्कार किया गया। सन् 1929 में लाहौर कॉग्रेस का सभापतित्व पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया। उन्होंने अपने अभिभाषण में कहा– "हमारे सामने एक ही ध्येय है और वह है पूर्ण स्वाधीनता का।"[3] दूसरी ओर कमीशन की रिपोर्ट 1930 में प्रकाशित हुई, जिसमें भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य व केन्द्र में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन स्थापित किये जाने का प्रस्ताव नहीं था। इसके विरोध में दो जनवरी, 1930 को नई कार्य समिति की बैठक में

---

1. कॉग्रेस का इतिहास : डॉ0 बी0 पट्टाभि सीता रमैया, पृ0–307
2. कॉग्रेस का इतिहास : डॉ0 बी0 पट्टाभि सीता रमैया, पृ0–323
3. कॉग्रेस का इतिहास : डॉ0 बी0 पट्टाभि सीता रमैया, पृ0–362

निश्चित हुआ कि देशभर में पूर्ण स्वराज्य दिवस मनाया जाये। इस निमित्त 26 जनवरी, 1920 का दिन नियत हुआ। इस दिन घोषणा हुई कि– "भारत वर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिये।"[1] इस तिथि को सम्पूर्ण भारत में स्वधीनता दिवस मनाया गया। गाँधी जी ने भारतवर्ष के लिए अहिंसात्मक असहयोग का मार्ग निश्चित किया। उन्होंने 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' प्रारम्भ करने का निश्चय करके दाण्डी–यात्रा प्रारम्भ की। वहाँ पहुँच कर उन्होंने 6 अप्रेल 1930 को नमक कानून भंग किया। इस अवसर पर उन्होंने कहा था– "अंग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, साँस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह का नाश कर दिया है। इस राज्य को अभिशाप समझता हूँ और उसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूँ। ...अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है, पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है। हम किसी को मारना नहीं चाहते हैं, किन्तु सत्यानाशी शासन को खत्म कर देना हमारा पवित्र कर्तव्य है।"[2]

5 मई, 1931 को गाँधी–इर्विन समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार कॉग्रेस को गोल मेज परिषद् में आमंत्रित किया गया। इग्लैण्ड में गाँधी जी ने अल्पसंख्यको की समस्या, कॉग्रेस की स्थिति, साम्प्रदायिकता के आधार का विरोध आदि विषयों से सम्बन्धित विचार रखे, परन्तु परिषद् मध्य में ही बिना किसी निश्चय के समाप्त हो गयी। गाँधी जी तथा अन्य भारतीय प्रतिनिधि देश लौट आये और गाँधी–इर्विन समझौता भी टूट गया।

जनवरी, 1932 में गाँधी जी को कारावास का दण्ड मिला। प्रेसो पर अधिक कठोर प्रतिबन्ध लगाये गये। ब्रिटिश शासकों ने आन्दोलन भंग करने के लिए भेद–नीति का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। दलित जातियों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दिया गया। इसके विरोध में गाँधी जी ने आमरण अनशन प्रारम्भ किया। सन् 1934 में गाँधी जी ने अछूतोद्धार–अन्दोलन पर विशेष ध्यान दिया। 1935 ई0 में प्रान्तों को अपने शासन की स्वतंत्रता प्राप्ति हुई 'गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट' से ब्रिटिश सरकार की देशी रियासतों, जमींदारो आदि से मित्रता हो गयी।

सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। सन् 1940 ई0 में कॉग्रेस ने स्वाधीनता प्राप्ति हेतु ध्यान दिया और घोषणा की कि साम्राज्यवाद के अन्तर्गत औपनिवेशिक अथवा इस प्रकार के कोई अधिकार भारत को स्वीकार न होंगे, अतः गाँधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह का निर्णय लिया। गाँधी जी ने रामगढ़–अधिवेशन के भाषण में कहा था– "व्यक्तिगत सत्याग्रही वही हो सकते है, जो अपना पूरा

1. कॉग्रेस का इतिहास : डॉ0 बी0 पट्टाभि सीता रमैया, पृ0–260
2. कॉग्रेस का इतिहास : डॉ0 बी0 पट्टाभि सीता रमैया, पृ0–362

विश्वास कॉंग्रेस के रचनात्मक कार्य–क्रम पर रखते हों और सत्य और अहिंसा का पालन करते हैं।"[1]

स्टेपर्ड क्रिप्स के विचार भारत के अनुकूल प्रतीत होते थे, परन्तु जब वे ब्रिटिश सरकार की योजना को लेकर आये, तो कॉंग्रेस ने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। क्रिप्स जाते–जाते मुसलमानों को भड़का गया। सन् 1940 में मुस्लिम–लीग ने पाकिस्तान की मॉंग की। 1942 में भारत का कोई भी दल अपने देश में ब्रिटेन सत्ता का समर्थक नहीं था। 'भारत छोडो आन्दोलन' तीव्र गति से प्रारम्भ हो गया। आचार्य नरेन्द्र देव के अनुसार– "यह आन्दोलन स्वाधीनता आन्दोलन का सबसे बड़ा जनसंग्राम था।"[2]

सन् 1943 में देश में साम्प्रदायिक बैमनस्य था, जिन्ना मुस्लिम–लीग का नेतृत्व कर रहे थे और मुसलमानों के लिए स्वतंत्र रूप चाहते थे।

29 जुलाई, 1946 को लीग ने पाकिस्तान लेने के वैधानिक ढ़ंग को छोड़कर प्रत्यक्ष कार्यवाही की। यह कार्यवाही कलकत्ता में प्रारम्भ हुई और 15 अक्टूबर को नाओखाली में फैल गयी, जिसके परिणाम स्वरूप अनेक हिन्दू मुसलमान मारे गये भारत के अन्य प्रान्तों में दंगा फैल गया। सन् 1946 में नाविक विद्रोह से ब्रिटेश सरकार को अपनी सरकार पर विश्वास नहीं रहा।

अंग्रेजो ने जब देखा कि सब कुछ दिन जाने वाला है तो यहॉं से जाते–जाते फूट फैला कर भारत को दुर्बल बनाने की चाल चली।

23 मार्च 1947 को लार्ड माउण्ट बैंटन बाइसराय नियुक्त हुए। 3 जून, 1947 को पाकिस्तान की मॉंग पूर्ण रूप से स्वीकार कर ली गयी। 15 अगस्त, 1947 में दोनों राज्यों को पूर्ण सत्ता प्रदान कर दी। भारत का विभाजन 14 अगस्त को हुआ और 15 अगस्त 1947 को भारत पूर्ण रूपेण स्वतंत्र हो गया। पूर्वी बंगाल एवं पश्चिमी पंजाब में मुस्लिमवाहुल्य क्षेत्र पाकिस्तान को प्रदान कर दिये गये।

इस विभाजन से पाकिस्तान में हिन्दुओं का रहना कठिन हो गया। वे भाग–भाग कर भारत आने लगे। स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ ही महीनों के बाद कश्मीर को हस्तगत करने के लिए पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया।

26 जून 1950 भारत का संविधान लागू किया और भारत एक प्रभुत्वसम्पन्न लोक तंत्रात्मक गणराज्य हो गया। सभी भारतीयों को अपने समुचित विकास के लिए समान अधिकार प्रदान कर दिये गये। शासकीय व्यवस्था में जनतान्त्रिक पद्धति अपना कर जन प्रतिनिधियों में से मन्त्रिमण्डल का गठन किया गया। 1962 के चीनी आक्रमण ने देश की राजनीति को झकझोर दिया। सन् 1962 में

1. भारत में अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष : केशव कुमार ठाकुर, पृ0–461
2. राष्ट्रीयता और समाजवाद : आचार्य नरेन्द्र देव, पृ0–189

पं0 नेहरू की मृत्यु के बाद लाल बहादुर शास्त्री ने प्रधानमंन्त्रित्व पद ग्रहण किया। पाकिस्तान ने भी 1965 में व 1971 में भारत पर आक्रमण किये।

उक्त राजनीतिक स्थिति का "प्रेमी" जी पर प्रभाव पड़ा। उनके मन में यह दृढ़ भाव उत्पन्न हुआ कि अँग्रेज "फूट डालो और राज्य करो" की नीति के अनुसार देश को विखण्डित कर रहे हैं, अतः उन्होने अपने नाटकों द्वारा राष्ट्रीय एकता व देशप्रेम के भाव व्यक्त किये। उनके सभी ऐतिहासिक नाटक राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हैं। अमृतपुत्री, विदा, विषपान, कीर्ति-स्तम्भ, बन्धु मिलन, शतरंज के खिलाडी, भग्न प्राचीर, आन का मान, अमर बलिदान, शीशदान, आदि नाटकों की भूमिकाओ में "प्रेमी" जी के राष्ट्रीयता सम्बन्धी विचार व्यक्त हुए हैं। इसके अन्तर्गत देश-प्रेम, राष्ट्रीय एकता, अतीत गौरव, गणतंत्र की भावना, अहिंसा का प्रयोग आदि का उन्होंने उल्लेख किया है।

2. धार्मिक परिस्थितियाँ:-

"प्रेमी" जी के प्रारम्भिक काल में जन-समाज जहॉ एक ओर अन्ध आस्थाओं, बाह्य आडम्बरों, निर्मूल धारणाओं, कुत्सित संस्कारों, पाखण्डपूर्ण कर्म-काण्डों आदि से ग्रस्त होकर धर्म को पतन की ओर ले जा रहा था, वहीं दूसरी ओर इस्लाम से पर्याप्त काल तक संघर्ष करने के उपरान्त ईसाई धर्म की ओर आकृष्ट हो रहा था। इसमें ईसाई मिशनरियों का अभूतपूर्व योगदान रहा। पादरियो ने अनेक विद्यालय स्थापित करके भारतीय जाति-पॉति, वर्ण-व्यस्था, छुआ-छूत, आत्महत्या, नरबलि, बहुविवाह, पर्दाप्रथा, धार्मिकता साम्प्रदायिकता, स्त्रियों की अशिक्षा तथा अज्ञानता की कट्टर आलोचना करके हिन्दुओं को उनके धर्म की ओर से उदासीन बनाया, साथ ही साथ ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया, क्योंकि इन धर्म प्रचारकों का उद्देश्य भारतीयों को निःस्वार्थ भाव से शिक्षा देना तथा उनमें ज्ञान विज्ञान का प्रसार करना नहीं था, वरन् उन्हें अपने धर्म की ओर आकर्षित करना ही था।[1]

लार्ड मैकाले की भी मान्यता थी कि पाश्चात्य शिक्षा-प्रसार और प्रभाव से भारतीय स्वधर्म का परित्याग कर ईसाई धर्म स्वीकार कर लेंगे, परन्तु नवीन शिक्षा के प्रभाव से देश में एक नवीन वातावरण बन गया। भारतवासी अपने धर्म में आवश्यक सुधार लाने के लिए उत्कंठित हुए। जड़ धार्मिक मान्यताओं और कुरीतियों को दूर करने की ओर सुधारकों का ध्यान गया, फलतः नवीन विचारधाराओं का जन्म हुआ।

इस नवीनता की ओर सर्वप्रथम राजा राममोहन राय आकृष्ट हुए।[2]

1. हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव- डॉ0 श्री पति शर्मा, पृ0-50
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचार धारा पर पाश्चात्य प्रभाव- हरिकृष्ण पुरोहित, पृ0-13

उन्होंने धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलन का नेतृत्व कर भारतीय जनता को अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादिता से मुक्त कराने का प्रयत्न किया।[1] हिन्दू धर्म में संशोधन करने के लिए उन्होंने उपनिषदों का आधार ग्रहण कर कलकत्ता में ब्रह्मसमाज की स्थापना की। राजा राममोहन राय ने ऐकेश्वरी धर्म का प्रचार किया तथा यह भी निरूपित किया कि सब धर्मों का अन्तरंग एक ही है। उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया तथा ईश्वरोपासना का अधिकार सभी वर्गों और जातियों को दिया, उनकी मान्यता थी कि ईश्वर का अवतार नहीं होता। उन्होने पूजा–पाठ, मठ–मन्दिर, त्याग और वैराग्य आदि की निरर्थकता प्रतिपादित की। ब्रह्मसमाज को वेद मान्य नहीं थे, अतः यह हिन्दू समाज के निम्न श्रेणी के हिन्दुओं को प्रभावित कर सका। वे असमान व्यवहार के कारण धर्मान्तरण करते रहे।

तदन्तर स्वामी दयानन्द ने वेदो को मूलाधार मान कर वैदिक धर्म का मान्य एवं सामाजिक रूप जनता के समक्ष प्रस्तुत किया, उन्होने सन् 1875 में बम्बई मे आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज मे पाश्चात्य प्रभाव की रोकथाम की वैदिक धर्म और संस्कृति का प्रचार समस्त संसार में किया। स्वामी जी के विचारो से निम्न वर्णो मे जागृति आयी। उन्होंने अहिन्दू का शुद्धिकरण कर उसे हिन्दू–धर्म में प्रवेश दिया। इस प्रकार उन्होंने आर्य समाज का द्वार प्रत्येक मनुष्य ,जाति–धर्म के लिए खोल दिया। रामधारी सिंह "दिनकर" का मत है कि–"स्वामी जी ने छुआ–छूत के विचार को अवैदिक बताया और उनके समाज मे सहस्त्रों अन्त्यजों को यज्ञोपवीत देकर उन्हें हिन्दुत्व के भीतर आदर का स्थान दिया। आर्य समाज ने नारियों की मर्यादा में वृद्धि की और उनकी शिक्षा संस्कृति का प्रचार करते हुए विधवा विवाह का भी प्रचलन किया।[2] थियोसोफिकल सोसाइटी अथवा ब्रह्म–विद्या समाज ने भी भारतीय धर्म का प्रचार एवं प्रसार किया। इस संस्था ने पूर्वी देशों में धर्म के और ज्ञान के छिपे हुए तत्वों को पश्चिमी देशो में प्रसारित करना अपना उद्देश्य बनाया। इस संस्था ने विश्व मानवता भाव उत्पन्न करने के लिये सब धर्मो का समन्वय करने प्रयास किया। इस संस्था की एक कर्मकर्त्री श्री मती ऐनीवेसेंट का विचार था कि भारत के लिए सर्व धर्म–समन्वय प्रथम कार्य है और प्राचीन धर्म (ब्राह्मण) जागृत कर एवं शक्ति पूर्ण बना कर उत्थान करना आवश्यक हैं।[3] थियोसोफी में धार्मिक सहिष्णुता, सर्वधर्म समन्वय, विश्वबन्धुत्व आदि से सम्बन्धित कार्य किये। श्रीमती एनीवेन्ट ने अतीत की संस्कृति एवं धर्म पर गर्व करने की शिक्षा दी। इसके फलस्वरूप भारतीयों में अतीत के प्रीत गौरव का भाव उत्पन्न हुआ।

---

1. भारतीय संवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास– डॉ0 रघुवंशी, पृ0–48
2. संस्कृति के चार अध्याय– रामधारी सिंह "दिनकर", पृ0–564

स्वामी दयानन्द के समकालीन रामकृष्ण परमहंस (ई0 सन् 1934–66) ने बंगाल में धर्म का प्रचार किया था। उन्होंने हिन्दू मार्गो और दर्शनो का समन्वय कर सत्य मार्ग की ओर संकेत किया था। वे सब धर्मो की एकता में विश्वास करते थे। उनके शिष्य विवेकानन्द ने भारतीय विचारधारा में मानववाद की प्रतिष्ठा की। उन्होंने वेदान्त के अद्वैत दर्शन की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की। अद्वैतवाद ही भारतदर्शन का केन्द्र बिन्दु हैं। इसी अद्वैतवादी प्रवृत्ति के कारण सर्वभूत हित दिश्व–बन्धुत्व की भावनाएँ भारतीय संस्कृति का मूलाधार बनी। उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की चकाचौंध के कराण हीन भावना से ग्रस्त देश की शिक्षित जनता का मार्गदर्शन दिया। उनके प्रभाववश भारतीय पाश्चात्य सभ्यता का गुणानुवाद करना विस्मृत कर बैठे। भारतीयों को अपने देश के गौरवपूर्ण अतीत का बोध हुआ।

प्राचीन भारतीय संस्कृति की देन (सत्य और अहिंसा) को गाँधी जी ने विश्व मे शान्ति स्थापनार्थ उपयुक्त समझ कर अपनाया उनके प्रयोग से संसार के असंख्य लोगों में यह आस्था उत्पन्न हुई कि अहिंसा की साधना सामूहिक कार्यो में भी चल सकती है।[1] गाँधी जी के विपरीत मार्क्स की रक्तक्रान्ति (हिंसा) में आस्था थी। मार्क्स ने रूढ़ियो और परम्पराओं का विरोध करने के साथ– साथ ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं किया था। परिणामतः गाँधी जी का अहिंसावादी सिद्धान्त और आध्यात्मिक जीवन दर्शन युगीन परिस्थितियों में अव्यवहारिक हो गया, किन्तु मार्क्स द्वारा परम्परागत धार्मिक अनुष्ठानों एवं विश्वासों के प्रति उत्पन्न की गयी अनास्था के विकल्प मे कोई सर्वमान्य नवीन आर्दश भी स्थापित नहीं किया जा सका, जिसे स्वीकार करके मनुष्य उसमें अपनी आस्था बनाये रख सकें फलतः मानव ने असन्तुष्ट एवं क्षुब्ध होकर पुनः अपने धर्म के बारे में चिन्तन करना आरम्भ कर दिया। वह धार्मिक आख्यानों को युगीन समस्याओं के समाधान के लिए नवीन रूप मे प्रयुक्त करने लगा।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सम्प्रति धार्मिक मान्यताओं की रूढिवादिता समाप्त हो रही है। हमारे देश में धर्मो की विपुलता को देख कर 26 जनवरी, 1950 ई0 को भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर दिया गया तथा पृथक–पृथक धर्मावलम्बियों में पारस्परिक सम्बन्ध प्रारम्भ हो गये हैं। धर्म में विद्यमान विकृतियों का निवारण करके मानव–धर्म की महत्ता तथा उपयोगिता को समझा गया है। आधूनिक युग में मानव धर्म की अवधारणा को विकसित एवं लोकप्रिय बनाने में गाँधी जी का योगदान अतुलनीय हैं।

"प्रेमी" जी पर उक्त वर्णित धार्मिक परिस्थितियों का प्रभूत प्रभाव पड़ा है। फलतः उनकी नाट्यकृति में अलौकिक सत्ता के प्रति आस्था, पाखण्डपूर्ण कर्म काण्ड का विरोध, मानव–धर्म, सर्वधर्म–समभाव, सत्य और अहिंसा आदि से सम्बन्धित

1. संस्कृति के चार अध्याय– रामधारी सिंह"दिनकर", पृ0–634

विचार पुनः अभिव्यक्त हुए परिलक्षित होते है। वे धर्म निरपेक्षता के सर्मथक थे उन्होंने अपने एंकाकियों में भी हिन्दू मुस्लिम सिक्ख ईसाई धर्मों के समभाव का चित्रण किया है। मनोहर वली मोहम्मद तथा मिस होम्स नामक पत्र इस सन्दर्भ में अवलोकनीय है।"[1]

3. साहित्यिक परिस्थितियाँ :–

"प्रेमी" जी का जीवन काल (सन् 1908–1974) तक साहित्य दृष्टि से कई प्रकार के आन्दोलनों का युग रहा है। पद्य और गद्य दोनों ही क्षेत्रों में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते है। काव्य के क्षेत्र में छायावाद का आविर्भाव उन्हीं के समय में हुआ, जब प्रेमी जी की शैशवावस्था थी। स्पष्ट है कि प्रेमी जी ने अपनी किशोरवस्था में जिस वाद को फलते–फूलते देखा वह छायावाद ही थी। यही कारण है कि प्रेमी जी के साहित्य में छायावादी प्रभाव के अनुकूल ही भावाकुशलता, अज्ञात सत्ता के प्रति रहस्य भाव, नारी के प्रति सम्मान का भाव, प्रकृति प्रेम इत्यादि भाव देखने को मिलते है। "प्रेमी जी" के जीवन काल में ही हिन्दी काव्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद भी विकसित हुए और उन्होंने अपना प्रभाव छोड़ा प्रगतिवाद साहित्य में वह वाद है जो मार्क्सवादी विचारधारा को लेकर चलता है। यह वाद 1935 से 1942 तक हिन्दी में सक्रीय आन्दोलन के रूप में चला। उसके पश्चात् एक नये वाद का उदय हुआ जिसका नाम था प्रयोगवाद। यह हिन्दी कविता क्षेत्र में एक नया आन्दोलन था जो अज्ञेय जी के नेतृत्व में चलाया गया।[2] उसके बाद ही हिन्दी में अकविता एवं नवगीत का विकास भी हुआ। नवगीत के सन्दर्भ में डॉ0 शम्भूनाथ सिंह का विचार है कि– "नवगीत का विकास सन् 1950 के बाद नई कविता के युग में अज्ञेय जी के द्वारा हुआ।"[3]

नव–गीत की विशेषता बतलाते हुए रामदरश मिश्र ने लिखा है– "अनुभूति की सच्चाई तथैव अनुभूति की अपनी–अपनी विशिष्टता, नवीन सोन्दर्य बोध, आकारलघुता, नवीन बिम्ब प्रतीक उपमान योजना इनकी सामान्य विशिष्टता है। इन सभी गीतों में लोक जीवन का रस है।"[4]

नव–गीत के पश्चात् गज़ल की परम्परा भी हिन्दी कविता में प्रारम्भ हुई और इस प्रकार कविता में नये–नये शिल्पों का विकास होता रहा।

"प्रेमी जी" मूलतः नाटककार थे, वैसे आधुनिक युग भी गद्य का युग

---

1. बादलों के पार (यह मेरी जन्म भूति है, नामक एकांकी) : हरिकृष्ण प्रेमी
2. साहित्य निबन्ध : डॉ0 गणपितचन्द्र गुप्त, पृष्ठ–500
3. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ0 जयकिशन खण्डेलवाल, पृ0–627
4. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ0 जयकिशन खण्डेलवाल, पृ0–627

कहा जाता है उसमें गद्य की विभिन्न विद्याओं में अनेक प्रकार के परिवर्तन एवं आन्दोलन देखने को मिलते हैं। कहानी के क्षेत्र में इस युग में सर्वाधिक आन्दोलन हुए। आजादी के पूर्व तक हिन्दी कहानी में बहुत अधिक प्रयोग नहीं हुए थे, फिर भी मुंशी प्रेमचन्द, प्रसाद, अज्ञेय, यशपाल, जैनेन्द्र, भगवती चरण वर्मा इत्यादि कथाकार सक्रिय थे। इसमें कहानी को दिशा प्रदान करने में प्रेमचन्द्र का नाम महत्वपूर्ण है। आजादी के बाद परिवर्तन बहुत तेजी से हुए और कहानी के क्षेत्र में युवा पीढ़ी ने नवीन प्रयोग किये। कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव इत्यादि कथाकारों ने अपनी कहानी के पुराने शिल्प और कथ्य को अस्वीकृत करते हुए नई कहानी आन्दोलन को जन्म दिया। यह कहानी आन्दोलन लगभग दस वर्ष तक सफलतापूर्वक चला किन्तु सन् 1960 के पश्चात् दूसरी पीढ़ी ने इस नई कहानी आन्दोलन को अस्वीकार कर दिया और 'अकहानी' नामक नये आन्दोलन को जन्म दिया। यह आन्दोलन कहानी मात्र को ही अस्वीकृत करते हुए यह घोषणा करता था कि जो कुछ लिख जा रहा है वह कहानी नहीं है। कहानी के अतिरिक्त और कुछ है। यद्यपि इसी आन्दोलन के एक आलोचक गंगाप्रसाद विमल इस बात से सहमत नहीं है कि अकहानी का अर्थ कहानी का विरोध है। उन्होंने लिखा है– "वस्तुतः जिसे हम अकहानी कहते हैं, उसकी कहानी की तरह हमारे पास कोई परिभाषा नहीं है। परन्तु कहानी के विरोध में या कहानी के निषेद में उसके किसी अर्थ को ध्वनित मान लेने के स्वीकार को हम ठीक नहीं मानते।"[1]

अकहानी आन्दोलन के बाद ही इसी युग में सचेतन कहानी आन्दोलन भी चला जिसे महीप सिंह ने चलाया और समान्तर कहानी आन्दोलन भी चला। इस आन्दोलन के जनक कमलेश्वर थे। यह आन्दोलन आम आदमी को कहानी के केन्द्र में लाने के लिए चलाया गया। इस आन्दोलन का प्रारम्भ सन् 1971 के आसपास हुआ।

कहानी की भाँति उपन्यास के क्षेत्र में भी नये–नये प्रयोग हुए किन्तु कोई आन्दोलन नहीं चले। इनके युग के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द, प्रसाद, विशम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक', भगवती चरण वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वृन्दावन लाल वर्मा इत्यादि कथाकार सक्रीय थे आगे आने वाली पीढ़ी में रागेयराघव, फणीश्वर नाथ रेणु, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, राहुलसांकृत्यायन, राजेन्द्र यादव, धर्मवीर भारती, अमृतलाल नागर, जैनेन्द्र, नागार्जुन, शैलेश मटियानी, डॉ0 रामदरश मिश्र इत्यादि अनेक उपन्यासकारों ने उपन्यास के क्षेत्र में भी नये–नये प्रयोग किये तथा उसके भण्डार को समृद्ध किया।

हिन्दी नाटक के क्षेत्र में भी यह युग नये–नये प्रयोगों का युग रहा।

---

1. हिन्दी कहानी की पहचान और परख : सम्पादक–इन्द्रनाथ मदान, पृ0–101

हिन्दी नाटकों का विकास भारतेन्दु युग में ही हुआ। "प्रेमी" जी के जन्म के समय नाटक कुछ विकसित रूप में आ चुके थे और वे अपनी विषय वस्तु में स्वदेश प्रेम राष्ट्रीय चेतना तथा राष्ट्रीय एकता जैसे कथ्यों को चुन रहे थे।[1] हिन्दी नाटक के क्षेत्र में कान्तिकारी परिवर्तन जयशंकर प्रसाद के आगमन के साथ हुआ। जयशंकर प्रसाद एक मौलिक व्यक्तित्व को लेकर अवतरित हुए। उन्होंने विदेशी नाट्यशैली में जो कुछ अच्छा था, वह सब अपना बनाकर अपनाया है। पुरानी रूढ़ियों को हटाकर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्होंने पहली बार अपने नाटक के पात्रों को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया और चरित्र–चित्रण की ओर विशेष ध्यान देकर रस की धारा प्रवाहित की।[2] प्रसाद जी ने अपने नाटको में प्रायः भारतीय संस्कृति को सुरक्षित करने का प्रयास किया है। उनके अधिकांशतः नाटक ऐतिहासिक एवं पौराणिक हैं, जिनके माध्यम से उन्होंने सांस्कृतिक पुनर्रुत्थान का प्रयास किया है। डॉ0 जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल ने प्रसाद जी की नाट्यकला की मुख्य विशेषतायें बतलाते हुए कहा है– "उनकी नाट्यकला की प्रमुख विशेषतायें हैं... सांस्कृतिक धारा के अक्क्षुण प्रदाह की भावना, दार्शनिक चिन्तन स्वभाविक चरित्र कल्पना, राष्ट्रीयता का आग्रह, संघर्ष के द्वारा जीवन के मूलतत्व की खोज, नारी में शक्ति और चेतना की प्रतिष्ठा, काव्यात्मकता का प्रभाव, पद्य में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा और प्राचीन शास्त्रीय नीरस रूढ़ियों का वहिष्कार और नवीन युगानुकूल नाट्यशैली की प्रतिष्ठा।"[3]

नाटक के क्षेत्र में प्रसाद की परम्परा को जिन नाट्यकारों ने आगे बढ़ाया, उनमें चन्द्रगुप्त विद्यालंकार सेठ गोविन्ददास, उदयशंकर भट्ट, गोविन्द बल्लभ पंत तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र के साथ ही हरिकृष्ण प्रेमी का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है।

स्पष्ट है कि प्रेमी जी ने जिस युग में नाटकों का सृजन किया वह साहित्यिक दृष्टि से प्रयोगों का युग रहा। ये प्रयोग वस्तु और शिल्प दोनों स्तर पर चलते रहे, युग की राजनीतिक विचार धारा भी इन साहित्यकारों को प्रभावित करती रही। इसी लिए साहित्य में प्रायः गॉधीवाद व मार्क्सवाद दो विचारधारायें ही उभर कर आयी हैं। उनमें प्रेमी जी ने भारतीय संस्कृति से जुडने वाली धारा गॉधीवाद को ही अपने जीवन दर्शन के रूप में स्वीकार किया और उसी को अपने नाटको में भी व्यक्त किया।

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जय किशन खण्डेलवाल, पृ0–671
2. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जय किशन खण्डेलवाल, पृ0–671
3. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जयकिशन खण्डेलवाल, पृ0– 672

4. आर्थिक परिस्थितियाँ :–

हरिकृष्ण प्रेमी ने जिस अवधि में जन्म लिया और साहित्य सृजन प्रारम्भ किया, वह आर्थिक दृष्टि से वह बहुत श्रेष्ठ काल नही था। देश में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित थी, एक लम्बे समय से अंग्रेज भारत का शोषण कर रहे थे। उनकी शोषण प्रक्रिया देख कर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था–

"अंगरेज राज सुखसाज, सजै सब भारी।
पै–धन चलौ जात विदेश यहै एक ख्वारी।।

अंग्रेजो ने भारत के कुटीर उद्योग को चौपट कर दिया था। एक समय वह भी था। जब भारत के कारीगरों के हाथ से तैयार माल संसार की मण्डी में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता था, पर अंग्रेजों ने इन उद्योगों को नष्ट कर दिया और साथ ही राजकरों का बोझ भी लादा गया। भारत की आर्थिक सम्पन्नता यहॉ के किसानों की खुशहाली पर निर्भर करती थी पर करों का बोझ, जमींदारों के अत्याचार और कारिंदों की मनमानी ने किसानों की कमर तोड़ दी थी। आज किसान हमेशा गले तक कर्ज में ही डूबा रहता था। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के गॉव स्वाबलम्बी थे। अंग्रेजों के आने के बाद गॉव का सामुदायिक संघ जीवन नष्ट हो गया थ उनके परस्पर के सहयोग वृत्ति में कमी आ गई। उन्हें परस्पर बॉधने बाला कोई आर्थिक हित भी न रहा।

भारत के किसानों की दयनीय दशा का सम्पूर्ण देश की आर्थिक अवस्था पर प्रीभाव पड़ रहा था। भारत का किसान तो बदहाल था ही अंग्रेजों ने कुटीर उद्योग भी नष्ट कर दिये थे, उसके बदले भारी उद्योग धन्धों का विकास भी नहीं हुआ। अंग्रेजों ने यातायात की सुविधा बढ़ाने के लिए रेलगाड़ियॉ चलानी आरम्भ कर दी थी। इससे यह उम्मीद थी कि सम्भवतः देश के उद्योग धन्धों का पर्याप्त विकास होगा किन्तु अंग्रेजों ने इस व्यवस्था का उपयोग देश की आर्थिक दशा के उत्थान के लिए नहीं किया अपितु अपने सिपाहियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने–ले जाने में अधिक किया। रेल व्यवस्था से अंग्रेजों को ही आर्थिक लाभ हुआ। उनके द्वारा तैयार लोहा एवं इस्पात की अच्छी खपत भारत में होने लगी। कुल मिला कर अंग्रेज हर प्रकार से भारत का आर्थिक शोषण कर रहे थे जिसके प्रतिकिया स्वरूप भारत में विरोधी आन्दोलन जोर पकड़ रहे थे।

अंग्रेज सरकार ने 1905 ई0 में एक उद्योग और वाणिज्य विभाग खोला, जिससे एक आशा बँधी थी कि सरकार भारत को उद्योग पथ पर ले जायेगी लेकिन वैसा कुछ भी नहीं हुआ। इसी बीच सरकार ने बंग–भंग की योजना लागू की जिसकी प्रतिकिया में एक बड़ा आन्दोलन हुआ जिसने स्वदेशी के प्रति लोगों का आग्रह बढ़ाया।

प्रेमी जी का प्रारम्भिक जीवन जिस परिवेश में व्यतीत हुआ वह आर्थिक दृष्टि से बेहद उथल-पुथल का दौर था। विश्व महायुद्धो की विभीषिका झेल चुका था। प्रथम महायुद्ध के समय भारत के उद्योग धन्धों को विकसित होने का एक अवसर मिला। युद्ध के पहले जर्मनी और आस्ट्रिया के बने माल भारत के बाजार में आते थे और भारतीय उद्योग धन्धों को उनसे प्रतिद्विन्दता करनी पड़ती थी। अब लड़ाई के कारण उन देशों का माल भारतीय बाजारों में आना बन्द हो गया। इस प्रकार स्वदेशी माल की मॉग बढ़ गई। उधर दूसरी ओर युद्ध सामग्रियों में इस्पात, पटसन, चमड़े और ऊनी कपड़े ऐसे थे जिनमें भारत की रुचि हो सकती थी और अंग्रेजों को यह वस्तुऐं यही पर उपलब्ध भी हो सकती थी। अतः परिस्थितियों के दबाव ने अंग्रेजों को इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे भारत के उद्योग धन्धों में रुचि लें यद्यपि भारत के पास इतनी सामग्री नहीं थी और न ही वे उपकरण थे जिससे यहॉ उद्योगों का वृहत विकास हो सकता।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन ने अधिकांश फौजी व्यय को अपने मुख्य उपनिवेश के कन्धों पर लाद दिया था जिससे भारत की तीव्र लूट हुई, और आम जनता के लिए भी कष्ट कारक दुखद परिणाम पैदा हुए।

"1918-1919 और 1920-21 में देश की फसलें खराब हुई जिससे देश की स्थिति और भी गम्भीर हो गई। खाद्य उत्पादन में भारी गिरावट के परिणाम स्वरूप व्यापक अकाल पड़ गया। जबकि सरकार ने अनाज के निर्यात में कोई परिवर्तन नहीं किया। खाद्य-पदार्थो के आभाव और ऊॅची कीमतों के कारण केवल श्रमजीवी जनता को ही नहीं बल्कि मध्यम वर्ग, बुद्धि जीवियों और कर्मचारियों के हितों को भी प्रभावित किया।"[1]

"इन्ही दिनो राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष मजदूर वर्ग के बीच में आ गया। 1918 में बम्बई, मद्रास, कानपुर और अहमदाबाद में उस समय के लिहाज से बड़ी हड़तालें हुई ये स्वतः स्फूर्ति आर्थिक स्वरूप की हड़तालें थीं जो बड़े हद तक युद्ध कालीन उत्पाद के बन्द किये जाने के बाद मजदूरों की व्यापक बर्खास्तगी के परिणाम स्वरूप हुई थी।"[2]

इस अन्तराल में अंग्रेजों के विरूद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र होने लगा था और कॉग्रेस तथा देश दोनों में ही गॉधी का जादू दिख रहा था। राष्ट्रव्यापी पैमाने पर जन आन्दोलन विकसित करने के उद्देश्य से गॉधी जी की पहली बड़ी कार्यवाही रोलेट एक्ट के खिलाफ विरोध आन्दोलन का संगठन था। 1918 में अपने सहायकों और अनुयायियों के एक दल के साथ उन्होंने सत्याग्रह प्रतिज्ञा को सूत्र बद्ध हस्ताक्षरित

---

1. भारत का इतिहास : लेखक क्रोआअन्तोनोवा एवं लेविन कोतोस्की, पृ0-539
2. भारत का इतिहास : लेखक क्रोआअन्तोनोवा एवं लेविन कोतोस्की, पृ0-541

किया और उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जरिये रोलेट एक्ट तथा ऐसे ही अन्य कानूनों का प्रतिरोध करने की शपथ ली। गाँधी जी बहुत शीघ्र जन नायक बन गये और सारा देश उनके पीछे चलने लगा।

गाँधी जी का आन्दोलन अंग्रेजी शोषण के विरूद्ध था। वे आधुनिक पूँजीवादी सभ्यता तथा पूँजीवादी शहरीकरण के बड़े आन्दोलन थे उन्होंने शिल्प तथा कुटीर उद्योगों के पुनर्विकास और विस्तार पर बल दिया। वे देश की अर्थ व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे। चर्खा उनका ऐसा शस्त्र था जो स्वदेशी की भावना को सफलतापूर्वक आगे बढ़ा रहा था। उन्होंने विदेशी वस्तुओं का वहिष्कार किया, नील की खेती, नमक कानून तोड़ना, खादी का प्रचार इत्यादि ऐसे आन्दोलन चलाये जो लोकप्रिय भीं थे विदेशी सत्ता को हिलाने वाले भी और साथ ही भारत की आर्थिक व्यवस्था को निर्णायक मोड देने वाले भी स्वदेशी के माध्यम से वह स्वाबलम्बन का भाव तो भर ही रहे थे साथ ही अपने देश को अपने माल की खपत द्वारा पूँजी को विदेशी बाजार में जाने से रोक रहे थे।

गाँधी जी ने स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष कियां उसे कई चरणों में सम्पादित किया। वे प्रमुख रूप से कहा करते थे कि भारत के सभी वर्ग और राजनीतिक शक्तियों तक ही पूँजीवादी राष्ट्र के नेतृत्व के अन्तर्गत संगठित हो जायें। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उस समय तक मार्क्सवाद की विचारधारा अपने चरम रूप में मार्क्सवादी दर्शन वर्ग संघर्ष को अपरिहार्य मानता है। इसके विपरीत गाँधी जी भारतीय समाज के भीतर वर्ग संघर्ष के विरूद्ध थे। वर्ग शान्ति कायम करने के लिए नगरों और गाँवों के सामाजिक और आर्थिक विवादों के समाधान के लिए समझौते की भावना का सतत् समर्थन करते थे।

गाँधी जी ने भारतीय पूँजीवादी उद्योग के विकास का सक्रीय समर्थन किया और उन्हीं के साथ मिलकर राष्ट्रीय आन्दोलन चलाया। जिससे भारतीय राष्ट्रीय पूँजीपति वर्ग के साथ जमींदारों का वह वर्ग भी आ गया जो राष्ट्रव्यापी था।

गाँधी अपने युग में एक चमत्कारी पुरुष के रूप में मान्य हो गये थे। उन्होंने आम जनता के साथ प्रबुद्ध वर्ग पर भी अपना गहरा प्रभाव डाला। प्रेमी जी भी गाँधी से अत्यन्त प्रभावित थे और उनका समग्र साहित्य गाँधीवादी विचारधारा से ओत–प्रोत है।

गाँधी जी के नेतृत्व में राष्ट्र में अंग्रेजों की दासता से मुक्ति तो पाई पर उसके साथ ही देश को विभाजन दंश भी झेलना पड़ा देश विभाजन के कारण देश की अर्थव्यवस्था चरमरा गई। देश के विभाजन ने भारतीय आर्थिक विकास के अन्तर्निहित अर्थव्यवस्था की औपनिवेशिक संरचना से उत्पन्न विरोधों को और बढ़ा दिया।

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत को अनेक आर्थिक संकटो का सामना करना पड़ा। आजादी के तुरन्त बाद देश के विभाजन और शरणार्थियों की समस्या ने

नवनिर्मित राष्ट्र के आर्थिक ढॉचे को अस्तव्यस्त किया। उसी समय अकाल और दुर्भिक्ष जैसे प्राकृतिक प्रकोपो ने भी राष्ट्र की विकासधारा को अवरुद्ध किया। देश में 26 जनवरी सन् 1950 को भारतीय संविधान लागू हुआ। इसके पूर्व राजकीय पूँजीवाद को बढ़ावा देने के लिए 1 जुलाई सन् 1948 को भारतीय रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा 1949 में बैकिंग कम्पनी अधिनियम पास किया गया।[1]

भारत एक प्रभुता सम्पन्न जन तांत्रिक गणराज्य घोषित होने के बाद देश की चरमराती आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए सरकार पंचवर्षीय योजनाओं का सुनियोजित कार्यक्रम तैयार किया और उनका क्रियान्वन भी हुआ।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू एक स्वप्नदर्शी प्रधानमंत्री थे। उन्होंने भारत को अनन्त ऊँचाइयों तक ले जाने के स्वप्न के साथ औद्योगिक क्रान्ति की ओर मुख किया। देश में बड़े–बड़े उद्योग धन्धों का विकास किया पर इससे कुटीर उद्योग प्रभावित हुए। व्यक्ति अपने परम्परागत व्यवसायों कृषिकर्म आदि को छोड़ कर मिलों में नौकरी करना पसन्द करने लगा। भारत का ढॉचा कृषिप्रधान था। इस व्यवस्था से इस ढॉचे में असन्तुलन पैदा हो गया यद्यपि नेहरू जी देश के औद्योगिक विकास में सफल हुए पर कृषि और कुटीर उद्योगो की उपेक्षा हो गई।

"विकास के प्रारम्भिक दौर से ही अनेक आपदायें झेलने वाले देश को एक और बड़ी विपत्ति चीन से युद्ध के रूप में 19 सितम्बर 1962 को झेलनी पड़ी।"[2] तब हमारा देश विकासमान था। हमारा सैन्य संगठन भी बहुत शक्तिशाली नहीं था। साथ ही चीन की ओर से पंण्डित नेहरू असावधान भी थे क्योंकि उससे पूर्व ही हिन्दी चीनी भाई–भाई के नारे गूँज रहे थे। चीन के विश्वासघाती आक्रमण ने देश को बड़ी क्षति पहुँचाई। वैसे भी जब कोई आक्रमण होता है तो उसका प्रभाव राष्ट्र की जनता पर भी पड़ता है। इस युद्ध में भारत की पराजय हुई साथ ही मॅहगाई अपनी चरमसीमा पर पहुँच गई। इस युद्ध के पश्चात् सरकार ने देश रक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए अधिक वजट का प्रावधान किया। सरकार से 1963 में स्वर्ग नियन्त्रण आदेश पारित हुआ।"[3] इन सबका परिणाम किसी न किसी रूप में जनता के ऊपर पड़ा अनेक प्रकार के कर लगे, मंहगाई बढ़ी और आवश्यक वस्तुओं का आभाव प्रारम्भ हुआ।

इस युद्ध की विभीषिका से देश पूरी तरह उभर नही पाया था कि सन् 1965 में उसे पाकिस्तान के साथ युद्ध में उझलना पड़ा। इस युद्ध के समय भारत के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री थे। उन्होंने दृढ़ इच्छाशक्ति के द्वारा सैनिंकों का मनोबल

---

1. भारत का इतिहास : कोआअन्तोनोवा एवं कोतो वस्की पृ0–670
2. मनोरमा ईयर बुक : 1997, पृ0–470
3. मनोरमा ईयर बुक : 1997,

बढ़ाया और साथ ही राष्ट्र का भी मनोबल बढ़ाया। राष्ट्र में अनाज की कीमतों को देखते हुए सारे राष्ट्र को सप्ताह में एक दिन व्रत रहने की अपील की और स्वयं भी सप्ताह में एंक दिन व्रत (Fast) रहना प्रारम्भ किया। वे अपने कार्य काल में एक ईमानदार एवं मितव्ययी प्रधानमंत्री के रूप में लोकप्रिय हुए किन्तु उनका कार्य काल बहुत दिन तक नहीं रह सका उस समय के भारत पाक युद्ध में भारत की विजय हुई और तत्पश्चात् दोनों देशों के बीच एक समझौते का मसविदा तैयार हुआ, जिसकी मध्यस्थता रूस ने की थी। ताशकन्द में इसी समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद श्री लाल बहादुर. शास्त्री जी की वहाॅ पर रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु हो गयी। अतः उनके कार्यकाल की आर्थिक परिस्थितियों में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। श्री लालबहादुर शास्त्री के पश्चात् इन्दिरा गॉधी ने देश की बागडोर सम्हाली। इन्दिरा जी से पूर्व सदैव से कॉग्रेस समाजवाद की बात कर रही थी परन्तु उनका व्यवहार में क्रियान्वन कम हुआ था। इन्दिरा गॉधी ने ऐतिहासिक फैसला लेते हुए 19 जुलाई 1969 को 14 बैकों का राष्ट्रीयकरण किया और देश को समाजवादी आर्थिक ढॉचे की ओर गतिमान किया।"[1] उस समय देश की आर्थिक परिस्थितियॉ बहुत अच्छी नहीं थी। गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी, भ्रष्टाचार सब में वृद्धि हो चुकी थी। कालाबाजारी भी अपनी चरमसीमा पर थी। ऐसे में इन्दिरा गॉधी ने समाजवाद की ओर चलने का संकल्प लेकर लोगों के मन में आशा का संचार किया। वे अपना चुनाव भी "गरीबी हटाओ के नारे पर जीती थीं। इन्दिरा गॉधी की नीतियों ने एक ऐसी अर्थ व्यवस्था को जन्म दिया जो पूॅजीवादी भी थी और समाजवादी भी। "अपने कार्यकाल में इन्दिरा गॉधी को अपनी पार्टी में भी अनेक विरोधो का सामना करना पड़ रहा था। विपक्ष भी उनके विरोध में एकजुट था। इन्ही परिस्थितियों में एक बार फिर देश को सन् 1971 में पाकिस्तान के साथ युद्ध करना पड़ा।"[2] यह युद्ध कई सन्धियों में ऐतिहासिक था। बंगलादेश नामक नये राष्ट्र के निर्माण में इन्दिरा गॉधी और भारत की मुक्ति वाहिनी फौजों की विशेष भूमिका थी।"[3] इस युद्ध ने राजनैतिक दृष्टि से इन्दिरा गॉधी को यश के सर्वोच्च शिखर पर पहुॅचा दिया। किन्तु देश की आन्तरिक स्थिति और अधिक जर्जर हो गई। "इन्दिरा गॉधी के चारो ओर चाटुकारों का एक घेरा बना। देश में भ्रष्टाचार फलने–फूलने लगा चिन्तको एवं बुद्धिजीवियों ने देश की आर्थिक आजादी की मॉग शुरू कर दी। प्रशासन साफ सुथरा एवं ईमानदार बनाने तथा प्रजातंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए जयप्रकाश नारायण ने "प्रजातन्त्र के लिए नागरिक" (सिटीजन फॉर

---

1. मनोरमा ईयर बुक : 1947, पृ0–471
2. मनोरमा ईयर बुक : 1997, पृ0–471
3. मनोरमा ईयर बुक : 1997, पृ0–471

डेमोक्रेसी) आन्दोलन सन् 1974 में शुरू किया।"[1] उनका अभिमत था कि सन् 1947 में जो आजादी मिली वह राजनीतिक आजादी थी। आर्थिक दृष्टि से देश का आम आदमी अभी भी गुलाम है। अतः देश में एकसमग्र क्रान्ति की आवश्यकता है। जिससे विकास का लाभ केवल चन्द महलों में ही न सिमटा रहे अपितु हर झोपड़े को उसकी रोशनी प्राप्त हो।

"प्रेमी" जी ने अपनी अनेक रचनाओं एवं नाटकों में आर्थिक प्रसंगों को उठाया एवं जन–जन तक पहुँचा कर आर्थिक संकटों से जूझने में एवं निराकरण करने का प्रयास किया।

(ब) प्रेमी जी का जीवन वृत्त

श्री हरिकृष्ण प्रेमी जी का जन्म वैश्य परिवार में मध्य भारत के पुराने ग्वालियर संभाग के अर्न्तगत गुना नामक स्थान में 27 अक्टूबर 1908 को हुआ था। इनके पिता जी श्री बालकुमुन्द जी अधिवक्ता थे। माँ की मृत्यु के समय प्रेमी जी दो वर्ष के थे। माँ के प्रेम के अभाव नें प्रेमी जी के मानस में प्रेम की पिपासा जागृत कर दी थी, वही कालान्तर में उनके "प्रेमी" नाम की सार्थकता बनी। इसी आघात ने हरिकृष्ण को प्रेमी बना दिया। प्रेमी जी का निम्नाकित कथन अवलोकनीय हैं– "उस समय में दो साल का था, जब मेरी जननी मुझे इस पृथ्वी पर पटक कर न जाने किस दुनियाँ में चली गई। ज्यों– ज्यों मैं बड़ा होता चला गया होश सम्भालता चला गया, मेरे हृदय में इस प्रकार की आकाँक्षा तीव्र होती चली गयी कि कोई मुझे प्यार करे। मेरी इस प्यास को कोई शान्त न कर सका।"[2]

मातृ–प्रेम से वंचित हरिकृष्ण का मन प्रणयाकाँक्षी हो गया। उनके पिता जी द्वारा द्वितीय विवाह कर लिये जाने पर वह पिता के स्नेह को भी प्राप्त न कर सके। भावुक एवं संवेदनशील हरिकृष्ण पर प्रेम की अलभ्यता का ऐसा अमिट प्रभाव पड़ा कि उनके मन में प्रेम की शाश्वत भूख समाविष्ट होकर रह गयी। आगे चलकर इसी कारण से उन्होंने अपना उपनाम "प्रेमी"रखा था।

प्रेम का तत्व उनके अचेतन मन में गहरा प्रतिष्ठित हो गया, जिसकी प्रतिच्छाया उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होती है। "बन्धु मिलन"नाटक में शक्ति सिंह के रूप में कृतिकार का ही परिचय है। शक्ति सिंह, प्रताप से कहता है– "मेरा दुर्भाग्य यह है कि मेरी माँ जीवित नहीं है......पिता जी ने कभी स्नेह के साथ मेरे मस्तक पर

---

1. मनोरमा ईयर बुक : 1997, पृ0–471
2. अनन्त के पथ पर– हरिकृष्ण प्रेमी–भूमिका

हाथ नहीं फेरा।"[1] वह अपनी पत्नी से कहते हैं–"जिसे प्यार से बंचित रखा जाता है वह डाकू बन जाता है।"[2]

वर्तमान मध्य प्रदेश के मुरार (ग्वालियर) नामक कस्बे के स्कूल में "प्रेमी" जी ने सोलह वर्ष की अवस्था में मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए अध्ययन कार्य प्रारम्भ किया। परीक्षा से लगभग एक माह पूर्व उनके पिताजी ने उनका विवाह तत्कालीन सयुक्त प्रान्त के एक धनी परिवार की कन्या से कर दिया। उनकी पत्नी अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों से ग्रस्त थी, जब कि प्रेमी जी की विचारधारा उदार थी। फलतः दोनों के विचार मिल न सके। प्रेमी से और उनके पिताजी के विचार भी कभी न मिल सके। उन्होंने अपने पिताजी से स्पष्ट शब्दों में कहा था कि मेरा विवाह आपने मेरी इच्छा के विरूद्ध मुझ पर थोपा है, इसलिए मैं इस उत्तरदायित्व को सम्भालने से इन्कार करता हूँ। इस संघर्ष का प्रतिपादन उनके नाटकों में परिलक्षित होता है। 'अमर आन' नाटक में अमर सिंह अपनी पत्नी अहाड़ी रानी से कहता है ..."पिताजी का अन्याय मेरे कलेजे को सालता तो है–केवल अपने लिए ही नही–माता के लिए भी।"[3]

"प्रेमी" जी का व्यक्तिगत जीवन वेदनापूर्ण रहा। उन्होंने वाल्यावस्था में असीम कष्ट सहन किये, इससे वे दूसरों को दुःखी देखकर द्रवित हो जाया करते थे। उनकी मानवतावादी भावना का राष्ट्रप्रेम में पर्यावसान हुआ। उन्होंने स्वर्णविहान गीति नाटिका में दो शब्द के अन्तर्गत लिखा है कि ..."जब मैं केवल दो वर्ष का शिशु था तभी मेरी स्नेहमयी माँ मुझे कवि बनने, अकेला छोड़कर चली गयी थी। तब माँ के आँचल की जगह ऊपर विराट आकाश था और गोद की जगह विस्तृत बसुन्धरा। मेरा वह करुण विहान ही स्वर्ग विहान का प्रेरक है। जिस मातृभूमि ने अपने प्रेम और ममता से नवजीवनदान दिया, उसे प्रेमांजलि अर्पित करने के लिए ही इस नाटिका की रचना की थी।"[4] इसी गीति नाटिका में उन्होंने यह भी लिखा... "राजनीति मुझे अधिक प्यारी नही, परन्तु आसुओं, आहों से, दुःखो से मानवता के अपमान से मेरे हृदय का सीधा सम्बन्ध है।"[5]

"प्रेमी" जी के परिवार मे राष्ट्रीयता का वातावरण रहता था। प्रेमी जी के अग्रज श्री गोपी कृष्ण विजय वर्गीय कॉग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता थे। कवि होने के कारण अपने लघु भ्राता प्रेमी को काव्य की ओर प्रवृत्त करने का श्रेय उन्हें ही प्राप्त है।

---

1. बन्धु मिलन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–22
2. बन्धु मिलन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–22
3. अमर–आन :हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–11
4. स्वर्ण विहान : हरिकृष्ण प्रेमी–दो शब्द
5. स्वर्ण विहान : हरिकृष्ण प्रेमी–दो शब्द

इस प्रकार "प्रेमी" जी को बाल्यावस्था में ही राष्ट्रीय विचारधारा और साहित्यिक प्रेम का प्रशिक्षण पारिवारिक परिवेश में उपलब्ध हुआ।

प्रेमी जी का साहित्यिक जीवन कविता से ही प्रारम्भ होता है। इण्टरमीडिएट तक आते-आते वे पूर्ण कवि बन गये। साहित्य सृजन में उनकी अभिरुचि इतनी प्रबल हो गयी कि औपचारिक शिक्षा एवं अध्ययन की ओर से वे विमुख होते-चले गये। उनका निम्न कथन अवलोकनीय है ..."मैंने अध्ययन तो इण्टरमीडियट से ही छोड़ दिया, क्योंकि ज़ब मैं मैट्रिक में था तभी से साहित्य सृजन का स्वप्न मेरे सिर पर सवार हो गया था।"

एक बार "प्रेमी" जी की कविता को सुनकर जब ग्वालियर राज्य के तत्कालीन गृहमंत्री श्रीमन्त सदाशिव खासे साहब ने गुना में आपको तहसीलदार का पद देने की इच्छा प्रकट की, तब उन्होंने स्पष्ट रूप से उनसे इन्कार करते हुए पूर्णतः साहित्यिक जीवन व्यतीत करने की घोषणा कर दी थी।

तत्कालीन गृहमंत्री ने 'त्याग भूमि' (अजमेर) के तत्कालीन सम्पादक श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नाम एक पत्र लिखकर प्रेमी जी को साहित्यिक जीवन विताने की सुविधा उपलब्ध कराने का अनुरोध किया। इस पत्र का उपाध्याय जी पर बहुत प्रभाव पड़ा।

द्विवेदी युग के प्रमुख साहित्यकार पण्डित हरिभाऊ के आमन्त्रण पर वे सन् 1927-28 के लगभग अजमेर चले गये। उस समय उनकी अवस्था लगभग उन्नीस वर्ष की थी। वह अजमेर के हाथी बाढ़ा नामक स्थान पर रहते थे। और हटण्डी क्षेत्र में सुधार का कार्य करते थे। अजमेर में "प्रेमी" जी को उपाध्याय जी ने त्यागभूमि नामक पत्रिका का सहायक सम्पादक बनाया। इस काल में प्रेमी जी को नवीन अनुभूतियाँ प्राप्त हुई। जिससे उनकी राष्ट्रीय भावना और प्रबल हो गयी। उनपर गाँधीवाद का अमिट प्रभाव पड़ा। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेना आरम्भ कर दिया। और सन् 1930 ई0 राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्होंने जेल यात्रा भी की। अंग्रेजी सरकार द्वारा त्यागभूमि पत्रिका जब्त कर ली गई। जेल से छूटने के बाद अनन्तर प्रेमी जी को माखन लाल चतुर्वेदी जी ने 'कर्मवीर' के सम्पादन के लिए खण्डवा बुला लिया। कुछ समय के बाद 1932 में प्रेमी जी 'भारती' पात्रिका का सम्पादन करने के लिए लाहौर चले गये।

लाहौर में प्रेमी जी के साथी डॉ0 जयनाथ 'नलिन' भी रहे। वहाँ पर उनका देश विभाजन के पूर्व का समय सर्वश्रेष्ठ रहा। तदुपरान्त उनके जीवन में अस्थिरता आ गयी। लाहौर में उन्हें उसके कष्टों का सामना करना पड़ा। वहाँ वह

---

1. समाज सुधार के लिए मेरे संघर्ष निबन्ध : हरिकृष्ण प्रेमी

सम्पादक, प्रकाशक तथा कभी प्रेस के स्वामी के रूप में काम करते रहे, परन्तु स्वजनों ने उन्हें धोखा दिया। उनका कथन दृष्टव्य है... "यदि लाहौर में उनको इस जीवन की चर्चा करूँगा तो कई उन लोगों की कलई खुलेगी जो आज जहॉ–तहॉ ऊँचे पदों पर आसीन है।"[1] अतः यही कहना पर्याप्त होगा कि प्रेमी जी ने यहॉ काफी व्यथा भोगी थी। वह सरल स्वभाव के थे। अतः दूसरो पर बड़ी सहजता से विश्वास कर लेते थे। वह लाहौर मे जहॉ–जहॉ गये, वहॉ–वहॉ ठगे गये। धोखा दिये जाने पर उनके मन में कटुता उत्पन्न हुई। जिसे उन्होंने किसी पर प्रकट नहीं होने दिया। "रूपम आर्ट पिक्चर्स" के 'विखरे मोती' नामक फिल्म के संवाद कथानक और गीत लिखे। दो वर्ष तक बम्बई में रहने के बाद वह 1935 में लाहौर लौट आये। बम्बई में, अर्जित धन से "भारती प्रिटिगं प्रेस" नामक अपना मुद्रालय आरम्भ किया। उन्होंने "रेखा" नामक एक साहित्य पत्रिका का सम्पादन आरम्भ किया। पॉच– सात वर्षो तक उनका व्यवसाय सुचारू रूप से चला और उसके बाद स्वतंत्रता आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। राष्ट्रीय आन्दोलन में पकड़ कर कारागृह में बन्द कर दिये गये। उनकी प्रेस सरकार ने जब्त कर ली। इससे उनके व्यवसाय को धक्का लगा। जेल से मुक्त होने के उपरान्त उन्होंने "सामाजिक साहित्य सदन" नामक प्रकाशन संस्था की स्थापना की।

1946 ई0 में इन्होंने लाहौर स्थित 'पंचौली' फिल्म में कार्य आरम्भ किया। इस कहानी द्वारा बनाई जाने बाली फिल्मों के कथानक, संवाद आदि का वे सम्पादन करते थे। और कभी–कभी स्वयं भी देखते थे। 'कैसे कहूँ' तथा 'रूप रेखा' नामक फिल्मों की पठ कथा उन्होंने लिखी।

देश विभाजन ने "प्रेमी" जी को विस्थापित कर दिया। उनका परिवार इन्दौर में रहने लगा। "प्रेमी" जी पुनः बम्बई आ गये। और वहॉ उन्होंने 'मुरारी पिक्चर्स' के लिए 'रक्षा बन्धन' नाटक पर आधारित 'चित्तौड़–विजय' नामक फ़िल्म बनायी। इस फिल्म की कथा पटकथा, सम्बाद तथा गीत प्रेमी जी ने लिखे। मुरारी पिक्चर्स के लिए अन्य तीन–चार फिल्मों की कहानियॉ तथा पटकथाएँ भी प्रेमी जी ने लिखी। उन्होंने 'कलाकार चित्र' नामक अपनी फिल्म कम्पनी स्थापित की और 'प्रीति के गीत' नामक फिल्म का निर्माण किया था। अन्य अनेक फिल्मों की पट–कथाएँ, संवाद तथा गीत भी लिखे, जिनमें मुख्य हैं... 'इम्तिहान', 'अमर कहानी' और 'गीत'। उनकी अपनी निर्मित फिल्म 'प्रीति का गीत' विफल हो गयी और उसमे प्रेमी जी की पूँजी डूब गयी।

सन् 1950 ई0 में प्रेमी जी खाली हाथ इन्दौर लौट आये। वे पुनः

---

1. नाटक कार हरिकृष्ण प्रेमी : विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक', पृ0–214

साहित्य–सृजक हो गये। धनाभाव के कारण 1956 में उन्हें जालँधर आकाशवाणी केन्द्र में तीन साल के अनुबन्ध पर हिन्दी प्रोड्यूसर के पद पर नियुक्त किया गया।

कृष्णा नामक व्यक्तिगत सचिव के साथ भावनात्मक सम्बन्ध होने के प्रवाद को लेकर कुछ दिनो बाद उन्हें नौकरी छोड़नी पड़ी और वे फिर लौट आये तथा साहित्य साधना में संलग्न होने का प्रयत्न करने लगे। इससे साथ–साथ प्रेमी जी राजनीति तथा समाज सुधार के कार्यो में संलग्न रहे। उन्होंने अन्तिम श्वॉस तक लेखन कार्य किया। 22 जनवरी 1974 की संध्या को उनका देहावसान हो गया। प्रेमी जी के तीन पुत्र, चार पुत्रियॉ जीवित है। प्रोफेसर विश्वप्रकाश विजयवर्गीय इन्दौर में रहते है।

श्री प्रेम प्रकाश विजय वर्गीय, 1976 में शिकागो (अमेरिका) में भारतीय स्टेट बैंक के प्रबन्धक थे। तृतीय पुत्र मेजर जीवन प्रकाश विजय वर्गीय भारतीय थल सेना में अधिकारी है।

उनकी पुत्री श्रीमती प्रभा विजयवर्गीय भोपाल में रहती है। श्रीमती आशा मनोरंजन, इन्दौर में रहती है। श्रीमती ऊषा चौकसे भी इन्दौर में रहती है।

व्यक्तित्वः–

कृति में कृतिकार का व्यक्तित्व प्रतिफलित होता है। अतः रचनाकार का सही आकलन रचनाकार के व्यक्तित्व, समाज और देशकाल के प्ररिप्रेक्ष्य में ही सम्भव है।[1]

"प्रेमी" जी के व्यक्तित्व–निर्माण में पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है। "प्रेमी" जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए श्री जयनाथ 'नलिन' ने लिखा है... प्रेमी जी का साहित्यिक और भौतिक व्यक्तित्व अत्यन्त भोला, मधुर, आकर्षक और स्वच्छ है। उनके व्यक्तित्व में मूर्तिमान कवि का दर्शन होता है। "प्रेमी" ने व्यक्ति और कलाकार दोनों के रूप में विश्व को प्यार किया, उनसे मिलने वाले कटु–मधुरस के घूँट वह भावुकता भरी पुतलियों और मुस्कराते ओठो से पी गया है। "प्रेमी" के कवि की नाड़ियों में प्रेम की मधुर वेदना की कम्पन बजती है। उनके हृदय में मानवता की धड़कन बोलती है।[2]

प्रेम के अभाव ने उन्हें हरिकृष्ण से प्रेमी बना दिया, इंसीलिए उन्होंने अपनी पुत्री का नामकरण भी अपने उपनाम के आधार पर प्रेमलता रखा, परन्तु वह लता भी असमय डूब गयी। इस वेदना को भी उन्होंने सहन किया।

वास्तव में पारिवारिक दृष्टि से "प्रेमी जी का जीवन अवश्य ही

---

1. साहित्य के मूल्य : डॉ0 देवेन्द्र ठाकुर, पृ0–36
2. हिन्दी नाटककार : प्रो0 जयनाथ 'नलिन', पृ0–121

दुर्भाग्यपूर्ण कहा जा सकता है। दो वर्ष की अवस्था में क्रूर काल ने उनकी माता का ममतामय वरद् हस्त भी उनसे छीन लिया। उनके पिता जी ने दूसरी शादी करली, जिससे वे मातृहीन शिशु को वांछित प्रेम प्रदान न कर सके। यही अतृप्त प्रेम उनकी कृतियों में पूर्ण आवेश के साथ व्यक्त हुआ है।

"प्रेमी" जी के जीवन में प्रेम–अभाव, प्रेम भाव बनकर प्रकट हुआ है। स्वयं चिर प्रेम विपासु रह कर भी "प्रेमी" जी ने सभी को प्रेम आवंटित किया। विश्व को आह्लादित करने वाला नाटककार हृदय में प्रेम वेदना का ज्वार छिपाये रहा। बटुक जी ने लिखा है...."बचपन में प्रेम के अभाव ने उन्हें परमात्मा प्रेम और परमात्मा प्रेम ने व्यापक प्रेम की ओर अग्रसर किया और फिर प्रेम ही प्रेमी जी का जीवन हो गया। प्रेम कभी उपलब्ध होता है। कभी नही! प्रेमी जी का जीवन अभाव, असफलता और वियोग का क्रीड़ा क्षेत्र था। वेदना को उन्होंने प्राणों में पाला था।"[1]

माँ की मृत्यु पितृ–प्रेम से उपेक्षित, पुत्री की मृत्यु ने हरिकृष्ण "प्रेमी" को विह्वल कर दिया। इन दुखद स्थितियों के अभाव स्वरूप "प्रेमी" जी के नाटक मानवता से परिपूर्ण हैं। समाज में करुण–क्रन्दन करती हुई मानवता का अवलोकन कर संवेदनशील "प्रेमी" का हृदय दुखी हुआ और वे सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन करने का प्रयास करने लगे। जिससे कभी–कभी उन्हें परिवार तथा समाज के विरोधों का सामना करना पड़ता था। बाईस वर्ष की अवस्था में "प्रेमी" जी तथा उनके अग्रज गोपीकृष्ण ने हरिजनों के साथ उनके हाथ का बना भोजन किया था। और इसके लिए उन दोनों को उनकी जाति वालों ने अपने समाज से बहिष्कृत कर दिया था। परन्तु "प्रेमी" जी अपने मार्ग से विचलित न हुए।[2]

हरिकृष्ण "प्रेमी" छुआ–छूत और ऊँच–नीच की भावना के विरोधी थे, परन्तु उनकी पत्नी इसमें विशेष आस्था नहीं रखती थी। फलतः दोनों में कलह की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। उन्हें समाज के विरोधों का सामना करना पड़ा, परन्तु वे कभी नतमस्तक नहीं हुए। उन्होंने पर्दा प्रथा को समाप्त करने के लिए सर्वप्रथम प्राचीन विचारों में अनन्य आस्था रखने वाली अपनी धर्मपत्नी को अवगुंठन हटाने हेतु प्रेरित किया। इसके निमित्त उन्हें कई दिनों तक अनशन रखना पड़ा, तभी उन्हें सफलता मिल सकी। "प्रेमी" जी ने अपने परिवार मे मूर्ति, घूरे, कुँए, कुम्हार के चाक, पीपल, ऑवला, केरी, बेरी आदि की पूजा की रूढ़ियों का विरोध किया।

वे दहेज प्रथा के विरोधी थे। उन्होंने अपने अग्रज के विवाह मे दहेज का विरोध किया। विपन्नावस्था में "प्रेमी" जी ने अपने बड़े पुत्र के विवाह में पच्चीस

1. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी : विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक', पृ0–213–14
2. ऊषाचौकसे : साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृ0–21

हजार उस समय के दहेज का प्रस्ताव ठुकरा दिया। उन्होंने समाज में प्रचलित अनमेल विवाह का कभी भी अनुमोदन नहीं किया। उसी के परिणाम स्वरूप उन्होंने दहेज लोलुपतावश पुनर्विवाह के इच्छुक व्यक्ति से बहिन की शादी करने हेतु तत्पर अपने पिताजी का विरोध किया, फिर भी उनके पिताजी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। समस्त विवाह सम्बन्धी कार्य अनवरत रूप से चलते रहे। "प्रेमी" जी अपराह्न तीन बजे वस्तु स्थिति से अवगत हुए। तदन्तर उन्होंने गुना के कलक्टर को फोन करके वैवाहिक प्रक्रिया को पूर्ण नहीं होने दिया।

"प्रेमी" जी के व्यक्तित्व–निर्माण में उनके परिवार के राजनीतिक चेतना मुक्त वातावरण के प्रभाव का योगदान भी है। वाल्यावस्था में अपने पिताजी एवं अग्रज को राजनीति में अर्पित देख कर "प्रेमी" जी पर इसका प्रभाव पड़ा। फलतः वे राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। श्री जयनाथ नलिन ने लिखा है.... "जिस देशभक्त ने हिन्दुत्व का रूप धारण करके भारतेन्दु को प्रेरित किया, जो आर्य सांस्कृतिक चेतना के रूप में प्रसाद की राष्ट्रीय प्रेरणा बनी, उसी राष्ट्रीय उत्थान की भावनाओं ने "प्रेमी" जी को हिन्दू–मुस्लिम एकता का चोला पहनाकर प्रकाश दिखाया।"

"प्रेमी" जी स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु साहित्य द्वारा देश सेवा करने लगे। राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत "प्रेमी" जी क्रान्तिकारियों को निर्भय होकर अपने घर में संरक्षण देने लगे। इसलिए वे कभी नजर बन्द किये गये। कभी उनकी पुस्तको एवं प्रकाशन संस्था आदि को जब्त किया गया। डॉ0 जयनाथ 'नलिन' का यह कथन उनके सम्बन्ध में उल्लेखनीय है... "प्रेमी" जी का जीवन बड़े संघर्ष का, बड़े उतार–चढ़ाव का जीवन था। उनका जीवन सदा ही ऑधी–तूफानों की छाती पर सवार होकर चला। कभी वह उड़कर हिमालय पर्वत के ऊपर पहुँचा, तो कभी समुद्र की गहराइयों में जा डूबा और कभी थपेड़े खाकर मूर्छित हो गया।"[1]

फिर भी "प्रेमी" जी ने शरणागत की रक्षा के धर्म का निर्वाह किया। इसलिए उन्हें बहुत से संकटो का सामना करना पड़ा।

अंग्रेजों ने विदेशी भाषा और संस्कृति को भारतीयों पर लादने की चेष्टा की। सौभाग्यवश इस धर्म–संकट–काल में कतपय महापुरूषो राजाराम मोहन राय, महर्षि दयानन्द, रामकृष्णपरम हंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविन्द घोष, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गॉधी आदि अवतरित हुए। इन महापुरूषों ने सांस्कृतिक आन्दोलनों को जन्म दिया। इसके परिणाम स्वरूप एक ओर तो भारतीय सांस्कृतिक के मूलोद्गम स्वरूप वेद, उपनिषद, गीता आदि धर्मग्रन्थों की सांस्कृतिक मान्यता का आधार माना गया, दूसरी ओर युग की आवश्यकता को समझते

1. हिन्दी नाटक कार : जयनाथ 'नलिन', पृ0–115

हुए सामाजिक सुधारों का शंखनाद हुआ। "प्रेमी" जी के नाटकों में भारतीय संस्कृति के तत्वों का निरूपण मिलता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रेमी जी रवीन्द्रनाथ टैगोर और खलील जिब्रान से, ऐतिहासिक नाटको के क्षेत्र में डी० एल० राय और सामाजिक क्षेत्र में माइकेल मधुसूदन दत्त की रूढ़ि भंजन प्रतिभा से प्रभावित हुए। हिन्दी कवियों में "प्रेमी" जी पर सर्वाधिक प्रभाव महादेवी वर्मा के वेदना भाव का पड़ा इसके अतिरिक्त पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर, तुलसी, कबीर, रहीम, जायसी, मीरा आदि का प्रभाव "प्रेमी" जी ने स्वीकार किया तथा "प्रेमी" जी की कृतियों में उनका संघर्षशील व्यक्तित्व प्रतिबिम्बत हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विविध क्षेत्रों से प्रभावित होकर प्रेमी जी के अप्रितिम व्यक्तित्व का निर्माण हुआ, फिर भी वे अपनी परिस्थितियों के प्रभाववश सभी से विलक्षण ही थे।

प्रेमी जी का साहित्य

"प्रेमी" जी ने हिन्दी जगत में पर्याप्त साहित्य की रचना की है। उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक एवं एकांकी नाटक लिखे है। इसके अलावा उन्होंने एक गीति–नाट्य, पॉच रेडियो नाटको की रचना की है। यहॉ पर उनके ऐतिहासिक, सामाजिक एवं पौराणिक नाटकों की क्रम बद्ध सूची प्रस्तुत है।

ऐतिहासिक नाटक

1. रंक्षाबन्धन	1934
2. शिवासाधना	1937
3. प्रतिशोध	1937
4. स्वप्नभंग	1940
5. आहुति	1940
6. मित्र (शतरंज के खिलाड़ी)	1945
7. शतरंज के खिलाड़ी	1945 (उपर्युक्त मित्र नाटक का ही नवीन रूप)
8. विषपान	1945
9. उद्वार	1949
10. शपथ	1951
11. भग्न प्राचीन	1954
12. प्रकाश स्तम्भ	1954
13. कीर्ति स्तम्भ	1955
14. विदा	1958

15. संरक्षक	1958
16. संवत् प्रवर्तन	1959
17. साँपों की सृष्टि	1959
18. आन का मान : मानव दुर्गादास	1962
19. शीशदान	1962
20. भाई–भाई	प्रकाशन वर्ष नहीं दिया गया है।
21. रक्तदान	1962
22. अमर आन	1964
23. अमर बलिदान	1967
24. नई राहें	1968
25. बन्धु मिलन	1969
26. अग्नि परीक्षा	1971
27. अमृत पुत्री	1971
28. शक्तिसाधना	1972
29. रक्त रेखा	1973

सामाजिक नाटक

1. बन्धन	1941
2. छाया	1941
3. ममता	1958

पौराणिक नाटक

1. पाताल विजय	1932

ऐतिहासिक नाटकों का संक्षिप्त परिचय

1. रक्षाबन्धन:–

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रक्षाबन्धन नाटक को "प्रेमी" जी का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना है। उनके अनुसार इस तृतीय उत्थान के बीच हमारे वर्तमान नाटक क्षेत्र में दो नाटककार बहुत ऊँचे स्थान पर दिखाई पड़े, स्वर्गीय जय शंकर प्रसाद जी और श्री हरिकृष्ण प्रेमी। दोनों की दृष्टि ऐतिहासिक काल की ओर रही है। प्रसाद जी ने अपना क्षेत्र प्राचीन हिन्दू–काल के भीतर चुना और "प्रेमी" जी ने मुस्लिम–काल के भीतर प्रसाद के नाटकों में स्कन्ध गुप्त श्रेष्ठ है और "प्रेमी" जी के नाटको में 'रक्षाबन्धन'।[1]

रक्षाबन्धन नाटक में "प्रेमी" जी ने मुगल सम्राट हुमायूँ को चित्तौड़ पर संकट आने पर स्वर्गीय राणा सांगा की पत्नी कर्मवती द्वारा राखी भेजना और भाई–बहिन के पवित्र सम्बन्ध की रक्षा आदि का वर्णन है।

गुजरात के बादशाह का भाई चॉद खॉ भागकर मेवाड़ में शरण लेता है। गुजरात का बादशाह विक्रमादित्य को पत्र द्वारा सूचित करता है कि यदि चॉद खॉ को वापिस नहीं करेगा तो वह मेवाड़ पर चढ़ाई कर देगा। मेवाड़ का बादशाह चॉद खाँ को वापिस नही करता। बहादुरशाह मेवाड़ पर आक्रमण कर देता है। महारानी कर्मवती हुमायूँ को भाई मानकर राखी भेजती है। तथा उससे मदद मॉगती है। हुमायूँ प्रसन्नतापूर्वक सहायता करना स्वीकार करता है। उधर युद्ध आरम्भ हो जाता है। कर्मवती अपने भाई अर्जुन सिंह के बीरगति पाने पर बहुत दुःखी होती है।

बहादुरशाह ने भी हुमायूँ को प्रस्ताव भेजा था कि वह उसके साथ मिल जाये परन्तु हुमायूँ ने प्रस्ताव को ठुकरा दिया क्योंकि हुमायूँ की नजरों में राखी का मूल्य किसी भी राज सिंहासन और धन दौलत से बढ़कर है और वह बहिन कर्मवती की रक्षा के लिए मेवाड़ की तरफ चल देता है। उसे पहुँचने में देर लग जाती है। तब तक स्त्रियाँ. जौहर कर लेती हैं। हुमायूँ कर्मवती की चिता के सामने राखी के प्रति अपने कर्तव्य को चुकाने में देर हो जाने के कारण क्षमा याचना करता है।

2. शिवासाधना:–

प्रस्तुत नाटक शिवाजी के जीवन की एक घटना पर आधारित है। "प्रेमी" जी ने इसमें चित्रित किया है कि शिवाजी और उनके साथी भवानी के मन्दिर

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, पृ0–611

में इस बात की शपथ लेते है कि वे अपना सम्पूर्ण जीवन भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराने में व्यतीत करेंगे।

शिवाजी के संरक्षक दादा कोंडदेव शिवाजी को यह समझाते है कि वह क्रान्ति का आरम्भ न करें क्योंकि उनके पिताजी पर संकट आ जायेगा। पिता तथा देश दोनों में से शिवाजी देश की स्वाधीनता को ही सर्वोपरि मानते है। शाहजी को संकट में देखना सहन न कर सकने के कारण दादा जी कोंडदेव विष खाकर अपनी जीवन लीला को समाप्त कर देते है।

महबूब आदिलशाह की पत्नी बड़ी साहिबा शाहजी को कैद करने लिए परामर्श देती है, जिससे शाहजी को छुटकारा दिलाने के लिए शिवाजी अवश्य आयेंगे उसी समय उन्हें भी कैद किया जा सके। शिवाजी की पत्नी सईबाई शिवाजी को मार्ग सुझाती है कि वे मुगलों से बीजापुर के विरूद्ध सहायता मॉगे। औरंगजेब अपने स्वार्थ के लिए शिवाजी को दोस्त बनाकर बीजापुर को समाप्त करने का काम सौंपता है। अफजल खॉ शिवाजी का सामना करता है और शिवाजी के हाथो मारा जाता है।

बीजापुर का राजा अपने सेनापति अफजल खॉ का बदला चुकाने के लिए शिवाजी पर हमला करता हैं और शिवाजी को पन्हाला के दुर्ग में बन्द कर देता हैं। एक हब्शी शिवाजी को मुक्त कर देता हैं। उधर शाह जी भी जेल से छूटकर आते हैं। शिवाजी सारे महाराष्ट्र मे दिवाली मनाने का आदेश देते हैं।

शिवाजी तथा मोरोपन्त शाइस्ताखॉ पर हमला कर देते हैं वह भाग जाता है। इस पर औरंगजेब नाराज होकर जयसिंह को शिवाजी के विरुद्ध लड़ने को भेजता हैं। जयसिंह के कहने पर शिवाजी औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होते हैं। औरंगजेब शिवाजी का अपमान करता हैं। तथा उन्हें बन्दी भी बना लेता हैं। शिवाजी मिठाई की टोकरी में छिपकर जेल से भाग जाते हैं। औरंगजेब दक्षिण पर फिर चढ़ाई कर देता हैं।

शिवाजी की मॉ जीजा बाई शिवाजी तथा तानाजी से सिंह गढ़ का किला मॉगती हैं। किला तो मिल जाता हैं किन्तु तानाजी वीरगति को प्राप्त होते हैं। प्रतापराव की सहायता से शिवाजी मुगल सेना का सफाया कर देते हैं।

तत्पश्चात शिवाजी का राज्यभिषेक होता है, इधर माता की मृत्यु हो जाती है। जिससे दुःखी होकर शिवाजी बैराग्य लेना चाहते हैं, किन्तु अपने गुरू रामदास से प्रोत्साहन पाकर कर्तव्य पथ पर आरूढ़ हो जाते हैं।

3. प्रतिशोधः–

यह नाटक बुन्देलखण्ड के अमर वीर छत्रसाल के शौर्यन्पराक्रम से सम्बन्धित हैं। जब छत्रसाल एक वर्ष का शिशु था, तब छत्रसाल की मॉ लाल कुँवरि

छत्रसाल से विन्ध्यवासिनी के मन्दिर में यह कहती हैं कि– "हम रहें या न रहें परन्तु बुन्देलखण्ड एक दिन अवश्य स्वतन्तत्र होगा।" प्राणनाथ प्रभु जो छत्रसाल के गुरू हैं, एकसाल के छत्रसाल को यही आशीर्वाद देते हैं कि वह सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को स्वतन्त्र कराने में सफल हो। माँ तथा गुरू के आशीर्वाद से छत्रसाल को इस कार्य में सफलता मिलती हैं।

चम्पतराय को बुन्देलखण्ड की जनता आदर देती हैं। पहाड़ सिंह की पत्नी हीरा देवी को यह अच्छा नहीं लगता। वह चम्पतराय को मारने के लिए जहर देती है। ताकि उसका मार्ग निष्कंटक हो सके, परन्तु चम्पतराय का भाई भीमसिंह अपने भाई की रक्षा करता हैं। वह उनका खाना खाता है। जिसमें जहर मिला हैं और भाई के प्राणों की रक्षा अपने प्राण देकर करता हैं।

चम्पतराय मुगलों की ओर से लड़कर उनको कन्धार प्रदेश जीतकर देता हैं। जिसके बदले में शाहजहाँ कोच की जागीर चम्पतराय को देता हैं। चम्पतराय दारा के विरूद्ध औरंगजेब की ओर से युद्ध करने जाते हैं। जिससे कि वे व्यक्तिगत प्रतिशोध ले सकें।

प्राणनाथ प्रभु लाल कुँवरि (चम्पतराय की पत्नी) को समझाते हैं कि यह समय व्यक्तिगत प्रतिशोध लेने का नहीं हैं। लाल कुँवरि चम्पतराय को लेकर अपनी जन्म भूमि के लिए प्रस्थान करती हैं। औरंगजेब की सेना उसका पीछा करती हैं। शत्रु उनको घेर लेते हैं। अपने देश की आन रखने कि लिए पति के कहने पर अपने पति तथा स्वयं अपने प्राणों को समाप्त कर देती हैं। संसार से विदा लेते समय वह अपने पुत्र के पास प्राणनाथ प्रभु द्वारा यह संन्देश भिजवाती हैं, कि– "वह अपने माँ–बाप का प्रतिशोध औरंगजेब से ले।"

छत्रसाल कुछ दिन मुगलसेना में रहकर मुगलों को युद्ध कला को सीखते हैं, उसके पश्चात् मराठा सरदार वीर शिवाजी से परामर्श के पश्चात् छत्रसाल बुन्देलखण्ड आकर अपने गुरू प्राणनाथ प्रभु, उनकी शिष्या विजया, बलदिवान तथा अपने भाई अंगदराय की सहायता से सेना का संगठन करते हैं। केशवराय दुरंगी को द्वन्द्व युद्ध में पराजित करके उसकी सेना को अपनी सेना में मिला लेते हैं। छत्रसाल लगन, शौर्य और साहस से युद्ध करके बुन्देलखण्ड से मुगलों को निर्वासित करके उसे स्वतन्त्र करने में सफल होते हैं। तथा अन्त में औरंगजेब अहमद नगर में ही प्राणों को त्याग देता है।

4. स्वप्नभंगः–

प्रेमी जी ने प्रस्तुत नाटक में यह दिखाया हैं। कि दारा का स्वप्न .था कि वह साम्प्रदायिक वैमनष्य को दूर कर भारत की सभी जातियों में एकता स्थापित करेगा, परन्तु क्रूर औरंगजेब ने उसके स्वप्न को भंगकर दिया।

शाहजहॉ के दो बेटे तथा दो बेटियॉ थी। सबसे बड़े बेटे का नाम दारा था। वह हिन्दू–मुस्लिम एकता का समर्थक था। दारा से उसकी बहिन जहॉआरा विशेष स्नेह रखती हैं। दारा के ठीक विपरीत उसका भाई औरंगजेब हैं। उसका एक मात्र लक्ष्य मुस्लिम धर्म का प्रचार करना हैं इस काम में शाहजहॉ की छोटी लड़की रोशनआरा उसका मार्ग दर्शन करती है। वह दरबार की सभी घटनाओं से औरंगजेब को अवगत कराती रहती हैं।

शाहजहॉ का स्वास्थ्य खराब होने पर औरंगजेब तथा रोशनआरा इस डर से कि कही शाहजहॉ दारा को गद्दी पर न बिठादें। घेरा डाल देते है। शाहजहॉ ने औरंगजेब से घेरा उठाने के लिए कहा। औरंगजेब के मना कर देने पर दारा और औरंगजेब में युद्ध छिड़ जाता है। रोशनआरा षड़यन्त्र रचती है। वह कुछ सेनापतियों को दारा के विरूद्ध भड़काती है, जिससे वे दारा को धोखा देते है। दारा युद्ध हार जाता है। औरंगजेब दारा को अपमानित करके चिथड़े पहनाकर जूलूस के रूप में घुमाता है। अन्त में वह उसे निर्ममता पूर्वक मौत के घाट उतार देता है। हिन्दू–मुस्लिम एकता का दारा का स्वप्न औरंगजेब की धर्मान्धता के कारण चूर–चूर हो जाता है। इस स्वप्न के विषय में "प्रेमी" जी ने स्वयं ही लिखा है कि..."दारा का जो स्वप्न था वही कुछ परिष्कृत रूप में महात्मा गॉधी का भी था। और मेरे छोटे से प्राणों का वही स्वप्न है। धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश और सामाजिक एवं राजनीतिक विचारधारा और इसी प्रकार की अनेक बातें मानव को मानव का शत्रु बनाये हुए है। सबकी जड़ में व्यक्ति का स्वार्थ है। जब व्यक्तियों के संस्कार सुधरेंगे, वह स्वार्थ से छुटकारा पाकर दूसरों के सुख के लिए त्याग करने में आनन्द पायेगें तब संसार स्वर्ग बन जायेगा। मैं चाहता हूॅ हिन्दुस्तान में ही नहीं, सम्पूर्ण संसार बन जाये।"[1]

5. आहुतिः–

एक बार दिल्ली का बादशाह अपने सिपह–सालार मीर महिमा के साथ शिकार खेलने जा रहा था। रास्ते मे नलहारणोगढ़ की एक बाबड़ी पर उनको कुछ युवतियां नजंर आयी। उसने मीर महिमा से कहा कि उनमें से एक सुन्दर लड़की के पास यह समाचार पहॅुचा दे कि अलाउद्दीन उसके साथ विवाह करना चाहता है। मीर

1. स्वप्न भंग, कुछ बातें, पृ०–

महिमा इस बात का विरोध करता है। अलाउद्दीन मीर महिमा को अपने देश की सीमा से बाहर निकाल देता है तथा इस बात की घोषणा करता है कि जो भी मेरे शत्रु को अपने देश की सीमा के भीतर शरण देगा उसके घमण्ड को चूर कर दूँगा।

महाराज हम्मीर सिंह मीर महिमा को शरण देते है और रणथम्भौर ले जाते है। यह बात ज्ञात होते ही अलाउद्दीन हम्मीर को एक पत्र द्वारा सन्देश भेजता है कि यदि वे उसके शत्रु को अपने देश की सीमा से बाहर नहीं निकालते तो वह रणथम्भौर पर चढ़ाई करेगा। हम्मीर सिंह मीर महिमा को वापिस करना अपना अपमान समझते है। अलाउद्दीन रणथम्भौर पर चढ़ाई कर देता है।

भैयादूज के दिन राजकुमारी चन्द्रकला तथा महारानी देवल मीर महिमा तथा राजकुमारों को दूज का टीका लगाकर रणभूमि के लिए विदा करती है। कई मास तक युद्ध चलता है। महाराव के चाचा रणधीर सिंह को मृत्यु के पश्चात् महाराव अपनी सेना का सेनापति मीर महिमा को बनाते है और अपने दोनों राजकुमारों को उनके अधीन युद्ध के लिए भेजते हैं, सब मारे जाते है।

रणथम्भौर का कोषाध्यक्ष सुरजन सिंह धन का अभाव बता कर युद्ध समाप्त करना चाहता है, परन्तु महाराव युद्ध समाप्त करने को तैयार नहीं है। जब महाराव को विजय की कोई आशा नहीं दिखाई देती है, तब सब लोग यह निर्णय लेते है कि युद्ध में पराजित हो जाने पर स्त्रियॉं जौहर कर लेगी। यह निर्णय करके महाराव शेष राजपूतों के साथ युद्ध पर जाते है। जब सन्ध्या तक कोई समाचार नहीं आता तब स्त्रियों को अलाउद्दीन के जीतने की आशंका हो जाती है। इस कारण वे जौहर कर लेती है। उधर महाराव हम्मीर जब विजय प्राप्त करके आते है, उन्हें जब यह विदित होता है कि स्त्रियों ने जोहर कर लिया है। महाराव को बड़ा क्लेश होता है, वे छोटे राजकुमार अक्षय को गद्दी पर बिठाकर स्वयं ही इसी महायज्ञ में अपने प्राणों की आहुति दे देते हैं।

6. शतरंज के खिलाड़ीः—

शतरंज के खिलाड़ी नाटक "प्रेमी" जी ने अलाउद्दीन तथा जैसलमेर के महारावल के बीच हुए युद्ध का वर्णन किया है। यह 'मित्र' नामक नाटक का ही नवीन रूप है। जैसलमेर के महारावल का बेटा रत्नसिंह तथा अलाउद्दीन का सेनापति महबूब आपस में मित्र है। दोनों शतरंज के खिलाड़ी है। महबूब खॉं की बेटी अपने काका रत्नसेन को बहुत चाहती है। ये ही शतरंज के खिलाड़ी 'मित्र' युद्ध भूमि में एक दूसरे के विरूद्ध तलवार उठाते है। वे दोनों मित्रता को एक तरफ तथा कर्तव्य को दूसरी तरफ रखते है। एक दूसरे के विरूद्ध तलवार उठाने का कारण एक कोष है। जो अलाउद्दीन का है। उस कोष को जैसलमेर का राजकुमार रात के अंधेरे में

लूटलेता है। अलाउद्दीन को जब यह ज्ञात होता है कि उसका खजाना जैसलमेर के राजकुमार ने लूटा है, तो वह जैसलमेर पर चढ़ाई कर देता है। राजपूत बड़ी बीरता के साथ लड़कर अलाउद्दीन की सेना को नष्ट कर देते है, परन्तु कुछ देशद्रोही जैसलमेर की रसद की और युद्ध सामग्री में आग लगाकर उसे नष्ट कर देते हैं। फिर भी राजपूत धैर्यपूर्वक केसरिया बाना पहन कर युद्ध करते है। महाकाल की बहिन ताण्डवी जौहर नहीं करती है क्योंकि वह राजपूतों तथा राजपूतानियों के जौहर का लाभ उठाना चाहती है। वह देशवासियों को जाग्रत करके जैसलमेर को स्वाधीन कराना चाहती है। वह रत्नसेन को भावी सम्राट मानकर उसकी रक्षा करना चाहती है। वह रत्नसेन उनका बेटा गिरिसिंह मॉगती है। इससे पूर्व ही रत्नसेन अपने पुत्र गिरि सिंह को अपने मित्र शतरंज के खिलाड़ी को सौप चुके है। ताण्डवी इस बात की शंका व्यक्त करती है, परन्तु महबूब खॉ ताण्डवी को विश्वास दिलाता है कि वह गिरि सिंह की रक्षा करेगा, वह कहता है कि रत्नसेन ने मुझ पर विश्वास करके मेरा मार्ग बता दिया। वास्तव में मैं आज पराजित हो गया हूँ।

7. विषपानः—

इस नाटक में "प्रेमी" जी ने राजस्थान के विभिन्न वंशो के वैमस्य को दूर करने के लिए राजकुमारी कृष्णा के विषपान करने का वर्णन किया है।

आपसी संघर्ष के कारण मेवाड़ की दशा बिगड़ गई है। यहॉ तक कि मेवाड़ के महाराणा के पास अपनी बेटी के व्याह के लिए भी रुपया नहीं है। इसी कारण उनकी पत्नी मेवाड़ के चूड़ावत सरदार अजीत सिंह से ऋण के सम्बन्ध में परामर्श करती है। अजीत सिंह राजकुमारी के विवाह के लिए ऋण देने के लिए तैयार हो जाता है। यह जानते हुए भी अज़ीत सिंह विश्वास पात्र नहीं है, फिर भी उसी की इच्छा के अनुसार सगाई का टीका जोधपुर नरेश के पास भेजती है। पुरोहित से पता चलता है कि जोधपुर नरेश को अभय सिंह ने मौत के घाट उतार दिया है।

मेवाड़ का एक सरदार संग्राम सिंह अपना सामान आदि बेचकर मेवाड़ के महाराणा की लड़की के विवाह के लिए दो लाख रुपये देता है। उचित सम्मान न मिलने के कारण महाराणा का 'दीवान' भाई जबान दास मान सिंह को मेवाड़ के महाराणा के विरुद्ध भड़काता है। वह मान सिंह को बताता है कि मेवाड़ की राजकुमारी का टीका जयपुर भेज दिया गया है जो कि मान सिंह का अपमान है। मानसिंह अपने अपमान का बदला लेने के लिए जवान दास अमीर खॉ से सहायता मॉगते है, व सहायता का बचन देते है।

जबान दास, अजीत सिंह तथा अमीर खॉ महाराणा के साथ छल प्रपंच करके उनसे यह पत्र लिखवा लेते है कि उन्होंने अपनी बेटी को मृत्युदण्ड देने को

आज्ञा दी है। जवान दास पत्र तथा नंगी तलवार लेकर कृष्णा को मारने जाता है, परन्तु कृष्णा के भोलेपन के कारण उस पर वार नहीं कर पाता है। कृष्णा पत्र पढ़ लेती है। महारानी को भी पता चल जाता है कि यह पत्र षड़यन्त्र द्वारा लिखवाया गया है। महारानी कृष्णा को विषपान करने से रोकती है। परन्तु महारानी जब तक महाराणा के पास षड़यन्त्र के बारे में पूछने जाती है, इसी बीच कृष्णा विष पी लेती है।

8. उद्धारः—

इस नाटक में "प्रेमी" जी ने दिखाया है कि हम्मीर सिंह ने किस प्रकार जन—नायक बनकर मेवाड़ को स्वाधीन बनाया। हम्मीर सिंह सिसोदिया वंश के अरिसिंह के पुत्र है। उनकी मॉ उनका पालन—पोषण एक झोपड़ी में करती है तांकि वे सही जन—नायक बन सकें। जब उनकी अवस्था 20 वर्ष की है तभी गॉव की एक चमारिन लड़की की इज्जत की रक्षा के लिए विदेशी सैनिकों से शौर्य प्रदर्शन करते है। उसी दिन हम्मीर सिंह के काका अभय सिंह उनकी बींसवीं वर्षगांठ पर उन्हें युवराज का पद उपहार स्वरूप प्रदान करते है।

एक देश द्रोही मालदेव अपनी व्यक्तिगत लालसा की पूर्ति के लिए मेवाड़ की स्वाधीनता को विदेशियों के हाथ बेच देता है। इस काम में मुंजबलीचा उसका साथ देता है। मुजबलीचा अजय सिंह को घायल कर देता है। हम्मीर अपने पिता का बदला चुकाने के लिए मुजबलीचा का सिर काटकर अज़य सिंह के चरणों में चढ़ाते है। महाराणा हम्मीर को शत्रु के रक्त से टीका लगाकर युवराज घोषित करते है।

मालदेव का एक सामन्त भूदेव अजय सिंह के पुत्र सुजान सिंह को पिता के विरुद्ध भड़काता है।

मालदेव को मेवाड़ का एक पुराना कर्मचारी महाराणा के समर्थकों में फूट डालने के लिए यह उपाय बताता है कि वे अपनी विधवा पुत्री का विवाह हम्मीर सिंह से कर दें। हम्मीर सिंह इस प्रस्ताव को मानकर कमला से विवाह करते है। इस विवाह से सभी हम्मीर सिंह से विरुद्ध हो जाते है। उधर कमला अपने नवजात शिशु को लेकर पिता का षड़यन्त्र जानने के लिए जाती है, परन्तु उसे भी वहॉ बन्दी बना लिया जाता है। इधर मालदेव तथा भूपति छल—प्रपंच से हम्मीर सिंह को चित्तौडगढ़ में बुलाकर उन पर हमला करते है। हम्मीर को विजयी बनाने में सुजान सिंह उसका साथ देता है। हम्मीर कमला को बन्दीगृह से छुड़ा कर जाते है। मालदेव अपने किये पर पश्चाताप करता है और हम्मीर सिंह से कहता है कि उसने मेवाड़ का उद्धार नहीं किया, अपितु मालदेव का भी उद्धार किया है।

9. शपथ:–

इस नाटक में लेखक ने दिखाया है कि यशोधर्मन (विष्णुबर्द्धन) किस प्रकार जन–नायक बनकर हूणों को परास्त करता है। विष्णुबर्द्धन के पिता एक मालव सैनिक है वे एरण के युद्ध के मैदान में खेत रहते हैं। अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए वे अपनी असि की शपथ खाकर कहते हैं कि वे तब तक अपनी असि म्यान में नहीं रखेगे कि जब तक बर्बर हूणों को वे भारत से बाहर नहीं कर देंगे। विष्णुधर्मन की माँ जब अपने पति की मृत्यु के विषय मे सुनती है तो वह अविलम्ब ही सती हो जाती है। मरने के पहले वह एक प्रताडित मालव कन्या सुहासिनी को दशपुर मे शरण देती है। सुहासिनी विष्णुधर्मन को वर–माला पहनाकर उसको विश्वास दिलाती है कि वह उसके मार्ग में बाधा न बनकर गति प्रदान करेगी। सुहासिनी मालव के राजा (जो हूणों के अधीन है) की बहिन है धन्य विष्णु देशद्रोह करके मालव प्रदेश को हूणों के अधिकार में सौंप देता है।

भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए विष्णुधर्मन हूणों के विरुद्ध प्रत्येक सम्राट को नियन्त्रण देता है। कंचनी जो एक नाचने वाली है, भी इस युद्ध में बहुत काम करती है। हूण राजा मिहिरकुल अपना सर्वस्व कंचनी को देने के लिए तैयार है। विष्णुधर्मन का मित्र बत्स कंचनी के द्वारा मिहिरकुल के पिता की हत्या कर देता है।

इसके बाद मिहिरकुल की सेना एकाएक रात को हमला करती है। विष्णुधर्मन संकेत मात्र में अपनी सेना को चक्रव्यूह मे संगठित कर लेते है। शत्रु को व्यूह से टकरा–टकरा कर उनकी सेना उत्तर की ओर भाग जाती है।

सुहासिनी अपने देशद्रोही भाई धन्यविष्णु के प्राण युद्ध के मैदान में लेकर शान्ति होती है। विष्णुधर्मन के यश को युग–युग तक प्रकाशित रखने के लिए एक कीर्ति स्तम्भ निर्माण किया जाता है। जिसपर बत्स भट्ट एक प्रशस्ति अंकित करवा देते है। स्वाधीनता प्राप्ति के उपलक्ष्य में एक उत्सव का आयोजन होता है और जैनेन्द्र, यशोधर्मन, विष्णुधर्मन की जय के साथ नाटक का अन्त हो जाता है।

10. प्रकाश स्तम्भ:–

प्रस्तुत नाटक प्रकाश स्तम्भ मेवाड़ के बाप्पारावल के प्रारम्भिक जीवन पर आधारित है, लेखक ने बाप्पा के उन कार्यो तथा विचारो को चित्रित किया है जो आप ही हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर सकते है।

बाप्पारावल का जन्म राजघराने में होता है, परन्तु उनकी माँ उनका पालन–पोषण ग्रामीण वातावरण में करती है, जिससे कि वे हर एक प्रकार के मनुष्य से मिलकर सही जन–नायक बन सकें। बाप्पारावल नित्य ही नदी के किनारे गायों का चराने जाते थे, तथा अलगोजा बजाया करते थे।

एक दिन बाप्पारावल को नदी के किनारे नागदा नरेश की पुत्री मिलती है। जिससे वे कहते है कि उसका विवाह बचपन में मेरे साथ हुआ है। वे पद्मा को इस बात की याद दिलाते है कि कन्या का विवाह एक ही बार होता है, पद्मा इस बात से बहुत चिन्तित हो जाती है तथा अन्त में कहती है कि उसकी पत्नी बनने को तैयार है यदि वे बाहुबल से राज्य स्थापित करें। पद्मा के पिता को जब इस बात का पता चलता है, तो वे बाप्पा से द्वन्द्व युद्ध करते हैं, जिसमें नागदा नरेश हार जाते है किन्तु बाप्पा क्षत्रिय धर्म के अनुसार उनको छोड़ देते है।

बाप्पा जब अपने गुरू हारीत के पास जाते है। वहॉ उनकी मॉ भी है। पद्मा तथा उनकी सखियॉ चम्पा आदि भी बाप्पा के साथ ही हारीत के आश्रम में पहुँच जाती है। एक भील सैनिक नागदा नरेश को भी आश्रम में लाता है। हारीत नागदा नरेश को बन्धन से मुक्त कराकर अपनी स्थिति से अवगत कराते है। हारीत नागदा नरेश से कहते है कि मानसिंह का राजमुकुट बाप्पा के सिर पर रखना है क्योंकि उसने सिन्ध के राजा जुन्नैद की अधीनता स्वीकार करने का निश्चय किया है। मानसिंह बाप्पा को अपनी सेना का सेनापति बनाता है। इससे बाप्पा का काम और भी आसान हो जाता है। वे मानसिंह को बन्दी बनाकर हारीत के पास लाते है, तभी चम्पा, पद्मा और बाप्पा की शादी के लिए कहती है, तो बाप्पा मना कर देते है। वे कहते हैं कि मैं विदेशी कन्या हमीदा से विवाह करूँगा। उनका हमीदा से विवाह हो जाता है।

11. भग्न प्राचीरः–

भग्न प्राचीर नाटक में लेखक ने इतिहास प्रसिद्ध महाराणा संग्राम सिंह के यशस्वी जीवन के अन्तिम परिच्छेद का निरूपण किया है, जिससे वे सम्पूर्ण राजपूत शक्तियों को एकत्र करके बाबर के साथ युद्ध करते है। सीकरी के युद्ध में वे हार जाते है तथा फिर भी युद्ध के लिए तैयार रहते है। अन्त में युद्ध से ऊबे हुए उनके ही सरदार उन्हें विष देकर प्राणान्त कर देते हैं।

12. कीर्ति स्तम्भः–

लेखक ने कीर्ति स्तम्भ नाटक में महाराणा रायमल के पुत्रों में राजमुकुट के कारण हुए गृह–युद्ध का वर्णन किया है।

महाराणा कुम्भा के काल में मेवाड़ राज्य की कीर्ति और शक्ति चरमसीमा पर पहुँच गई थी। कुम्भा ने मालवा के सुल्तान गुजरात के बादशाह को पराजित किया। उन्होंने अपने काल में वीरता के साथ ही साथ साहित्य और ललित कलाओं में भी वृद्धि की ऐसे श्रेष्ठ पुरुष के प्राणों का अन्त भी मुकुट के मोह में उनके बड़े पुत्र ऊदा जी द्वारा किया गया और ऊदा जी ने राजमुकुट को अपने मस्तक पर

धारण किया। तभी कुम्भा के अनुज रायमल ने सामन्तों की सहायता से राजमुकुट धारण किया। ऊदा जी शान्त होने वाला व्यक्ति नहीं था। उसने अपनी पुत्री का विवाह लोदी बादशाह से करने का वचन देकर साहयता मॉगी तथा ऊदा जी का पुत्र तथा पुत्री राजमल का साथ देते है। दिल्ली में सेना पराजित हो जाती है और ऊदाजी रायमल के तीनों पुत्रों– संग्राम सिंह, पृथ्वीराज और जयमल में भी युवराज पद पाने के चित्रण नाटक में हुआ है।

13. विदाः–

नाटक विदा में लेखक ने यह चित्रित किया है कि औरंगजेब अपनी राज–सत्ता को इस्लाम–धर्म के प्रचार का साधन मानता है तथा हिन्दू–धर्म पर जो आघात किये उसके इन अत्याचारों का विरोध उसके पुत्र तथा पुत्री करते है।

जेबुन्निसा ने अपने पिता को समझाया कि वह उसके संगीत का विरोध न करें तथा जनता के हृदय पर राज्य करें। वह कहती है कि आक्रामक नीति से राज्य का विस्तार हो जाता है, लेकिन वह अन्दर से खोखला हो जाता है। परन्तु औरंगजेब कहता है कि– मैंने तो तलवार की ताकत से सबका मुँह बन्द कर रखा है। जोधपुर के राजा जसबन्त सिंह का सेनापति दुर्गादास औरंगजेब से प्रार्थना करता है कि वह अमर सिंह के पोते को मारवाड़ की गद्‌दी से हटा कर जसबन्त सिंह के नवजात शिशु को मारवाड़ की गद्‌दी का स्वामी घोषित करें। औरंगजेब दुर्गादास की प्रार्थना को ठुकरा देता है। औरंगजेब चाहता है कि वह राजकुमार अजित को दिल्ली में रखकर इस्लाम धर्म की शिक्षा दे तथा मुसलमान बनायें। दुर्गादास औरंगजेब की इस कूटनीति को समझ जाते हैं और राजकुमार अजित को कासिम खॉ के साथ फलों की टोकरी में रखकर दिल्ली से निकलवा देते है। स्त्रियां जौहर पालन करती है तथा महारानी भी दिल्ली से भाग निकलती है।

औरंगजेब को जब पता चलता है तो वह क्रोध में पागल हो जाता है और सारे राजस्थान में युद्ध की ज्वाला भड़का देता है।

औरंगजेब को सभी समझाते हैं कि वह अपनी इस नीति को बदल दें। यहॉ तक कि उसकी उदयपुरी बेगम भी विद्रोह कर देती है। यह उदयपुरी बेगम दाराशिकोह की बॉदी थी। वह औरंगजेब को सच्चे हृदय से प्यार नहीं करती थी वरन् दाराशिकोह का बदला लेना चाहती थी।

औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा तथा पुत्र अकबर उसका खुले आम विद्रोह करते है, वे लोग विद्रोह की आवाज उठाते है। पुत्री को तो औरंगजेब बन्दी कर देता है, तथा पुत्र अकबर को मारवाड़ियों के विरुद्ध लड़ने को भेजता है, लेकिन अकबर मारवाड़ियों से जा मिलता है।

अकबर शम्भाजी से सहायता माँगता है। वह सहायता नहीं करता तो अकबर निराश हो जाता है। वह दुर्गादास जी से कहता है कि यद्यपि उसे भारत से अनन्य प्रेम है, किन्तु उसकी आशाएँ समाप्त हो चुकीं हैं। इस कारण वह यहाँ रहना नहीं चाहता है तथा अन्त में दुर्गादास जी से कहता है कि उसके बाल–बच्चों की देखभाल करें क्योंकि वे अनाथ है। दुर्गादास जी अकबर को धैर्य बँधाते हुए कहते है कि बहादुर रोते नहीं है। काली रात के बाद सूर्योदय अवश्य होता है।

14. संरक्षक:–

संरक्षक नाटक में प्रेमी जी ने चित्रित किया है, कि जालिम सिंह नाम के झाला राजपूत को महाराव उम्मीद सिंह का संरक्षक बना गये थे। किन्तु माद्योसिंह जो जालिम सिंह का उत्तराधिकारी है उसकी संरक्षक पद पर कार्य करने के लिए महाराव उम्मीद सिंह के देहान्त के बाद उनके उत्तराधिकारी किशोर सिंह ने इन्कार कर दिया। नाटक में संरक्षक पद के लिए हुए संघर्ष का ही वर्णन है। महाराव उम्मीद सिंह के बाद उनके उत्तराधिकारी किशोर जब महाराव हुए तो उन्होंने संरक्षक का पद हटाकर पूर्ण सत्ता अपने हाथ में ही लेनी चाही थी। जालिम सिंह का दासी पुत्र गोबर्धन जो माधोसिंह से अधिक योग्य और महत्वाकांक्षी था, उसने भी इस बात का समर्थन किया। इधर माधवराय के छोटे भाई राजकुमार पृथ्वी सिंह भी हाड़ाराज गद्दी पर झालाओं के आतंक को समाप्त कर देने के लिए तैयार थे।

जालिम सिंह ने अंग्रेजो को अपना मित्र बनाकर अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना उचित समझा और महाराव उम्मीद सिंह को ऊँच–नीच समझाकर अंग्रेजों से संधि करने के लिए तैयार किया। जिस सन्धि पत्र पर महाराव ने 26 दिसम्बर,1917 के दिन हस्ताक्षर किये, उसमे अनेक शर्ते थी। इस सन्धि पत्र में जालिम सिंह और माधोसिंह के लिए संरक्षक पद दिया जायेगा और उन्हें राज्य को शासन चलाने का अधिकार होगा, ऐसी कोई शर्त नहीं थी। बाद में अंग्रेजों ने चाहा कि इस सन्धि पत्र में यह भी शर्त रहे किन्तु इस पूर्ति वाले सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर होने से पहले महाराव किशोर सिंह ने इसे स्वीकार करने से इन्कार किया था तथा सन्धि पत्र की दशवी धारा के अनुसार अपने राज्य में पूर्ण प्रभुसत्ता की उन्होंने माँग की। अंग्रेजों ने जालिम सिंह और माधोसिह का पक्ष लिया। कोटा के हाड़ओं ने इस सम्बन्ध में अंग्रेजो से जो वीरतापूर्वक संघर्ष किया, वही इस नाटक में चित्रित है।

15. संवत प्रवर्तन:–

संवत प्रवर्तन नाटक विक्रमादित्य के जीवन पर आधारित है। इसमे शकों का अधिकार मालव और आकर प्रदेश पर हो गया है। जिसको स्वतन्त्र कराने के

लिए जनता–जनार्दन में अपूर्व उत्साह और उमंग है तथा विक्रमादित्य का देश को स्वतन्त्र कराने में पूर्ण योग रहता है।

कथा का प्रारम्भ विक्रम बेताल और सरस्वती की बातचीत से आरम्भ होता है। सरस्वती विक्रम को अपना ही पुत्र मानती है। सरस्वती कभी–कभी विक्रम के पूर्व परिचित जीवन के सम्बन्ध में बाते करती है। सरस्वती जो कि आचार्य कालक की बहिन है, एक साध्वी स्त्री है। लेकिन उसके रूप और सौन्दर्य पर मुग्ध होकर आकर नरेश गर्दभिल्ल दर्पण उसे अपनी रानी बनाना चाहता है। आचार्य कालक गर्दभिल्ल दपर्ण को समझाते है, लेकिन कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। आचार्य कालक अपनी साध्वी बहिन को गर्दभिल्ल दर्पण के चंगल से छुड़ाने के लिए शकों को आमन्त्रित करते है। शकों का आकर प्रदेश तथा मालवा प्रदेश पर अधिकार हो जाता है। इससे पूर्ण भी मथुरा, सौराष्ट्र आदि पर शकों का आधिपत्य है। इधर सरस्वती को अपने पुत्र विक्रमादित्य को सौंपते हुए महारानी ने कहा कि– "मैं भी आज महाराज के साथ रास्ता लूँगी बहिन! यह कुल का दीप मैं तुम्हें सौंप जाती हूँ, इसकी तुम रक्षा करना।"[1]

विक्रम की माँ सरस्वती को बताती है कि बहिन तुम विक्रम को ये विदित न होने देना कि तुम राजा के पुत्र हो। लेकिन जब विक्रम होश सम्भाले तब कहना कि तुम्हें अपने पिता का प्रतिशोध लेना है।

विक्रम, बेताल, भंतृहरि एवं सरस्वती देश को स्वाधीन कराने के लिए छद्म वेश में घूमते फिरते रहते है।

आचार्य कालक को शक क्षत्रक नहपाण नगर श्रेष्ठियों के पास धन की मांग के लिए भेजते है। आचार्य कालक से शक श्त्रप द्वारा पूछे जाने पर आचार्य कालक ने कहा था कि जितना उनसे धन की मांग की गयी है, उतना वे उपलब्ध नही करा सकते। इस पर शंको और आचार्य कालक मे अनबन हो जाती है। आचार्य कालक निराश होकर निकल पड़ते है।

इधर सरस्वती, विक्रम, बेताल बैठे है कि किसी की करुण पुकार सुनाई देती है। विकम आवाज सुनकर वहाँ जाते है। शक सैनिक एक मालवा कन्या जिसका नाम मलयावती है, उसे लेना चाहते है। सैनिकों को घायल कर विक्रम मलयावती को ले आता है। वह भी सरस्वती के कहने पर उनके ही साथ हो जाती है। ये चारों ही लकड़ियों के गट्ठर लेकर आते है। आचार्य कालक के मिल जाने पर सरस्वती से वार्तालाप होता है। तदुपरान्त सभा का आयोजन होता है। कुछ लोगों को आचार्य कालक पर संदेह है कि ऐसे देश द्रोही का सभा में उपस्थित होना ठीक नहीं लेकिन विक्रम आचार्य कालक की तरफ से क्षमा मांगता है। सभा की कार्यवाही शुरू होती है।

---

1. संवत् प्रवर्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–47

विक्रम सभी वर्गों के लोगों को अलग-अलग कार्य सौंपता है। लुहारों को अस्त्र-शस्त्रों का तथा अन्य वर्ग श्रेष्ठ लोगों को अन्यान्य कार्य सौपता है। वे सभी प्रतिज्ञा लेते हैं कि देश को स्वाधीन कराने के लिए हम सबका पूरा सहयोग रहेगा। उसके बाद सभी लोगों (जनता) के सहयोग से विजय लक्ष्मी प्राप्त होती है।

सभी लोग विक्रम को ही राजा बनाना चाहते है। लेकिन विक्रम राजा बनना स्वीकार नहीं करता है। भर्तृहरि को वे राजा बनाना चाहते हैं और कहते है कि मैं तुम्हारा अग्रामात्य बनकर राज्य का कार्य देखूँगा। तदोपरान्त भर्तृहरि का राजतिलक होता है, सरस्वती भर्तृहरि के तिलक करती है। भर्तृहरि की जय के नारे लगते है। लेकिन विक्रमादित्य का साथी चन्द्र कहता है कि विक्रमादित्य ही सबके हृदय सम्राट है। इसी की यादगार के लिए विक्रम सम्वत् का प्रवर्त्तन होना चाहिए। सभी इस बात से सहमत है। तदोपरान्त मलयावती सरस्वती की आज्ञा से विक्रम को माला पहना देती है। भर्तृहरि कहते है कि इसी को मेरी आज्ञा से वरमाला समझा जाये।

16. सॉपों की सृष्टि:-

सॉपों की सृष्टि नामक नाटक अलाउद्दीन के अन्तिम दिनों से सम्बन्धित है। अलाउद्दीन ने सम्पूर्ण जीवन तलवार के बल पर ही राज्य किया तथा राज्य का विस्तार भी किया।

अलाउद्दीन गुजरात पर आक्रमण करके वहॉ के महाराजा कर्ण सिंह की पत्नी कमलावती को अपने रनिवास में ले आता है। कमलावती अलाउद्दीन से प्रतिशोध लेने के लिए कालान्तर में अपनी पुत्री देवल को भी रनिवास में बुलाती है। मलिक काफूर पर अलाउद्दीन का अटूट विश्वास है, जिसको कमलावती अलाउद्दीन के विरुद्ध भड़काती है, लेकिन मलिक काफूर अपने स्वामी के साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नहीं होता है। परन्तु अन्त में एक दूसरे से राज्य छीन कर राजा बन जाने की पुरानी परम्परा को अपनाता है। जिसको जलालुद्दीन और अलालुद्दीन ने अपनाया था। जलालुद्दीन गुलामवंश के अन्तिम सुल्तान से राज्य छीनकर दिल्ली का राजा बना था तथा अलाउद्दीन ने भी अपने चाचा का वध करके दिल्ली का सिंहासन पाया था।

अलाउद्दीन का बेटा खिज्र खॉ कमलावती की पुत्री देवल को चाहता है। देवल उसके साथ विवाह न करके जीवन भर साथ देने का बचन देती है। इस पर खिज्र खॉ की मॉ नाराज होती है क्योंकि खिज्र खॉ की पहली पत्नी उसके मामा की लड़की है।

उधर मलिक काफूर अलाउद्दीन की बीमारी में अलाउद्दीन को मारकर उनके बेटों पर अत्याचार करता है। मलिक काफूर जब मुबारक शाह को बन्दी बनाकर

आखें निकलवाने के लिए भेजता है तो मुबारक शाह उन सिपाहियों को काफूर के विरुद्ध भड़काता है और उन सिपाहियों के विवेक को जगाता है। अन्त में वही सिपाही काफूर का बध कर देते है। इस प्रकार जिन कर्मरूपी सांपों की सृष्टि की थी वे ही नाश का कारण बनते है।

17. आन का मान:—

यह नाटक मारवाड़ के राठौर वंश के एक सेवक दुर्गादास से सम्बन्धित है। इसमें दिखाया गया है कि दुर्गादास जीवन के अन्तिम क्षण तक आन का मान रखने के लिए संघर्षरत रहे तथा इस आन का मान रखने के लिए उन्हें कितने कष्टों को सहन करना पड़ा।

औरंगजेब का पुत्र अकबर जब विद्रोही बनने के कारण ईरान चला जाता है। जाते समय वह अपने छोटे शिशुओं, सफीयतुन्निसा तथा बुलन्द अख्तर को दुर्गादास को सोपता है। दुर्गादास अकबर की धरोहर को मारवाड़ में पालते है। मुस्लिम संस्कृति के अनुसार उसकी शिक्षा—दीक्षा कराते है। मारवाड़ के महाराज अजीत सिंह जो कि स्वर्गीय जसबन्त सिंह जी के पुत्र है, का लालन—पालन दुर्गादास ही करते है। अजीत सिंह तथा सफीयतुन्निसा एक ही आयु के है।

औरंगजेब अकबर की पुत्री सफीयतुन्निसा को प्राप्त करने की चिन्ता लगती है, क्योंकि उसे यह भय हो जाता है कि कहीं सफीयतुन्निसा तथा अजीत सिंह में प्रेम सम्बन्ध स्थापित न हो जाय। औरंगजेब, दुर्गादास को बुलाकर अपने बेटे के बच्चों की मॉग करता है। इसके लिए वह दुर्गादास को धनराशि तथा जागीर देने के लिए तैयार है। दुर्गादास उसकी धनराशि आदि को ठुकरा देते है और कहते है कि किसी लोभ के बिना औरंगजेब की धरोहर लौटा देगें।

दुर्गादास जी यह बात अजीत सिंह को बताते है तो अजीत सिंह दुर्गादास का मस्तक काटने के लिए तैयार हो जाता है। बुलन्दअख्तर अपने बाप को देखे बिना जोने के लिए तैयार नहीं होता है। दुर्गादास जी जिस अजीत सिंह के लिए वर्षों से संघर्षरत रहे उसी अजीत सिंह का कोपभाजक बनकर भी सफीयतुन्निसा को औरंगजेब के पास पहुँचा देते है। अजीत सिंह दुर्गादास को मारवाड़ से निष्कासित कर देता है। सर्वस्व देश पर न्यौछावर करने वाले दुर्गादास मारवाड़ को अन्तिम नमस्कार कर चल देते है।

18. शीशदान:—

शीशदान नाटक सन् 1857 के स्वाधीनता संग्राम से सम्बन्धित है। इसमें लेखक ने दिखाया है कि अंग्रेजो को निकालने के लिए भारतीयों को संघर्ष करना

पड़ा। इस संघर्ष को एक प्रमुख सेनानायक तांत्या टोपे को केन्द्र बनाकर ही नाटक का सृजन हुआ है।

अजीजन एक वेश्या है। वह भी स्वाधीनता संग्राम में भाग लेती है। उसके पास स्वाधीनता संग्राम मे भाग लेने वाले सेनानायक अक्सर आया करते है। एक दिन तात्या भी शमसुद्दीन के साथ अजीजन के पास जाते है। अजीजन से तात्या को पता चलता है कि वास्तव में वह एक क्षत्रिय कन्या है जिसकी इज्जत अंग्रेजों ने लूटी थी। अपने सतीत्व की रक्षा न करने पाने के कारण घर वाले उसे शरण नहीं देते है। इस प्रकार वह नाचने गाने वाली बन जाती है। अजीजन तात्या को यह भी बताती है कि वह अंग्रेजों से प्रतिशोध लेना चाहती है। तात्या उसे अपनी मुंह बोली बहन बना लेते है। तात्या अजीजन को समझाते है कि वह उनके स्वाधीनता संग्राम में सहायता प्रदान कर सकती है।

तात्या टोपे बाजीराव पेशवा द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब से अजीजन की प्रशंसा करते है। नाना साहब अजीजन से मिलते है और अजीजन से कहते है कि वह अंग्रेजों के सामने विष-कन्या का नाटक खेले। अजीजन नाना साहब की आज्ञा का पालन करती है तथा स्त्रियों की सेना संगठित करती है।

कानपुर में संग्राम छिड़ जाता है। इसी बीच नील नामक अंग्रेजी फौजी अधिकारी कानपुर में अंग्रेजों की रक्षा हेतु आता है। वह सतीचोरा में हत्याकाण्ड मचा देता है। निर्दोष, निःशस्त्र भोले-भाले बच्चों को मौत के घाट उतार कर उनके शवों को पेड़ों पर लटका देता है। स्त्रियों का सतीत्व लूटकर उनकी हत्या करता है।

इस काण्ड से अजीजन के हृदय में प्रतिहिंसा की आग उठती है। वह इसका बदला बीबीघर के हत्याकाण्ड से लेती है। बीबीघर में अंग्रेज बच्चे तथा स्त्रियाँ बन्दी है। अजीजन उन सब को मौत के घाट उतार कर सांस लेती है। इस काण्ड से नाना साहब नाराज हो जाते है। अजीजन इसके लिए नानासाहब से क्षमा मांगती है तथा नानासाहब उसे क्षमा कर देते है।

नाना साहब ओंग और फतेहपुर की पराजयों का बदला लेने के लिए सेना का नेतृत्व करते है। परन्तु एक देशद्रोही के अंग्रेजों से मिलजाने से कानपुर में भारतीयों की पराजय होती है, जिससे नाना साहब दुःखी होकर कानपुर से बिठूर आ जाते है, बिठूर में अपनी पूरी सम्मत्ति को छोड़कर अपने परिवार समेत नाव पर चले जाते है। चलते समय अपनी तलवार तात्या को पकड़ा देते है।

नाना साहब के चले जाने के बाद तात्या टोपे सेना का नेतृत्व करके कानपुर से अंग्रेजों को निकाल देते है। कानपुर की विजय के पश्चात नाना साहब भी लौट आते है। तात्या नाना साहब की तलवार लौटाते है, परन्तु नाना साहब तात्या टोपे से कहते है यह तलवार तो तुम्हारे ही हाथ में सुशोभित होती है क्योंकि आपने स्वाधीनता की बाजी को फिर जीत लिया है।

जब अंग्रेज झॉसी पर आक्रमण करते है, तो झांसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई तात्याटोपे से सहायता मॉगती है। झॉसी पहुँचकर तात्या झॉसी की रक्षा नहीं कर पाते इसलिए वे बहुत दुःखी होते है।

अन्त में तात्या जब अवध आदि को भी अंग्रेजों से मुक्त करने का प्रयत्न करते है, परन्तु मानसिंह तात्या को धोखा देकर पकड़वा देता है। यह कार्य मानसिंह लोभवश करते है क्योंकि इनके बदले में वे मानसिंह को पुरस्कार देने का वचन दे चुके है।

19. भाई–भाई:–

भाई–भाई नाटक में मेवाड़ के वीर चूड़ाजी के चरित्र को उभारा है साथ ही रणमल जैसे स्वार्थी तथा सत्तालोलुप व्यक्ति किस प्रकार भाई–भाई में फूट डालते है। मनुष्य की स्वार्थ लोलुपता ही सामाजिक, पारिवारिक राजनीति और आर्थिक विवादों का कारण बनती है।

जोधपुर नरेश रणमल अपनी पुत्री के विवाह का टीका मेवाड़ के महाराणा केपुत्र के लिए भेजते है, परन्तु चूड़ा के पिता, महाराणा स्वयं अपने लिए इस टीके के प्रति लालसा प्रकट करते है। इस पर चूड़ा जी यह निश्चय कर लेते है कि अब रणमल की लड़की सूर्य कुमारी चूड़ाजी की मॉ ही बन सकती है। इस पर रणमल क्रोधित होकर कहता है कि चूड़ाजी के बदले इस कन्या का भावी पुत्र ही मेवाड़ का महाराणा होगा। चूड़ाजी को मेवाड़ से निष्कासित कर दिया जाता है। मेवाड़ को छोड़कर चूड़ाजी मालवा के सुल्तान की शरण में जाते है। मेवाड़ के महाराणा की मृत्यु के पश्चात् रणमल मेवाड़ को पूर्णरूप से हस्तगत करने के लिए अपने मार्ग के कंटको को साफ करने में लग जाते है। चूड़ाजी को तो मेवाड़ से पहले ही निकाल दिया था। अपनी पुत्री सूर्य कुमारी के लड़के मोकल की हत्या करने में रणमल सफल नहीं होता है, परन्तु चूड़ाजी के छोटे भाई रघुजी की हत्या सोते समय कर देता है। शुरू में किरणमयी जो कि रघुजी की मॉ है, अपने पुत्र की हत्या का आरोप सूर्य कुमारी पर लगाती है, परन्तु अन्त में उसको पता चला जाता है, कि सारा षड़यन्त्र रणमल द्वारा रचा गया है। इस कारण दोनों ही रानियॉ प्रेम से रहने लगती है। रणमल चूड़ाजी पर दोषारोपण करने के लिए इस बात का झूठा प्रचार करता है कि सब हत्यायें तथा षड़यन्त्र चूड़ाजी कराता है क्योंकि वह मेवाड़ में सिंहासनारूढ़ होना चाहता है। जब रणमल मोकल की हत्या का दोबारा प्रयास करता है तो मेवाड़ की धाय चमेली मोकल को मेवाड़ से निकाल कर चूड़ाजी के पास मालवा पहुँचा देती है और चूड़ाजी को मेवाड़ की दयनीय स्थिति से परिचित कराती है। वह रघुजी की हत्या के सम्बन्ध में भी चूड़ाजी को बताती है। इधर कोमल की मॉ अपने बेटे के गायब होने पर अपने बाप

रणमल पर सन्देह करने लगती है। चूड़ाजी देश की इन परिस्थितियों को सुनकर मोकल को लेकर मेवाड़ लौट आते है। दोनों माताऐं चिन्तित हो जाती हैं कि कहीं रणमल चूड़ाजी की हत्या न कर दे।

चूड़ाजी राजमाताओं को बताते है कि वे अकेले नहीं है, अपितु वे अपने साथ रणमल से युद्ध करने के लिए भील–सेना तथा मालवा के सुल्तान को भी लाये है।

इतनें में चमेली आकर यह सन्देश देती है कि उसने रणमल को घायल कर दिया है, क्योंकि वह चमेली से अपने दैहित्र तथा पुत्री की हत्या कराना चाहते थे। वह चूड़ाजी से कहती है कि अब रणमल में तलवार पकड़ने की शक्ति नहीं रही है। रणमल स्वयं अपने अपराधों की क्षमा मॉगता है।

मालवा का सुल्तान तथा भील सैनिक अंजला, मारवाड़ के युवराज को बन्दी बनाकर लाते है, परन्तु चूड़ाजी युवराज को मुक्त कर देते है। वे कहतें है कि आज मेवाड़ में नवप्रभात उदय हुआ है। सभी मुक्त है कोई भी किसी का शत्रु नहीं है, भाई–भाई है। अन्त में वे मोकल के सिर पर मेवाड़ का राजमुकुट रखते है।

20. रक्तदानः–

प्रस्तुत नाटक में प्रेमी जी ने दिखाया है कि अंग्रेजो को देश से बाहर निकालने के लिए जो 1857 में क्रान्ति हुई थी उस क्रान्ति ने बहादुरशाह 'जफर' का क्या योगदान रहा।

क्रान्तिकारियों द्वारा योजना बनाई जाती है, कि 31 मई को क्रान्ति आरम्भ होगी। मेरठ की जनता बहादुरशाह 'जफर' को इस क्रान्ति का नेतृत्व सम्भालने के लिए कहती है। शुरू में तो बहादुर शाह मना करते है, परन्तु अन्त में अपने देश की खातिर क्रान्ति का नेतृत्व सम्भालकर 81 वर्ष की आयु में भी अद्भुत कार्य–क्षमता और प्रबन्ध पटुता को परिचय देते है।

बहादुर शाह अपने बेटों को जो कि अंग्रेजों की कठपुतलियॉ बन चुके थे, समझा–बुझाकर धीरे–धीरे उनके विरुद्ध कर लेते है। बहादुर शाह को अपने बेटों से यह पता चल जाता है कि भारतीय विद्रोहियों ने विदेशी बच्चों तथा स्त्रियों पर अत्याचार किये है। इससे सम्राट दुःखी होते है तथा इस प्रकार के अत्याचार फिर नहीं होने देते। दो देशद्रोही मिर्जाइलाही बख्श तथा एहसानुल्ला खॉ, जफर की बीबी जीनत महल को अपनीतरफ मिला लेते है, ताकि उससे बदला ले सकें। क्योंकि जीनत महल ने इलाहीबख्श के दामाद का बध करबाया था। बध इस लिए करबाया था कि वह अपने बेटों को बलीअहद बनाना चाहती थी।

जीनत महल इलाहीबख्श का षड़यन्त्र न समझ कर उसकी बातों में आकर अपने पति के विरुद्ध हो जाती है। और अपने पति से कहती है कि क्रान्ति समाप्त करदे। क्योंकि अंग्रेज उसके छोटे बेटे को अलीबहद बनाने के लिए तैयार है। इस पर भी अपने बेटे के लिए बहादुरशाह देश के प्रति विश्वासघात नहीं करते।

जब बाहादुरशाह बरेली का नेतृत्व एक रुहेल सरदार बख्तखॉ को सौपते हैं तो उनकी पत्नी तथा कुछ और लोग बहादुर शाह के विरुद्ध हो जाते है। इधर इलाहीबख्श, एहसानुल्ला खॉ तथा अन्य देशद्रोही शाहजहॉ को भी बख्तखॉ के विरुद्ध भड़का देते है। शुरू में बख्तखॉ, एहसानुल्ला खॉ व इलाही बख्श को बन्दी बनाने की सोचते है, परन्तु ऐसा नहीं कर पाते।

बहादुरशाह जफर के पास बख्तखॉ आते है और उन्हें ये सुझाव देते है कि वे मेरे साथ दिल्ली चले जिससे सेना में आत्मविश्वास आज़ावे, परन्तु बहादुरशाह नही जाते है। दूसरे दिन बख्त खॉ बहादुरशाह को लेने आते है। तो वहॉ उनको पंता चल जाता है कि इलाहीबख्श तथा एहसानुल्ला खॉ के षड़यन्त्र द्वारा अंग्रेजों ने बहादुरशाह को बन्दी बना लिया है। बहादुरशाह को पता चलता है कि अब मुगल साम्राज्य अन्तिम सॉसे ले रहा है तो वे अपनी दाड़ी में से पॉच बाल उखाड़ कर शाह साहस को हज़रत निजामुद्दीन में रखने को देते हैं। इसके बाद वे हुमायूॅ के मकबरे के पास पहॅुचते हैं तो उनके बेटे व जीनत महल भी उनके साथ हैं।

इधर देशद्रोही एहसानुल्ला और इलाही बख्श अंग्रेजों को बहादुर शाह का कार्यक्रम पहले ही ज्ञात करा चुके हैं। अंग्रेज वहीं बहादुर शाह को बन्दी बना लेते हैं।

21. बन्धु–मिलन:–

बन्धु–मिलन में प्रेमी जी ने राणा प्रताप और उनके अनुज शक्ति सिंह का संघर्ष और पुनर्मिलन को ही नाटक का विषय बनाया है। शक्ति सिंह स्वयं महाराणा बनना चाहता है लेकिन देश की जो भलाई करेगा, पराधीनता से छुटकारा दिलायेगा वही इस राज्य सिंहासन पर बैठेगा। राणाप्रताप इन बातों के लिए संकल्पबद्ध होते है। वे राज्य को स्वतंत्र कराने में सफल होते है। शक्ति सिंह और महाराण प्रताप का पुनः मिलन हो जाता है।

22. अग्नि–परीक्षा:–

अग्नि–परीक्षा नाटक बुन्देलखण्ड के वीर साहसी एवं चरित्रवान व्यक्ति बीरहरदौल से सम्बन्धित है। संक्षेप में सारांश निम्न प्रकार है....

ओडछा के राजा की कई पत्नियॉ है, जिनके कई पुत्र है। वीर सिंह की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र जुझार सिंह सिंहासन पर बैठता है। वह अपनी सहायता के लिए हरदौल को दीवान नियुक्त करता है। हरदौल के काका चम्पतराय हरदौल को सिंहासनारूढ़ करना चाहते है। पहाड सिंह तथा उसकी पत्नी हीरादेवी को जुझार सिंह का सिंहासनारूढ़ होना तथा हरदौल का दीवान होना अच्छा नहीं लगता है। वह मुगलो से मिल जाता है और चम्पतराय के बेटे सहसवान की मृत्यु मुगलों से कराता है। मुगलों से मिलकर ओडछे पर आक्रमण की योजना भी बना लेता है तथा इधर पहाड सिंह जुझार सिंह से भी कहता है कि उसकी पत्नी का हरदौल के साथ अवैध सम्बन्ध है। पहले तो जुझार सिंह विश्वास नहीं करते है। बाद में कर ही लेते है। चम्पतराय को अपने रास्ते से अलग करने के लिए हीरादेवी चम्पतराय को खाने पर बुलाकर खाने में विष मिला देती है। भाग्यवश चम्पतराय अपने साथ अपने भाई भीमसिंह को भी लाते है। जब खाना परोसा जाता है तो हीरादेवी पहाड़ सिंह से बाहर बात करने आती है। भीम सिंह ने हीरा देवी को चम्पतराय की थाली में विष मिलाते देखा था। इस कारण वे चम्पतराय जी की थाली का विष मिला भोजन खाकर मृत्यु को गले लगाते है। चम्पतराय जी बच जाते है। इधर जुझार सिंह अपनी पत्नी स्वर्ण कुँवरि को इस बात पर विवश कर देते हैं कि अगर उसका हरदौल से अवैध सम्बन्ध नहीं है तो दूध में मिला कर उसे विष दे दे। हरदौल अपने विरुद्ध पति–पत्नी की ये बात सुन लेता है। स्वर्ण कुँवरि यह विष वाला दूध स्वयं पी लेना चाहती है। परन्तु हरदौल जो अपनी भाभी को मॉ समान समझता है। उसके चरित्र को कलंकित न करने के लिए विष वाला दूध पीकर सदैव के लिए सो जाता है।

23. अमृत पुत्रीः–

इस नाटक में प्रेमी जी ने गढ़ गणनायक की पुत्री कणिका का अपने पिता की हत्या का बदला लेने का चित्रण किया है। सारांश इस प्रकार है...

यूनानी आक्रमणकारियों से अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिए गठगणराज्य के गणनायक की पुत्री कणिका एक शिला पर खड़ी नग्न तलवार लेकर एक गीत गा रही है। तक्ष शिला के आचार्य चाणक्य, कणिका को नग्न असि लिए देखकर प्रसन्न होते है। कणिका चाणक्य को बताती है कि वह विष कन्या बन कर शत्रु से बदला लेगी। चाणक्य समझाते है कि वह समय अभी नही आया है, अभी भारत को संगठित होने की आवश्यकता है।

सिकन्दर जब भारत की विपासा नदी पर अपना डेरा डालता है तो सेल्युकस उससे आग्रह करता है कि वह वापस मुड जाये क्योंकि विजित प्रदेशों में विद्रोह की लहर उठी है। सैनिक भी वापस लौटना चाहते है। सिकन्दर इस बात को

मानने को तैयार नहीं है। सिकन्दर के सैनिक विद्रोह कर देते है। शिविगणराज्य के गणनायक के पास पुरू कहने आता है कि वह सिकन्दर से समझौता कर ले। इस पर पुरू को सिंहरण कणिका, जयमाल आदि धिक्कारते है। पुरू अपने किये पर पछताता है तथा कणिका से उसके पिता की हत्या करने के लिए मॉफी मॉगता है।

पुरू चाणक्य के पास जाकर उनसे देशद्रोह करने के लिए क्षमा मॉगता है तथा उनसे अनुरोध करता है कि उसका मार्ग प्रदर्शन करे। चाणक्य चन्द्रगुप्त तथा पुरू को अनेक राजनीतिक गतिविधियों से अवगत कराते है तथा अनेक नीतियॉ समझाते है। चाणक्य पुरू से कहते हैं कि सिकन्दर जो अपनी सेना भारत में अपने क्षत्रप के अधीन छोड़ गया है, उससे युद्ध करने के लिए अपनी सेना का सेना पति चन्द्रगुप्त को बनाये। इसके अतिरिक्त अपने राज्य महल में उत्सव मनाये और फिलिप्सको आमंत्रित करे। उत्सव मनाया जाता है। कणिका को नृत्य करने के लिए राजमहल में भेजा जाता है। कणिका अपने नृत्य से फिलिप्स को उन्मत्त कर देती है। वह कणिका को अपने बाहुपाश में बॉधने के लिए जैसे ही उठता है, कणिका अपनी कटार उसकी छाती में भोंक देती है। फिलिप्स जैसे ही नीचे गिरता है, उसके अंगरक्षक कणिका को मारने के लिये आगे बढ़ते है। इतने में ही चन्द्रगुप्त, जो वहॉ इसीलिये पहले से ही विद्यमान होते है। अंगरक्षको के साथ युद्ध करते है।

चाणक्य कणिका से कहते है तुम अमृत पुत्री हो (विषकन्या नहीं) अपने हाथों चन्द्रगुप्त का अभिषेक करो।

24. शक्ति साधनाः–

इस नाटक में अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ के सेनापति पुष्पमित्र की कथा है। चन्द्रगुप्त की भॉति ही पुष्पमित्र भी पराकमी था। वृहद्रथ की अनुशासन हीनता तथा दुर्बलताओं के कारण ग्रीक तथा यवन मगध पर आधिपत्य स्थापित करना चांहते थे। पुष्पामित्र ने वृहद्रथ का वध कर दिया और स्वयं सिंहासन रूढ़ हो गया। पुष्प मित्र ने सत्तारूढ़ होने के पश्चात् विदेशियों को बाहर खदेड दिया। बौद्ध लोग पुष्पमित्र की इस प्रकार की बहादुरी को देखकर उसके विपरीत थे। बौद्धो की पौरुषहीनता से क्षुब्ध तथा कुद्ध होकर पुष्प मित्र ने कुछ विहारों का ध्वस्त किया था।

25. रक्तरेखाः–

इस नाटक में प्रेमी जी ने दिखाया है कि भारत में विभिन्न जातियॉ तथा प्रान्त संगठित नहीं थे, जिसके कारण भारत को पराधीन होना पड़ा। नाटक सारांश इस प्रकार है...

अरब आक्रमणकारी आये दिन सिन्ध में घुस कर आतंक फैलाते रहते थे। एक बार सिन्ध नरेश दाहर की बेटियॉ परमाल तथा सूर्यदेवी आखेट के लिए जाती है तो उनको विदेशी भारतीय नारियों पर अत्याचार करते दिखाई पडते है। वे दोनों उन नारियों को विदेशियों के पंजे से छुडाकर कुछ विदेशियों को मौत के घाट उतार देती है। दाहर अपने मंत्री क्षपाकर से उस पोत के अन्य व्यक्तियों को भी बन्दी बनाने के लिए कहते है। क्षपाकर दाहर से कहते हैं कि बिना बात के क्यो झगड़ा मोल लिया जाय। इस बात से दाहर तथा उसकी बेटियॉ क्रोधित हो जाती है। इसी समय दांहर का बेटा जयसिंह पोत के नायक तथा अन्य व्यक्तियों को बन्दी बनाकर लाता है। इन व्यक्तियों में लंका का एक व्यक्ति श्री वत्स है। श्री वत्स से पता चलता है कि अरब वाले उत्कोच देकर अरबों से अपने पोतो की रक्षा करवाते है। श्री वत्स दाहर को यह भी बताता है कि अगर भारत अपनी शक्ति का उपयोग करके लंका का साथ देता तो वे लोग अरबों से मैत्री नहीं करते। दाहर श्री वत्स को मुक्त कर देता है पर अन्य व्यक्तियों को बन्दी रखता है। इस पर बगदाद का खलीफा उमर सिन्ध पर आक्रमण करता है। इस युद्ध में दाहर वीरगति को प्राप्त होता है। दाहर के पश्चात् उसकी पत्नी वीरता से लड़ती है जब उसकी सारी सेना समाप्त हो जाती है तो वह भी जौहर कर लेती है। इधर खलीफा परमाल तथा सूर्य देवी को बन्दी बना लेता है। वह सूर्य देंवी के साथ विवाह करने को कहता है। पहले तो सूर्य देवी विवाह कर लेने का नाटक करती है। जब उसको श्री वत्स से पता चल जाता है कि दाहर तथा उसकी मॉ इस संसार में नहीं रही तो वे दोनों ही जान देने के लिए तैयार हो जाती है। उधर खलीफा विवाह करने की तैयारियॉ करने लगता है, परन्तु सूर्य देवी और परमाल अपनी तलवार से अपना बध्र कर लेती है।

सामाजिक नाटकों के सार:—

बन्धन:—

· बन्धन नाटक की कथा संक्षेप में इस प्रकार है... एक खजाँचीराम नाम का व्यक्ति जो एक मिल का भी मालिक है, मध्यमवर्ग तथा निम्न वर्ग पर अत्याचार करता है। मध्यमवर्ग का ही एक सुशिक्षित नवयुवक मजदूरो के साथ मिलकर उनका कष्ट दूर करने के लिए उनका नेतृत्व करता है। वह एक आन्दोलन प्रारम्भ करता है, जिसमें वह आत्मत्याग और अहिंसा से उच्च वर्ग के हृदय परिवर्तन में विश्वास रखता है। अपनी बिधवा बहिन की देखभाल वह नवयुवक मोहन ही करता है क्योंकि उनके पिता जी दूसरे विवाह के पश्चात् उन्हे पूछते नही है। वह बहिन भी अहिंसात्मक विचारधारा की है दोनों भाई–बहिन घोर कष्टों का सामना करते हुए भी मजदूर वर्ग

की सहायता करते है। राय बहादुर खजाँचीराम का बेटा तथा बेटी भी इस आन्दोलन में चुपके–चुपके भाग लेते है।

एक दिन राय बहादुर की लड़की भूखे मजदूरों के लिये अपना कुछ पुराना जेबर मोहन के घर छोड़ आती है, तब मोहन वहाॅ उपस्थित नहीं होता है। मोहन को ज़ब पता चलता है तो मालती के घर जेबर वापस करने जाता है। वहाॅ रायबहादुर उसको पकड़ कर चोरी के अपराध में जेल भिजवा देता है। मोहन की अनुपस्थिति में मजदूरों का नेतृत्व मोहन की बहिन सरला करती है। राय बहादुर का बेटा प्रकाश एक दिन एक मजदूर लक्ष्मण को अपने पिता की तिजोरी की चाबी देता है कि वह उसमें से मजदूरो की सहायता के लिए 25,000/– रुपये निकाल ले, साथ में रक्षा के लिए रिवाल्वर भी देता है। घर में घुसते ही रायबहादुर लक्ष्मण को पकडने की कोशिश करते है और लक्ष्मण उन पर गोली चला देता है। राय बहादुर खजॉची राम घायल हो जाते है। लक्ष्मण भाग जाता है। इसी समय रायबहादुर का लड़का प्रकाश तथा मोहन भी जेल से छूट कर आ जाते है। प्रकाश अपने को खूनी बताता है, परन्तु मोहन पुलिस वालों से कहता है कि असली अपराधी प्रकाश नही अपितु वह स्वयं है पुलिस दोनों को हिरासत में ले लेती है, परन्तु कोई गवाही न होने के कारण दोनों को मुक्त किया जाता है। खजॉची राम की ऑखे खुल जाती है। मोहन के आत्मत्याग से उनके अन्दर का मानव जाग जाता है। वे समझते हैं कि वे जो करते थे, वास्तव में अन्याय था। मोहन अपने आत्मत्याग से खजॉची राम का हृदय परिवर्तन कर देता है।

अन्त में लक्ष्मण जाकर बताता है कि असली अपराधी वह स्वयं है। वह पच्चीस हजार रुपये के लिए प्रकाश के कहने पर ही आया था। खजॉची राम कहते हैं कि उनको नवजीवन तथा नवप्रकाश मिला है, इस खुशी में पच्चीस हजार रुपये गरीबों में बॅटवायेंगे। वे मोहन का हाथ मालती के हाथ में देकर उसकी जन्म कैद कर देते है।

छाया:–

हलाहल पत्रिका का सम्पादक रजनी कान्त शराबी, आवारा तथा बदचलन आदमी है, वह शराब और बाजारी औरतो के लिए क्या नही करता है? यहाॅ तक कि अपनी पतिव्रता पत्नी ज्योत्सना जो बहुत सुन्दर है, को अपने स्वार्थ तथा कामुकता के लिए कुत्सित काम करने पर बाध्य कर देता है। प्रकाश को ज्योत्सना पर तरस आता है। प्रकाश स्वयं एक कवि है। वह ज्योत्सना का दुःख दूर करने के लिए उसको अपनी बहिन बना लेता है। प्रकाश के मित्र शंकर और भवानी प्रसाद प्रकाश से मन ही मन ईर्ष्या करते है। वे नही चाहते कि प्रकाश को यश मिले वे प्रकाश को अपने ऋण भार के नीचे दबा देते है। उसकी पत्नी जो सहिष्णुता और त्याग की प्रतिमूर्ति है,

को दो समय की रोटी नही खाने देते। इसकी मासूम बच्ची को चार पैसे का दूध नही पीने देते है। उधर शंकर तथा भवानी को जब पता चलता है कि प्रकाश ज्योत्सना तथा माया के घर आने जाने लगा है (जो समाज की विवशताओं के कारण वेश्या बनी है) तो वे लोग उसकी बदनामी करते है, यहाँ तक कि उसकी पत्नी के पास जाकर उससे कहते हैं कि उसका पति वेश्यालयों में जाता है तथा शराब खानों में पड़ा रहता है। छाया को अपने पति पर पूर्ण विश्वास होता है, इस कारण वह शंकर तथा भवानी प्रसाद को फटकारती है। भवानी प्रसाद प्रकाश से अपने छः सौ रुपये माँगता है, ने दे पाने की स्थिति के कारण प्रकाश चिन्तित हो जाता है। छाया को इस बात का पता चलता है, ज्योत्सना से। वह प्रकाश की एक पुस्तक छपवाकर सात सौ रुपये लाती है तथा ठीक समय पर पहुँच कर अपने पति को अपमानित होने तथा जेल से बचाती है।

ममताः—

ममता नाटक का कथानक संक्षेप में इस प्रकार है...

एक वकील जिसका नाम रजनीकान्त है, कला से प्रेम करता है। जिसको अपनी प्रेमिका कमला के पिता की हत्या का आरोप लगाया जाता है। पुलिस से बचने के लिए तथा अपनी प्रेमिका को खोजने के लिए वह कुछ रुपये रजनीकान्त से लेकर कहीं चल देता है। यश पाल के चले जाने के कारण घर का सारा बोझ कला को ही सम्हालना पड़ता है। कला की माँ कहती है कि जब तक मेरा लड़का नहीं आयेगा तब तक अपनी लड़की के हाथ पीले नहीं करूँगी। इन्हीं दिनों राजनीकान्त के पिता का मित्र रमाकान्त अपनी लड़की लता के विवाह की बात रजनीकान्त से करने आता है। पहले तो रजनीकान्त मना कर देते है, परन्तु उसके विवश करने पर रजनीकान्त कुछ दिनों का अवसर माँगते हैं। कुछ दिनो बाद रमाकान्त का देहान्त हो जाता है। रायसाहब रमाकान्त का मैनेजर विनोद, चाची की सहायता से बलपूर्वक लता से विवाह करने की तैयारी करता है। जब लता को पता चल जाता है तो वह विवाह के दिन रात को भागकर रजनीकान्त की शरण में आती है। लता रजनीकान्त से विवाह के लिए कहती है। रजनीकान्त न चाहने पर भी कला के कहने पर लता से विवाह करता है। कला रजनीकान्त के घर आती जाती रहती है। लता कला का घर आना जाना पसन्द नहीं करती है। उसके मन में अपने पति के प्रति सन्देह उत्पन्न हो जाता है। विनोद इस परिस्थिति से लाभ उठाता है। वह एक दिन क्षमा माँगने के लिए लता के घर जाता है। उस समय रजनीकान्त घर में नहीं है, वह कला के साथ कहीं गये हुए है। विनोद लता के मन में कला को लेकर रजनीकान्त के विरुद्ध विष भर देता है। विनोद लता से कहता है कि वह कला और रजनीकान्त को एक बंगले में प्रेमालाप करते दिखायेगा, पहले तो लता जाने से इन्कार करती है, परन्तु

अन्त में शिशु को छोड़कर विनोद के साथ चली जाती है। विनोद लता को ले जाकर एक बंगले में कई रोज तक बन्द रखता है। उधर रजनीकान्त लता को न पाकर दुःखी होता है। रजनीकान्त के पुत्र का पालन–पोषण उसके लिए एक समस्या बन जाती है।

कुछ दिनों बाद कला का भाई यशपाल आता है। वह विनोद के विषय में बताता है कि सारा षड़यन्त्र उसी का रचाया हुआ है उसी ने उसकी प्रेमिका कमला के पिता की हत्या भी की है तथा लता को भी भगा ले गया है। रजनीकान्त जेल जाता है जहॉ रजनीकान्त को विनोद सारी बात बता देता है। लता विनोद से मुक्ति पाकर भी घर नही लौटती है। वह दिल्ली में अध्यापन का कार्य करने लगती है। एक दिन लता को अपने पुत्र की बीमारी का पता चलता है। तो वह घर की ओर आती है जिस दिन लता घर आती है, उसी दिन रजनीकान्त कला से विवाह करने जाते है। अचानक घर में आग लग जाती है। लता अपने पुत्र की रक्षा करती है, किन्तु वह स्वयं बुरी तरह से झुलस जाती है। इसी समय कला और रजनीकान्त विवाह करके लौटते है। लता रजनीकान्त का वह हार कला को पहनाती है, जो कला ने लता और रजनीकान्त को विवाह के समय पहनाया था।

पौराणिक नाटकः–

प्रेमी जी ने 1932 में एक पौराणिक नाटक भी लिखा है,, "पाताल विजय"। इसमें प्रेमी जी ने पाप और पुण्य का संघर्ष चित्रित किया है। इसका कथनक बड़ा सीधा और सरल है। पाताल का दुष्ट और पापी राजा पाताल केतु गन्धर्व देश की राजकुमारी का हरण कर लेता है। अयोध्या का धर्मनिष्ठ एवं सात्विक वृत्ति वाला वीर राजकुमार पातालकेतु से संघर्ष करता है। अन्त में एक राजकुमार की विजय होती है। धर्म की अधर्म पर विजय का, न्याय पक्ष की अन्याय पक्ष पर अन्तिम विजय का आदर्श इस नाटक में प्रतिपादित किया गया है।

एकांकी नाटकः–

प्रेमी जी ने ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक नाटकों को अतिरिक्त कुछ एकांकी नाटक भी लिखे है। उनके दो एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए है–

1. मन्दिरः–

एकांकी संग्रह में निम्न लिखित सात एकांकी नाटक संग्रहीत है वे हैं–

(क). सेवा मन्दिर (बादलो के पार)

(ख). गृह मन्दिर (घर या होटल)

(ग). मातृ मन्दिर (नया समाज)

(घ). राष्ट्र मन्दिर (यह मेरी जन्म भूमि है)

(ङ). वाणी मन्दिर
(च). न्याय मन्दिर (निष्ठुर न्याय)
(छ). मान मन्दिर (मातृ भूमि का मान)

2. बादलों के पार (सेवा मन्दिर):–

यह ग्यारह एकांकी नाटकों का संग्रह है, जिसमें सात एकांकी पूर्वोक्त एंकाकी है जिनका मन्दिर नाम से उल्लेख है तथा चार नये एकांकी भी सम्मिलित है। ये है.

1. यह भी एक खेल है (ऐतिहासिक एकांकी नाटक)
2. प्रेम अन्धा है (यह नाटक कल्पना पर आधारित ऐतिहासिक नाटक है)
3. रूप शिखा (ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आधारित)
4. पश्चाताप (सामाजिक एकांकी नाटक)

इन एकांकी नाटकों के अतिरिक्त प्रेमी जी ने एक और एकांकी नाटक लिखा है– "बेड़ियाँ"।

इस प्रकार "प्रेमी" जी ने बारह एकांकी नाटक हिन्दी जगत को प्रदान किये है। इन सब नाटकों के अतिरिक्त प्रेमी जी ने एक गीति–नाट्य भी लिखा है जो "स्वर्ण विहान" के नाम से प्रसिद्ध हुआ है। यह एक सामाजिक नाटक है। जिसमें समाज की दयनीय दशा का वर्णन किया गया है। अंग्रेज सरकार ने इस पुस्तक को अपने अधीन कर लिया था। कहीं से एक प्रति प्रेमी जी को प्राप्त हो गयी जिसका पुनः प्रकाशन किया गया। संक्षेप में इसका सारांश इस प्रकार है...

एक मजदूर जिसकी पत्नी बीमार है, मजदूरी करने के लिये जाता है। वहाँ का राजा बड़ा ही निष्ठुर है, उसके आदमी उस मजदूर को पकड़ ले जाते है। सारे दिन काम करवाते है, शाम को बिना वेतन दिये ही छोड़ देते है। बेचारा हाराथका मजदूर घर आता है। मोहन तथा प्रकाश नाम के व्यक्ति उसकी सहायता करते है। वे इस निष्ठुर राजा का विरोध करते है। इस नाटिका में गाँधीवादी विचारधारा का पूर्ण परिपाक हुआ है।

तृतीय अध्याय

प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिफलन

1. सत्य
2. अहिंसा
3. सत्याग्रह एवम् इसके विभिन्न तत्व
   (क) असहयोग
   (ख) सविनय अवज्ञा आन्दोलन
   (ग) उपवास
   (घ) हिज़रत
   (ङ) धरना
   (च) हड़ताल
4. हृदय परिवर्तन
5. पश्चाताप

तृतीय-अध्याय

प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्तों का प्रतिफलन

1. सत्यः

सत्य और अहिंसा गाँधी जी के अचूक अस्त्र थे, जिनका प्रयोग गाँधी जी हर क्षेत्र में किया करते थे। उन्होंने अहिंसा को साधन तथा सत्य को साध्य माना है। वैसे सामान्यतः सत्य का अर्थ मात्र सत्य बोलने से लिया जाता है, लेकिन गाँधी जी के विचार में वाणी में, आचार में सत्य होना ही सत्य है। "प्रेमी" जी के अनेक नाटकों में सत्य के दर्शन होते हैं।

"प्रतिशोध" नाटक में एक प्रसंग ओरछा के राजा जुझार सिंह का है। उन्हें अपनी पत्नी और छोटे भाई हरदौल को लेकर कुछ शंका हो जाती है, जबकि महारानी हरदौल को पुत्रवत् स्नेह करती थी। जुझार सिंह अपनी पत्नी से हरदौल को जहर देने का आग्रह करते हैं। पत्नी अपने चरित्र को प्रमाणित करने के लिये अपने उस देवर को जहर देती अवश्य है, किन्तु छलपूर्वक नहीं अपितु उसके सामने इस तथ्य का उद्घाटन कर देती है यथा.... "तुम्हारे भैया ने तुम्हारे और मेरे आचरण में पाप की छाया देखी है और मुझे आज्ञा दी है कि तुम्हें जहर दे दूँ।"[1] महारानी के उक्त कथन में सत्य मुखरित हुआ है क्योंकि हरदौल से महारानी ने कुछ भी छिपाया नहीं है। यही नहीं हरदौल ने भी अपने आचरण में सत्य का प्रदर्शन करते हुए अपनी स्नेहमयी मातृवत् भाभी के चरित्र की रक्षा के लिए सहर्ष विष ग्रहण कर लिया।

अन्यत्र इसी नाट्यकृति में हीरा देवी चम्पतराय को मार डालना चाहती है क्योंकि बुन्देलखण्ड में चम्पतराय का अधिक सम्मान हो रहा है, शुभकरण का नहीं। यह बात शुभकरण को जैसे ही ज्ञात होती है, वह हीरा देवी को धिक्कारता हुआ कहता है.... "मायाविनी धिक्कार है तुम्हें। यह बात सोचते हुए तुम्हारी आत्मा काँपी नहीं जवान गिर नहीं पड़ी। तुम नारी हो नारी तो अधिष्ठात्री होती है, प्रेम करुणा और ममता की सुर सरिता होती है। नारी होकर तुम किस नीचता के कलंक में पतित होने जा रही हो। पुरुष इतना नीच हो सकता है, किन्तु नारी......"[2] शुभकरण के उक्त कथन में सत्य प्रभावित हो रहा है।

---

1. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–20
2. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27

चम्पतराय ने औरंगजेब के पक्ष में युद्ध किया। जिसके कारण ही औरंगजेब तख्तेताउस पर बैठा। औरंगजेब को दारा ने घेर लिया था, लेकिन इस समय भी चम्पतराय औरंगजेब की सहायता करते हैं औरंगजेब कहता है, हमने तुम्हारे साथ जुल्म किया है। उसकी सजा मुझे मिल गयी। लेकिन तुम्हारे एहसान का बदला किस तरह चुकाऊँ? औरंगजेब इसी सत्य को अवगत कराता हुआ चम्पतराय से कहता है... "मुझे वह दिन याद है... जब मेरा लश्कर चम्बल के किनारे आकर ठिठक कर रुक गया था। दारा ने पार जाने के सारे घाट रोक लिये थे। मेरे सारे मनसूबों पर पानी फिर गया था। तब आपने कहा था... शहजादा औरंगजेब चलिये मैं आपको ऐसे घाट से पार ले चलूँ। जिसे दारा नहीं जानता, उम्मीद की एक रोशनी आपने रोशन कर दी थी।"[1]

इसी कृति के एक प्रसंग में औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा को संगीत बहुत प्रिय है; लेकिन औरंगजेब उसे संगीत से विमुख रखना चाहता है। यह इस्लाम के विपरीत है, लेकिन उसकी बहिन जहानारा उसी के जीवन के एक प्रसंग का उदघाटन करती हुई कहती है... "तुम्हें वह दिन याद होगा, जरूर याद होगा... तुम जिन्दगीभर उस दिन को न भूल सकोगे, जब हम मौसी से मिलने बुरहानपुर गये थे। मौसी की बाँदी हीराबाई को देखते ही तुम्हारा क्या हाल हुआ था? हीराबाई बगीचे में आमों के लदे हुए एक पेड़ के पास जाकर आम तोडने लगी। उसके आम तोडने में न जाने क्या बात थी कि जिससे तुम एकदम बेखुद और बेचैन हो गये। बड़ी देर तक तुम बेहोश से उसी बगीचे में पड़े रहे।"[2] इस सत्य के प्रकट होते ही औरंगजेब अपनी बहिन जहानारा से कहता है... "वह तो पागलपन था।"[3] लेकिन जहानारा सत्य का उद्घाटन करती है। इस सम्बन्ध में जहाँनारा का कथन दृष्टव्य है... "नहीं! वह जिन्दगी के एक कुदरती जज्बे की सच्चाई थी। भैया वह इन्सानियत थी। तुम खाना-पीना छोड़ बैठे, तुम्हे दुनियाँ का शर्मो लिहाज न रहा। तब मौसी ने हीराबाई को तुम्हारे हवाले करके तुम्हारी जान बचाई थी। जिन्दगी के उतार पर बैठे हुए तुम आज दूसरों को मुहब्बत की मंजिल से गुजरते देखकर उनसे नफरत करते हो, उन पर जुल्म ढाते हो। बड़े इस्लाम के तुम हिमायती बन रहे हो। मुझे खूब याद है कि तुम हीराबाई के हाथ से शराब पीने के लिए भी तैयार हो गये थे। उस वक्त कहाँ गया था तुम्हारा इस्लाम।"[4]

जहाँनारा के उक्त दोनों कथनों में सत्य के दर्शन हो रहे हैं क्योंकि

1. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-41
2. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-64
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-64
4. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-64

जहाँनारा ने हीराबाई के सम्बन्ध में उक्त घटना को आँखों से देखा था।

"आन का मान" नाट्यकृति में दुर्गादास ने अजीत सिंह को अपने बचाने के लिये टोकरी में रखवाकर सिरोही पहुँचाया था। ये पहुँचाने का कार्य कासिम खाँ ने किया था। लेकिन अजीत सिंह दुर्गादास पर अविश्वास प्रकट करता है। इस सन्दर्भ में कासिम खाँ सत्य को प्रकट करता है.... "महाराजा आप मुझे काका कहते हो, योंकि जब आप दुधमुँहे शिशु थे तब मैं आपको टोकरी में रखकर दिल्ली से सिरोही तक लाया था। आपने जो मुझे मान दिया है, उसी अधिकार से आपसे निवेदन करता हूँ, कि आप सन्देह और असन्तोष के बादल अपने मन से हटा दीजिए। संसार भर में हाथ में दीपक लेकर घूम आओगे तब भी दुर्गादास जी जैसा शुभचिन्तक, वीर, स्वामिभक्त और निश्छल व्यक्ति कहीं न पाओंगे।"[1]

इसी नाटक में मारवाड का सेना नायक मुकुन्ददास भी दुर्गादास के सम्बन्ध में इसी सत्य को उद्घाटित करता है। वह कहता है कि... "आप सम्भवतः नहीं जानते कि मैं उस मुगल राजसभा में उपस्थित था, जब सम्राट औरंगजेब ने कहा था... "दुर्गादास तुम मुझे जसबन्त सिंह के दोनों नवजात शिशु दो, मैं तुम्हें मारवाड़ की गद्दी दूँगा।" तब दुर्गादास जी ने कहा था... "ईश्वर आकर कहें, मैं तुम्हे स्वर्ग का सिंहासन देता हूँ तब भी सच्चा राजपूत अपने स्वामी के साथ विश्वासघात नहीं करेगा। इन्हें राजसत्ता का मोह होता तो क्या इतनी लम्बी अवधि तक प्रतिक्षा करनी पड़ती।"[2] मुकुन्ददास ने दुर्गादास द्वारा जो औरंगजेब को उत्तर दिया गया है उसी सत्य का उद्घाटन है।

इसी कृति के घटनाक्रम के अनुसार औरंगजेब के अत्याचार से उसके चारों बेटे और एक बेटी बिल्कुल अलग हैं। कोई भी औरंगजेब की बात नही सुनता। यहाँ तक कि उसका बेटा अकबर अपने पुत्र और पुत्री को दुर्गादास को सौंप कर ईरान चला गया है। औरंगजेब की पुत्री मेहरुनिसा जो कि उसके पास ही रहती है वह इसी सत्य को प्रकाशित करती हुई कहती है.... "आज मेरे अतिरिक्त उन्हें उनकी कोई बेटी प्यार नहीं करती। आज उनका कोई बेटा भी उन्हें प्यार नहीं करता—डरता भले ही हो। सब इस प्रतिक्षा में हैं कि कब ये आँखें मूँदे और हम सिंहासन के लिए छीना—झपटी करें और अकबर से तो उनके मरने की प्रतिक्षा करने का सब्र नहीं हुआ।"[4]

औरंगजेब ने जीवन भर तलवार के बल पर शासन किया। इस लिए वह अपनी प्रजा का हृदय नहीं जीत सका, उसकी पुत्री जीनतुन्निसा प्रश्न करती है कि

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0—45
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0—46
3. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0—59

आपने साम्राज्य को विस्तार की चरम सीमा तक पहुँचा दिया है। आज मुगल शक्ति का कोई प्रतिद्वन्दी हिन्दुस्तान में नहीं होगा। इस प्रश्न के उत्तर में औरंगजेब सत्य को प्रकट करता है कि.... "संसार के सामने गर्व के साथ हम भी यहीकहते हैं, लेकिन तुम्हारे सामने झूठ नहीं बोल सकते। सच पूछो कि दक्षिण की एक भी गज भूमि औरंगजेब की नहीं है। गोलकुण्डा और बीजापुर के राज्यों को मिटाकर उसने यह सारा प्रदेश मराठे रूपी पशुओं के लिए खुले चरागाह में परिवर्तित कर दिया हैं सन्ध्या के समय सिर्फ सैनिक चौकियों तक ही मुगल सत्ता रह जाती है। शेष सभी स्थानों पर मराठों का अखण्ड राज्य रहता है। यही हाल मारवाड़ में है, यही बुन्देलखण्ड में है। हमारे उत्तर के प्रदेशों की स्थिति ठीक नहीं है। यहाँ हम वर्षों से पड़े हुए हैं... उधर सभी सूबेदार अपने-अपने प्रदेशों में मनमानी कर रहे हैं। लगान या तो प्राप्त नहीं होता... होता है तो सूबेदारों से उसका ठीक-ठीक हिसाब पाना सम्भव नहीं है। प्रत्येक स्थान पर तो हम पहुँच नहीं सकते।"[1]

औरंगजेब का पुत्र अकबर ईरान जाते समय अपने पुत्र और पुत्री को दुर्गादास के पास छोड़ गया था। दुर्गादास जी एक मौलवी के द्वारा दोनों को इस्लाम की शिक्षा दिलाते हैं। अकबर के पुत्र और पुत्री शिक्षा देने वाले उस्तानी तथा कासिम खाँ के अतिरिक्त किसी तीसरे मुसलमान को नहीं जानते है। इसी सत्य को बताती हुई सफीयतुन्निसा अजीत सिंह से कहती है.... "अपने हृदय में मैंने कभी नहीं सोचा कि मैं मुगल शहजादी हूँ... यद्यपि दुर्गादास जी ने मुझे मुस्लिम धर्म और संस्कृति से पूर्णतः परिचित कराया है, लेकिन यह परिचय पुस्तको द्वारा हुआ है। मुसलमानों में मैं केवल काका कासिम खाँ को मानती हूँ या अपने उस्तानी जिन्हें दुर्गादास जी ने अजमेर से बुलवाकर मेरी शिक्षा के लिए रखा है। किन्तु हिन्दुओं को तो मेरी आँखों ने देखा है।"[2]

"अमर आन" में शहवाज खाँ ने बताया कि लोग कहते हैं कि शाहजहाँ प्रजा पर बाप की तरह शासन करता है। अमर सिंह की पत्नी अहाड़ी रानी कहती है कि इससे मैं इन्कार नहीं करती। उसके शासन में भारत को असाधारण शान्ति मिली है, लेकिन अहाड़ी रानी शहबाज खाँ को उस सत्य से अवगत कराती है जो शहवाज खाँ को पता नहीं है अहाड़ी रानी का कथन अवलोकनीय है... "जो बाप अपनी सन्तानों में से किसी को अधिक प्यार करता है, किसी को कम। वह अच्छा बाप नहीं है। प्रजा की बात बाद में करूँगी पहले उसके परिवार की ही बात को जब वह सिंहासन पर बैठा था और पहला नौ रोज का उत्सव मनाया गया था। तब उसने शहजादी जहाँआरा को बीस लाख रुपये प्रदान किये थे और शहजादी रोशन आरा को केवल पाँच लाख

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-67
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-99

रुपये। अच्छा बाप कभी ऐसा भेद भाव नहीं करता।"[1] अमर सिंह देश को स्वतंत्र कराने के लिए प्रयासरत है। वे सत्यऔर न्याय के मार्ग पर चल कर पराधीनता की बेडियाँ तोडने के लिए तैयार है। अमर सिंह का कथन इस परिप्रेक्ष्य में दृष्टव्य है.... "केवल मारवाड़ को ही नहीं सम्पूर्ण भारत के प्रस्तुत प्राणों को जगाऊँगा। सत्य हमारे साथ होगा। हम पराधीनता की बेडियों के टुकडे–टुकडे कर देंगे।"[2]

अहाडी रानी ने अपने बेटे कुँवर जगतसिंह को भिखारी के कपडे पहना रखे हैं। अहाडी रानी जगत सिंह से कहती है... बेटा तुम अन्दर चले जाओं यदि युवराज दारा तुम्हारे इस प्रकार के कपड़े देखेंगे तो क्या कहेंगे? राजाओं के लड़के ऐसे कपड़े नहीं पहनते। अपनी माता का यह कथन सुनकर जगत सिंह सत्य को प्रकट करता है.... "राजाओं के बेटे ऐसे कपड़े नहीं पहनते तो तुमने मुझे ये कपड़े पहनाये ही क्यों? मैं इन कपड़ों में क्यो शरमाऊँ? ये मेरी माँ के दिये हुए कपड़े हैं।"[3]

"स्वप्न भंग" नाटक में शाहजहाँ अपने सभी पुत्रों में दाराशिकोह को अधिक प्यार करता है क्योंकि दारा भी शाहजहाँ को पिता समझता है जिसके कारण दारा की पत्नी नादिरा को अधिक सुख भी प्राप्त है। इसी सत्य को नादिरा अपनी दासी सलीमा से कहती है.... "शहंशाह शाहजहाँ का हम पर इतना स्नेह उन पर अन्य पुत्रों की अपेक्षा अधिक ममता क्या दुनियाँ की ईष्यालु आँखें चुपचाप सह लेंगी। तुम जानती हो, सलीमा ज्यादा शराब पीने का परिणाम नशा उतरने पर बहुत बुरा होता है।"[4] लेकिन नादिरा की दासी सलीमा भी इसी सत्य को पल्लवित करती है। वह कहती है... "शहंशाह का दारा पर स्नेह क्या स्वाभाविक नहीं, क्या उचित नहीं? वे उनके बड़े पुत्र हैं। संसार ईर्ष्या करे तो करे, लेकिन शंहशाह के स्नेह और मुगल बादशाहत के सम्पूर्ण वैभव पर शाहजादा दारा का अधिकार स्वाभाविक है और उचित भी। विस पर राजपूत राजाओं का उन्हें विश्वास प्राप्त है आपको आशंका क्या है?"[5]

इसी नाट्यकृति में जसवन्त सिंह की पत्नी महामाया ने जोधपुर के किले में स्वयं अपने पति को प्रवेश नहीं करने दिया। दासी शाहजहाँ की पुत्री रोशनआरा सत्य से अवगत होना चाहती है कि उक्त बात सत्य है। सत्य के सम्बन्ध में रोशनआरा का कथन दृष्टव्य है... "बिल्कुल सच है मेरी भी इच्छा होती है कि मैं भी राजपूतानी होती। तलवार लेकर युद्ध क्षेत्र में युद्ध करती, पुरुष से स्पर्धा करती। यहाँ राजमहलों में मेरा मन नहीं लगता। भीतर से एक आँधी उठती रहती है जिसका दवाव

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–50
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–60
3. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–83
4. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–12
5. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–12

मुझसे नहीं सहा जाता। प्राणो में एक ज्वालामुखी सा जलता रहता है।"[1] रोशनआरा महारानी की वीरता से प्रभावित होकर सत्य के सम्बन्ध में कहती है... "मैं सच कहती हूँ, महाराज जसवन्त सिंह के स्थान पर वह रणक्षेत्र में होती तो औरंगजेब की क्या मज़ाल कि वह विजय पा सकता। उसकी दृढ़ता राजपूतों को इतना बल देती है कि उसके नेतृत्व में वह दसगुनी शक्ति से भी लोहा ले सकते हैं।"[2]

"छाया" नाट्यकृति में ज्योत्स्ना अपने पति रजनीकान्त को प्रकाश कवि के स्वागत के लिए सामान मँगाने को बाजार भेजती है। इस बीच प्रकाश ज्योत्स्ना से पूँछता है कि रजनीकान्त कहाँ गये हैं। इसके उत्तर में ज्योत्स्ना सत्य को प्रकट करती है। वह कहती है.... "आपसे क्या छिपाऊँ प्रकाश बाबू! घर में न चाय का सामान रहा है, न पैसे, न भोजन की सामग्री। पहली बार आप आये। बिना खाना खिलाये आपको कैसे जाने देती इसलिए मैंने उन्हे एक मात्र अवशेष आभूषण दिया था कि इसे बेच कर कवि का सत्कार किया जाय।"[3]

कवि प्रकाश का साहित्य तथा सम्पूर्ण धन आदि सब उनके अपने बने हुए आदमियों ने नष्ट कर दिया हैं। वे प्रकाश को नीचा दिखाना चाहते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में छाया सत्य को प्रकट करती हुइ कहती है.... "सत्य बात कहने में छाया किसी से नहीं डरती आप लोगों ने पहले उनका धन छीना, उन्हें चिन्ताग्रस्त करके साहित्य छीनना चाहा और लाँछन लगाकर उनका यश भी छीनना चाहते हैं।"[4]

जब कवि प्रकाश पर कर्ज हो जाता है उस कर्ज को चुकाने के लिए छाया रुपये देती है। तब प्रकाश कहता है कहाँ से पाये इतने रुपये। इसके उत्तर में छाया सत्य को कहती है.... "सब आपकी कमाई के हैं प्रियतम मैंने चोरी नहीं की शरीर नहीं बेचा, ऋण नहीं लिया, भीख नहीं माँगी। आपकी ही पुस्तक छपबाकर मुक्त प्रान्त की मेट्रिक परीक्षा में नियुक्त कराकर एक प्रकाशक को बेच कर ये रुपये लाई हूँ।"[5]

"संवत् प्रवर्त्तन" नाट्यकृति में राजा गर्दभिल्ल दर्पण जब आचार्य कालक की भगिनी को हरणकर लेता है तो वह आचार्य कालक राजा से भी नहीं डरता है। वह राजा से कहता है.... "राजा तेरी वासना और तेरा अभिमान तुझे खा जायेगा। राजा तेरे कुत्सित कार्य से तंग आकर प्रदेश में ऐसी भयानक ज्वाला प्रज्वलित होगी जिसमें तेरा सम्पूर्ण वैभव, राजपाठ और सैन्यबल भस्मसात हो जायेगा। राजा तू

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–64
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–64
3. छाया : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–23
4. छाया : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–59
5. छाया : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–77

सर्वनाश को आमंत्रित मत कर।"[1] आचार्य कालक के उक्त कथन में सत्य के दर्शन होते है क्योंकि गाँधी जी ने एक स्थान पर सत्य के सम्बन्ध में कहा था कि तुम्हारी अन्तरात्मा जो कहती है, वही सत्य है।

"भाई–भाई" नाट्यकृति में दासी चमेली राजमाता को सत्य का महत्व बता रही है। वह कहती है कि बड़ी राजमाता आशंकित न हों, संसार में सत्य का साथ देने वाले भी होते हैं मालवा के सुल्तान और भील सरदार ऊजलाजी अपने योद्धाओं सहित चूड़ा जी के साथ हैं। भगवान का आर्शीवाद भी सत्यपथगामी को प्राप्त होता है।[2]

"विदा" नाट्यकृति में औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा अपने पिता को सत्य से अवगत कराती है। वह औरंगजेब से कहती है.... "आप तीन चौथाई से अधिक भारत के एक छत्र सम्राट है। प्रत्येक भारतवासी आपकी सन्तान के समान है। भारतवासी आपसे पिता का प्यार चाहता है, सोचने की आजादी चाहता है और चाहता है कि आप अपने हर बेटा–बेटी से समान व्यवहार करें।"[3] जेबुन्निसा के चले जाने के बाद औरंगज़ेब इसी सत्य के बारे में सोचता है और कहता है जेबुन्निसा जो कुछ कहती है शायद वह सच ही हो, लेकिन मैं जिस रास्ते पर इतना आगे निकल आया हूँ क्या उससे लौटा जा सकता है? मैंने तलवार की सहायता से सबका मुँह बन्द कर रखा है, लेकिन देखता हूँ लोगो के मुँह भले ही बन्द हो उनके दिलों में आग जरूर जल रही है। जिसकी एकलपट मैंने जेबुन्निसा के मुँह से निकलती देखी है। कोई चिन्ता नहीं, मुझे इस आग से भी लड़ना पड़ेगा।[4]

इसी नाट्यकृति में कासिम खाँ एक पात्र है, जो फल बेचने का धन्धा करता है। तहब्बर खाँ और दिलेर खाँ औरंगजेब के सेनापति उससे कहते हैं कि तुम भी फौज में भर्ती हो जाओ तो कासिम खाँ औरंगजेब की कूटनीति के बारे में बताता है। इसी सत्य को कासिम खाँ के चले जाने पर दिलेर खाँ तहब्बर खाँ से कहता है... "सचमुच उसने बहुत सी बातें पते की कही है। हम लोग हिन्दुस्तान में प्रदेश पर प्रदेश जीतते चले जा रहे हैं, लेकिन ऐसा जानपड़ता है जैसे हम बालू पर महल खड़ा कर रहे हैं। हम इस देश के जीवन में अभी तक सम्मिलित नहीं हो सके। बड़े–बड़े वेतन हम लोग पाते हैं, अपरिमित धन हमारे पास आता है लेकिन हम इसकी कीमत नहीं समझते... सब कुछ नाचरंग और भोग विलास में नष्ट कर देते हैं।"[5]

1. संवत् प्रवर्त्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–18
2. भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–18
3. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–10 व 11
4. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–12
5. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–34

"शीशदान" नाट्यकृति में शमशुद्दीन नर्तकी अज़ीजन से अंग्रेजी शासन की कूटनीति विषयक सत्य को प्रकट करता है। वह अज़ीजन से कहता है... "सच बात तो यह है। अंग्रेज वास्तव में चाहते है कि भारतीय सैनिक ईसाई बन जावें ताकि अपने देश और धर्म के प्रति जो आस्था का बन्धन उन्हें बाँधे हुए है। वह टूट जावे और वे पूर्णरूप से अंग्रेजों के बन जावें तभी तो वे प्रति रविवार को सैनिकों में पादरियों के प्रवचन रखते हैं। ये पादरी न केवल ईसाई धर्म के सद्‌गुणों की चर्चा करते हैं, बल्कि दूसरे धर्मों की बुराइयों को भी बताते हैं।"[1]

"रक्षाबन्धन" नाट्यकृति में मेवाड़ के सेठ धनदास को जब यह ज्ञात होता है कि मेवाड़ पर चढ़ाई होने वाली है तो वह बहुत ही खुशी मनाता है। वह कहता है... ये तो अच्छा हुआ खूब धन कमाऊँगा। लेकिन उसकी पत्नी माया उसे समझाती है। धनदास माया की बात सत्य मान लेता है और कहता है... "नहीं माया तुम सच कहती हो। तुम वास्तव में देवी हो तुमने आज मेरी आँखें खोल दीं उफ मैं कितनी गलती पर था, कैसा जघन्य पाप करने चला था। तुमने मुझे बचा लिया। ले जाओ, माया मेरा सम्पूर्ण धन! जो वीर रण में वीरगति पाये उनके बाल–बच्चों की सेवा में मेरा सर्वस्व समर्पित कर दो।"[2]

"बन्धु मिलन" नाट्यकृति में प्रताप हमेशा मेवाड़ को स्वतंत्र कराने की बात सोचता रहता है वह अपने भाई जयमल से कहता है... "मैं सच कहता हूँ कि मैं रात में भी यही सोचता हूँ कि क्या हम अपनें देश की दासता की जंजीरे काटने में सफल होंगे।"[3]

मानसिंह देश के प्रति विश्वासघात करता है। वह महाराणा प्रताप से कहता है कि इस अपमान का बदला न लिया तो मैं राजपूत नहीं। इसी सत्य को प्रकाशित करते हुए प्रताप कहता है.... "अपने आप को राजपूत कहते हुए शर्म नहीं आती तुम्हें, मानसिंह? आज विदेशी तुम्हारा अपना है, तुम्हारा फूफा है, तुम्हारा सम्राट है और प्रताप तुम्हारा बैरी अरे तुम भी उसी राम के वंशज हो जिसका प्रताप। मेरी और तुम्हारी कायाओं में एक ही रक्त प्रवाहित है और तुम अपने देश से द्रोह करने में संकोच नहीं करते। सुनो मानसिंह कान लगाकर सुनो कि मैं प्रताप! और मानसिंह दो विपरीत पथ के राही है। हमारे मिलन मार्ग में आदर्शो ओर मान्यताओं के पर्वत खड़े हैं। मैं जानता हूँ देश के स्वाभिमान और स्वतंत्रता के लिए जिस सर्वस्व त्याग की अपेक्षा है, वह तुममें नहीं है। ऐसी स्थिति में हमारा मिलन स्थल रणभूमि ही है।"[4]

---

1. शीशदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27
2. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–33
3. बन्धु मिलन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–
4. बन्धु मिलन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–53

इस प्रकार प्रेमी जी के नाटकों में सत्य को स्थान दिया गया है जिससे लोगों में सत्य के प्रति जागरुकता आये और अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सत्य उतार सके उनके नाटकों के अधिकतर पात्र सत्यमार्ग का ही अनुसरण करते हैं।

2. अहिंसाः

लक्ष्य प्राप्ति के लिए हिंसा का अवलम्बन लेना भारतीय संस्कृति के आदर्शो के विरुद्ध है। यही कारण है कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष करते समय गाँधी जी ने अहिंसा का प्रयोग किया था। भारतीय संस्कृति साधन की पवित्रता में विश्वास रखती है। हमारे यहाँ साधन को ही साध्य की कसौटी माना गया है। प्रेमी जी ने सत्य के साथ अहिंसा का भी अपने नाटकों में वर्णन किया है।

"स्वप्न भंग" नाटक में दारा सत्य मार्ग पर तो चलता है साथ ही, अहिंसा को भी गले लगाता है। छत्रसाल हाड़ा की मृत्यु के बाद औरंगजेब के पास जाने की इच्छा व्यक्त करता हुआ जहाँनआरा से कहता है... "....उसके हाथ में तलवार दूँगा उससे कहूँगा कि तुम्हें मेरा सिर चाहिये तो लो। अपने हाथ से अपने बड़े भाई का खून करो।"[1] वह इस प्रकार का चिन्तन ही कर पाता है परन्तु ऐसा करने का उसे सुअवसर नहीं मिल पाता है।

इसी नाट्यकृति में दारा अपने पिता शाहजहाँ से अहिंसा का प्रतिपादन करते हुए अब्बा जान से राज सिंहासन का लोभ त्याग कर अहिंसा एवं सत्य में विश्वास करता हुआ अपना समस्त राजपाठ एवं राजचिह्न जो उसे मिल रहा होता है बड़ी आसानी पूर्वक देने को तैयार हो जाता है वह अपने पिता से कहता है.... "लो अब्बा! यह तलवार और राज चिह्न यदि मुराद, औरंगजेब इन्हें पाकर संतुष्ट हो जायें तो हजारों आदमियों का खून कराने की आवश्यकता नहीं।"[2]

शपथ नाट्यकृति में उज्जयिनी के नगर श्रेष्ठी का वर्णन है। वह अहिंसा में विश्वास करता है। जब वह देश द्रोही धन्य विष्णु पर व्यंग्य करता है तो मिहिरकुल को क्रोध आ जाता है। वह कहता है... "आपको हूण असि का भय नहीं है।" इस कथन को सुनकर अहिंसा में विश्वास करने वाला नगर श्रेष्ठी कहता है... "अहिंसा में विश्वास करने वाले महाप्राण निर्दय असि से भयभीत नहीं होते।"[3]

"कीर्ति स्तम्भ" नाट्यकृति में संग्राम सिंह युवराज हैं। वे गृह कलह को बचाने के लिए युवराज पद को भी त्याग देने के लिए प्रस्तुत हैं। वह कहते हैं...

---

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–42
3. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–125

"मेवाड़ का महाराणा पद उसकी आकांक्षाओं की परिधि नहीं है। उसके कारण मेवाड़ में गृहकलह का सूत्रपात हो इससे बड़ा दुर्भाग्य उसके लिए और क्या हो सकता है? सत्य और असत्य न्याय और अन्याय पर विचार करने के पहले हमें मेवाड़ भूमि के हिताहित पर विचार करना है। हत्यारे ऊदाजी के पुत्र के पक्ष में मेवाड़ को विदेशियों के चंगुल में फँसाने से बचाने वाले महाराणा रायमल का ज्येष्ठ पुत्र संग्राम सिंह युवराज पद का परित्याग करने को प्रस्तुत हैं।"[1] महाराणा रायमल राजयोगी से कहते हैं... "किन्तु खेद है कि इस प्रासाद की एक दीवार खड़ी की जाती है तो कोई दुष्ट स्वार्थी एवं देशद्रोही उसकी दूसरी दीवार को गिरा देते हैं। मुझे अपनी असमर्थता पर लज्जा आती है। जी चाहता है कि अपनी तलवार से अपना मस्तिष्क काटकर भवानी के चरणों में चढ़ा दूँ। तब कदापि मेवाड़ के मतवाले पथभ्रष्ट राजपूतों को सद्बुद्धि प्राप्त हो।"[2] इस कथन में अहिंसा मुखरित हो रही है।

"भग्नप्राचीर" नाटक में भोजराज की मृत्यु के बाद मीरा अतिशय भावुक हो जाती है। वह हिंसा मार्ग का विरोध करती हुई कर्मवती से कहती है... "युद्ध बहुत निष्ठुर कर्म है। मनुष्यता का ऊँचा गुण नहीं हैं। हिंसा का मार्ग आदर्श मार्ग नहीं है।"[3]

"आन का मान" नाट्यकृति में अकबर के पुत्र बुलन्द अख्तर एवं पुत्री सफीयतुन्निसा में हिंसा–अहिंसा को लेकर बाद–विवाद चलता है। सफीयतुन्निसा हिंसा को श्रेष्ठ नहीं मानती है, क्योंकि जब एक बार वह प्रारम्भ हो जाता है तो इसका क्रम अनवरत रूप से कई पीढ़ियों तक गतिमान रहता है। वह सम्राट अशोक का उदाहरण प्रस्तुत करती है। जिन्होंने कलिंग के युद्ध से द्रवीभूत होकर रक्तपात न करने का संकल्प किया था, अतएव वह बुलन्द अख्तर से कहती है... "शीश काटने की अपेक्षा हँसते–हँसते शीश कटाने में अधिक शौर्य है, भाई जान, मैं तो कहती हूँ कि अब्बाजान ने बाबाजान की तलवार का सामना करने का मार्ग पकड़ कर भूल की है।"[4] सफीयतुन्निसा अहिंसा में पूर्ण विश्वास करती है। वह बुलन्द अख्तर से कहती है... "लेकिन यह अवश्य कहूँगी कि दुर्गादास जी और उनके साथी तलवार पकड़ने के बजाय अपने प्राण देने को प्रस्तुत हो जावें, सारा मारवाड़ जान बचाने के लिए तलवार पकड़ने का यत्न न करके हर कष्ट सहने और जान देने को तैयार हो जाता, अब्बाजान राजपूतों का सहारा लेने के बजाय बाबाजान से ही कहते........ मैं अजीत सिंह की जगह अपनी जान आपको देता हूँ।"[5] औरंगजेब दुर्गादास से कहता है कि

1. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–47
2. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–54
3. भग्न प्राचीर : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–103
4. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–31
5. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–31

राजनीति में वचन पालन से बड़ी मूर्खता दूसरी नहीं हैं बोलो दुर्गादास अब तुम क्या कर सकते हो दुर्गादास अहिंसा में विश्वास करते हुए कहते हैं... "कुछ नहीं जहाँपनाह जल्लाद की तलवार के नीचे गर्दन कर देने के अतिरिक्त और क्या कर सकता हूँ मैं?"[1]

बुलन्द अख्तर सफीयतुन्निसा की भाँति ही अहिंसा में विश्वास करने लगता है। वह सफीयतुन्निसा से कहता है कि... "तुमने ही तो एक दिन कहा था... हिंसा और असत्य से तलवार की शक्ति से संग्राम करना भूल है। तलवार से तुम बुरे को मार सकते हो बुराई को नहीं। उसी दिन से मैं इस प्रश्न पर निरन्तर सोचता रहता हूँ। जिस पथ पर हिंसा की होड़ लगी हुई हो उस पर बुलन्द अख्तर नहीं जियेगा।"[2]

"शक्ति साधना" नाट्यकृति में अन्तिम मौर्य सम्राट बृहद्रथ सम्राट अशोक का अनुसरण करके अहिंसा के मार्ग का अवलम्बन ग्रहण करने का प्रयास करता है, परन्तु वह अहिंसा का उपयुक्त तात्पर्य न समझ सकने के कारण तदनुकूल आचरण नहीं कर पाता। पुष्पमित्र को दुःख है कि सम्राट ने सम्राट अशोक के कर्मों और वचनों का विपरीत अर्थ लगाकर देश के गौरव को कम किया है, बौद्ध–धर्म गुरू बादरायण भी अहिंसा मार्ग पर चलने का पक्षधर है। उसने वृहद्रथ को पथभ्रष्ट कर दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप देश के अधिकांश भाग पर स्वर्गीय द्विमित्र के जमाता मिलिन्द का अधिकार हो गया है, अतः पुष्पमित्र अहिंसा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करता हुआ कहता है... "अहिंसा बलवान का शस्त्र है दया करना समर्थ और बलवान को शोभा देता है। आपके वक्षस्थल पर सिंह अपना खूनी पंजा रख कर सवार हो और आप कुछ न कर सकने के कारण कहें... ष्मैं अहिंसक हूँ, मैं किसी प्राणी पर शस्त्र नहीं उठाऊँगा तो आपका यह कथन पाखण्ड ही कहा जा सकता है।"[3] मगध सेनापति पुष्पमित्र, सम्प्रति सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के पथ पर चलने का परामर्श देता है। वह तलवार का उत्तर तलवार ही मानता है। इसके विपरीत धर्माध्यक्ष बादरायण के कहने से सम्राट बृहद्रथ अपने साम्राज्य की सीमा कम होने पर भी अहिंसा के प्रभाववश शत्रु से युद्ध नहीं करना चाहता।

सेना का निरीक्षण करते हुए बृहद्रथ को महर्षि पातंजलि सुनियोजित ढंग से क्रुद्ध करते हैं। वे क्रुद्ध सम्राट से कहते हैं कि देश को परपंच बनाने वाले विदेशियों पर उन्हें क्रुद्ध होना चाहिये था। इस सम्बन्ध में बृहद्रथ कहता है... "धर्म ने हमारे हाथ बाँध रखे हैं, हम अहिंसा के पथ के पुजारी हैं और प्रियदर्शी सम्राट अशोक ने मौर्य राजनीति से युद्ध को सदा के लिये तिलांजलि दे दी थी। उन्होंने धर्म विजय का प्रेम

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–80
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–9
3. शक्ति साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–9

से हृदयों को जीतने का मार्ग अपनाया था और उसमें सफलता प्राप्त की थी। हम अपना स्वर्स्व समर्पित कर सकते हैं। लेकिन धर्म का पथ नही छोड़ सकते।"[1]

महर्षि पातंजलि... सम्राट को इस तथ्य से अवगत कराते हैं उनका राजधर्म के पद पर प्रतिष्ठित अहिंसा को प्राथमिकता देने वाले बौद्ध–धर्म से कोई विरोध नहीं है, क्योंकि भारत के सभी धर्मों के मूल में अहिंसा का गुण विद्यमान है वे अहिंसा को सच्चे अर्थ में समझने पर बल देते हुये कहते हैं... "अहिंसा का अर्थ साहसहीनता और कायरता नहीं है। जब तक संसार में एक देश दूसरे देश को गुलाम (दास) बनाने का प्रयत्न करता रहेगा, तब तक कोई एक देश विमुख रहकर, शत्रुका मुकाबला सेवा से करने की तैयारी रखे बिना जीवित नहीं रह सकता।"[2] बृहद्रथ सम्राट अशोक का उदाहरण प्रस्तुत करके उन्हीं का वंशज होने के कारण उनके संकल्प के अनुसार हिंसा को रोकना चाहता है। उसके इन विचारों से अवगत पातंजलि सदुपदेश करते हैं... "गाय सिंह के हवाले कर देना क्या अहिंसा है.... दया और क्षमा भी मानव के धर्म हैं, तो शक्तिवान होना और उपयुक्त समय पर देश और धर्म की रक्षा के लिये शक्ति का प्रयोग करना भी धर्म है।"[3] पुष्पमित्र भी अपने पुत्र अग्निमित्र के समक्ष स्वीकार क़रता है.... "अहिंसा मानव का उच्चतम गुण है।"[4]

"रक्तरेखा" नाटक में अरब बन्दी के उद्‌गारों से ज्ञात होता है कि वह हिंसा में विश्वास रखता है। वह शक्ति का प्रयोग करके अपना महत्व अक्षुण्य रखना चाहता है। मंत्री क्षपाकर उस अरब बन्दी को भारतीय संस्कृति कर महत्व बताता हुआ हिंसा वृत्ति त्यागने का उपदेश देता है। वह कहता है... "भारत की चिर पुरातन संस्कृति ने इसे वीर और पराक्रमी के साथ तपस्वी, त्यागी और सहानुभूतिशील बनाया है इसे सारे संसार को सुख शान्ति और प्रेम का सन्देश देना है। मैं कहता हूँ, भाई दूसरों के देशों में जाकर देखो हिंसक पशुओं की भाँति उन्मुक्त होकर घूमना छोडें। सारे मनुष्य एक हैं... सबको अपने विश्वास परम्परा और संस्कृति के अनुसार जीवन यापन करने का अधिकार है। इस तथ्य को समझो।"[5]

"प्रतिशोध" नाट्यकृति में गम्भीर सिंह हरदौल के विषय में बताता है कि हरदौल चाहता तो बड़े भाई से राज्य गद्दी ले लेता, लेकिन भाई के दुःख दर्द को दूर करने के लिए आत्म बलिदान दे देता है... "जुझार सिंह वीर थे, पराक्रमी थे, किन्तु हरदौल सिंह के एक इशारे से उनका सिंहासन उलट सकता था, लेकिन हरदौल बड़े

1. शक्ति साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–35
2. शक्ति साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–36
3. शक्ति साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37
4. शक्ति साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–51
5. रक्त रेखा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–28

भाई को सच्चे दिल से प्यार करते थे, भाभी को माँ की भाँति मानते थे, पर भाभी के आंचल पर अपयश का दाग लगा था, उसे नहीं धो सकते थे। उसे धोने के लिए प्राणों के बलिदान ही की आवश्यकता थी। यदि उस देवी के प्रति जुझार सिंह के हृदय में सन्देह का एक कण भी छिपा रह जाता तो उससे सम्पूर्ण बुन्देला जाति का मस्तक सदा के लिए लज्जा से झुका रहता हरदौल ने अपने प्राण देकर बुन्देलो के यश की रक्षा की।"[1]

"बन्धन" नाटक में भी अहिंसा का वर्णन है। प्रकाश की बहिन मालती अहिंसा की समर्थक है। वह प्रकाश से कहती है.... "उधर देखें, दीवार पर शंकर की मूर्ति क्या कहती है। जो दूसरों का गरल पी लेता है वह मरता नहीं है। ....जो प्रेम से अपने शरीर पर सर्पों को रेंगने देता है, उसे सर्प डसने का साहस नहीं करते, प्रेम की शक्ति को समझो।"[2] वह हिंसा में विश्वास करने वाले भाई को प्रेम का महत्व बताती है। इसमें हिंसा पर अहिंसा की विजय प्रदर्शित की गयी है।

"अमर आन" नाट्यकृति में अमर सिंह ने शहबाज खाँ को एक कटोरा पानी पिला कर उसकी प्राण रक्षा की तथा स्वयं प्यासे ही रहे इससे प्रभावित होकर शहबाज खाँ कहता है... "आप मुझे मर जाने देते अपने आप को प्यासा क्यों रखा? तब उन्होंने कहा था मनुष्य वह है जो दूसरो के लिए कष्ट सहे... आवश्यकता पड़ने पर प्राण दे दे। अपने लिए जीवित रहना जीवन नहीं है।"[3]

अहाड़ी रानी की दासी गुलाब रानी को अहिंसा के विषय में बताती हुई कहती है... "सताये जाने पर निर्बल भी हिंसक हो उठता है। लेकिन हिंसा करना बड़ी वीरता नहीं है। हिंसा का अहिंसा से प्रतिरोध करने के लिए महाप्राण चाहिये।"[4]

"संवत् प्रवर्त्तन" नाटक में एक पात्र शाह हिंसा में विश्वास करता है। वह आचार्य कालक से कहता है... "प्रत्येक बलवान प्राणी अपने से दुर्बल प्राणी को खाता है। वह प्रकृति का नियम है, इसके उत्तर में आचार्य कालक अहिंसा का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं... "किन्तु मुनष्य की प्रकृति ने ज्ञान की आँखें दी हैं, विवेक दिया है और संयम की शक्ति दी है। वह वन्य पशुओं की भाँति विवेक हीन हिंसा के पथ पर क्यों चलें? जियो और जीने दो। दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझो। भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे का रक्त न बहाओ यही हम भारतीयों की संस्कृति सिखाती है।"[5]

1. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-21
2. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-53
3. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-44
4. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-44
5. संवत् प्रवर्त्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-27 व 28

"स्वर्ण विहान" गीत नाटिका में मोहन अहिंसा और प्रेम से अत्याचार मिटाने के लिए आग्रह करता है....

"अहिंसा और प्रेम से बन्धु,
मिटाना है यह अत्याचार।
कभी तलवारों की कटुधार,
काटने मत लेना तलवार।।"[1]

"अमर आन" नाटक में अमर सिंह राठौर की पत्नी अहाड़ी रानी भी अहिंसा में अहिंसा में विश्वास करती है। वह कहती है... "भारत का हित इसी में है हम एक–दूसरे का विश्वास करें... हिंसा को हिंसा से शान्त करना असम्भव है।"[2]

इस प्रकार "प्रेमी" जी ने गाँधीवाद के आधारभूत सिद्धान्तों के प्रमुख तत्व अहिंसा को अपने नाटकों में स्थान दिया है। अहिंसा में हम आपस के बैर–भाव भुलाकर दूसरों का हृदय परिवर्तन करके सदा के लिए अपना बना लेते हैं। गाँधी जी ने सत्य और अहिंसा को अमोध अस्त्र कहा है, क्योंकि प्रेम से जीता हुआ प्राणी हमेशा ही अपना हो जाता है।

3. सत्याग्रह एवं इसके विभिन्न तत्व

(क) असहयोग:

गाँधी जी ने भारत में अंग्रेजी सत्ता को समाप्त करने के लिए जिन अस्त्रों का सहारा लिया उनमें असहयोग एक प्रधान अस्त्र था। "प्रेमी" जी ने अपने नाटकों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से असहयोग का वर्णन किया है।

"स्वर्ग विहान" गीत नाटिका में प्रेमी जी ने एक अत्याचारी राजा का शासन समाप्त करने के लिए जनता से असहयोग का आह्वान किया है।

"वहाँ कमी क्या है पशुबल की, तुम पर कहाँ तोप तलवार?
असहयोग का महामंत्र ही, है जग के दुःख का उपचार।
असहयोग की समरनीति है, अलग प्रीति जिसका हथियार।
कर प्रहार यदि सका प्रीति का, तो हो जुल्मों का संहार।
सारा देश एक हो कर यदि नया बना ले राज्य उदार।
प्राण, मान, घर–द्वार तजे, पर करे न नृप सत्ता स्वीकार।
तो कितने दिन टिक सकता है,किसी निठुर का अत्याचार?"[3]

---

1. स्वर्ण विहान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–43
2. अमर आम : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–95
3. स्वर्ग विहान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–8

इसी नाटिका में एक पात्र सन्यासी जनता से आग्रह करता है जिसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण जनता राजा के अत्याचार का विरोध करती हुई असहयोग प्रारम्भ कर देती है और जेले भर डालती है। इस विरोध में राजा का सेनापति भी जनता का सहयोग करता है। सेना भी राजा का साथ नहीं देती और अपने अस्त्र फेंक कर असहयोग प्रदर्शन करती है। राजा रणधीर जनता के इस असहयोग को अन्यायपूर्ण मानता हुआ अपनी पुत्री से कहता है–

"कैसा है अन्याय बनाते अपनी ही सरकार।
देते नहीं टैक्स, भर डाले सारे कारागार।।"

पर अन्त में जनता की विजय होती है।

सेनापति नाटिका के प्रमुख पात्र मोहन से कहता है कि सत्याग्रह से तुमने सबको जीत लिया है। राजा भी अब क्रूर नहीं रहेगा, इस सम्बन्ध में सेनापति का कथन दृष्टव्य है...

"देव तुम्हारे सत्याग्रह से टकराकर होगा अब चूर।
तुमने जीत लिए मन सबके, रह न सकेगा नृप भी क्रूर।।"[1]

"संवत् प्रवर्त्तन" नाट्यकृति में गर्दभिल्ल दर्पण अन्यायी शासक है। वह आचार्य कालक की बहिन सरस्वती का बलात् हरण करवा लेता है। सरस्वती छुटकारा पाते ही गर्दभिल्ल दर्पण के अन्यायपूर्ण शासन में देशवासियों से उनके इस शासन में सहयोग न करने के लिये आचार्य कालक से कहती है। इस सम्बन्ध में सरस्वती का कथन दृष्टव्य है... "शकों के पैर हमारे देशवासियों की सहायता पर ही टिके हुए है। शक और भारतीयों के सहयोग का आधार भय अथवा स्वार्थ है कौन सा नीच होगा जो विदेशी शासन का अन्त नहीं चाहेगा, किन्तु लोग आतंकित हैं। उन्हें विश्वास नहीं है कि सर्वसाधारण संगठित होकर एक सबल सशक्त शक्ति से लोहा लेकर विजय पा सकते हैं। भैया हमें सर्वसाधारण को एक सूत्र में बाँधकर उन्हें एक महान शक्ति में परिवर्तित करना है।"[2]

इसी प्रकार अन्य अनेक नाटकों में प्रेमी जी ने असहयोग का प्रत्यक्ष एवम् परोक्ष रूप से चित्रण किया है। जहाँ–जहाँ असन्तोष और अत्याचार है, उसके प्रतिरोध के लिए प्रेमी जी अपने पात्रों को असहयोग के लिए प्रेरित करते हैं, उनके अन्दर अहिंसक विरोध की भावना भर देते है तथा उनके पात्र असहयोग का मार्ग ग्रहण करते हुए सफलता भी प्राप्त करते हैं।

1. स्वर्ग विहान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–80
2. संवत् प्रवर्त्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–69

विदा नाटयकृति में औरंगजेब का पुत्र अकबर अपने पिता विरूद्ध हिन्दुओं का पक्ष लेता हैं, लेकिन यह बात औरंगजेब को बुरी लगती है। वह जाली पत्र अकबर के नाम लिखता है। वह पत्र अकबर के पास न पहुँचाकर महारानी के पास पहुँचादेता है। पत्र पढ़ कर हिन्दू अकबर का सहयोग नहीं करते हैं। इस सम्बन्ध में अकबर का कथन दृष्टव्य है....."तो क्या आप लोगों को विश्वास हो गया कि मैं अब्बाजान से मिलकर आप लोगों के विरूद्ध षडयन्त्र कर रहा हूँ।"[1]

"कीर्ति स्तम्भ" नाटक मे सूरजमल अपनी बहिन ज्वाला को बताता है कि अन्याय के बल पर यदि राज्य को स्थापित कर भी लो तो प्रजा अवश्य ही असयोग करेगी और वह शासन कुछ काल में ही समाप्त हो जायेगा। सूरजमल का कथन दृष्टव्य है........"जिस राजा से प्रजा घृणा करती है, उसकी सत्ता बालू के दुर्गा के समान है जरा से धक्के से वह धराशायी हो जाता है हमारे सामने पिता का ही उदाहरण उपस्थित है। वह अपने पिता की हत्या कर मेवाड़ का राजसिंहासन हस्तगत करने मे सफल हुए, किन्तु जन साधारण एवं न्यायाप्रिय सामंतो ने उन्हें मेवाड़ का महाराणा स्वीकार नही किया। अपने समर्थको की संख्या बढ़ाने के लिए उन्होंने अनेक व्यक्तियों को जागीरें दी। अनेक जागीर दारों को लगभग स्वतंत्र कर दिया। मेवाड़ राज्य के इलाके, मालवा के सुल्तान, गुजरात के बादशाह और दिल्ली पति को भेंट कर उनकी सहायता प्राप्त की, किन्तु राज्य लिप्सा की ज्वाला में उन्हें स्वंय ही भष्म हो जाना पड़ा।"[2]

"रक्षाबन्धन" नाट्यकृति में कर्मवती हुमायूँ को राखी भेजती है उसे भाई स्वीकार करती है। हुमायूँ भी कर्मवती की राखी स्वीकार करके मेवाड़ की रक्षार्थ सहयोग करने के लिए तैयार हो जाता है, लेकिन तातार खॉ हुमायूँ को मेवाड़ की रक्षा के कार्य में सहयोग न करने के लिए कहता है। इस सम्बन्ध में तातार खाँ का कथन उल्लेखनीय है........"एक काफिर कौम को मुसलमानो के खिलाफ मदद दे रहे हैं, क्या यही खुदा की हिदायत है।"[3]

तातार खाँ के उक्त संकेत में असहयोग का ही संकेत मिल रहा है। इस प्रकार से प्रेमी जी ने अपने नाटको में असहयोग का वर्णन किया है।

(ख) सविनय अवज्ञा आन्दोलन :-

महात्मागॉधी के सत्याग्रह के सिद्धान्त के अर्न्तगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। गॉधी जी ने अपने इस अस्त्र का प्रयोग भी

1. विदा – हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–120
2. कीर्ति स्तम्भ– हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ– 136, 137
3. रक्षाबन्धन– हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ– 38

अंग्रेजी सत्ता के विरोध में अनेक बार किया और अपने लक्ष्य के निकट पहुँचने मे इस आन्दोलन के सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त हुए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन का अर्थ होता है कि कोई बात यदि असत्य है किन्तु सरकार अथवा अन्य कोई सत्ता अपनी शक्ति प्रयोग द्वारा उस बात को सत्य के रूप में पूर्ण करा रही है तो व्यक्ति को चाहिये कि उस असत्य का विरोध विनय पूर्वक करे तथा विनय के साथ ही ऐसे आदेश की अवज्ञा करे। यही सविनय अवज्ञा आन्दोलन है। एक पत्र में गाँधी जी ने अपने इस मन्तव्य को व्यक्त करते हुए लिखा था– "जब किसी व्यक्ति या राष्ट्र की आत्मा को आघात पहुँचता हो तब सविनय अवज्ञा करना, उसका अधिकार है धर्म है।"[1]

प्रेमी जी के नाटकों में यद्यपि सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रत्यक्ष रूप में अधिक उदाहरण प्राप्त नहीं होते तथापि अनेक स्थानों पर परोक्ष रूप में इस प्रकार के उदाहरण मिल जाते हैं, जो सविनय अवज्ञा आन्दोलन की भावना के अनुरूप है।

एक उदाहरण आन का मान नाटक का दृष्टव्य है। इस नाटक मे एक स्थल पर अकबर की बेटी सफीयतुन्निसा अपने भाई बुलन्दअख्तर से वार्तालाप करती हुई हिन्दुओं की उस अवस्था का वर्णन कर रही है। जब वे अनेक प्रकार की यातनाओं की सहते हुए भी जजिया कर नहीं दिया करते थे और चुपचाप उन यातनाओं को सह लेते थे। सफीयतुन्निसा का कथन दृष्टव्य है– "हिन्दू सैकड़ो की संख्या में बन्दीगृह जाते, कोड़े खाते, सर कटवाते लेकिन जजिया नहीं देते तो मुझे भरोसा है। बाबा जान का हृदय भी काँप जाता होगा।"[2] निःसन्देह इस कथन मे हिन्दू जनता की जिस भावना का दिग्दर्शन प्रेमी जी ने कराया है वह भावना सविनय अवज्ञा आन्दोलन की ही है। मुगल सत्ता द्वारा बल पूर्वक अपने गलत आदेश को जनता के ऊपर थोपा गया पर जनता ने कष्ट सहते हुए भी उसका विनयपूर्वक विरोध किया यही सविनय अवज्ञा है। वस्तुतः गाँधी जी जानते थे कि एक बड़ी सत्ता से टकराने के लिए हथियारों की नहीं आत्मबल और सत्य की आवश्यकता है। प्रेमी जी ने भी अपने इस भाव को ग्रहण करके इतिहास से ऐसे विषयों का चयन किया । जिनमें वे महात्मागाँधी के सिद्वान्तों का प्रतिपादन कर सकते थे। सविनय अवज्ञा का भी यत्र तत्र प्रतिपादन हुआ है। एक अन्य उदाहरण स्वर्ग विहान गीति नाटिका से लिया जा सकता है। यद्यपि इस नाटिका का उल्लेख अनेक सन्दर्भो में भी विस्तार से किया जा चुका है। यहाँ पर उसका संक्षिप्त उल्लेख ही पर्याप्त होगा इस नाटक में एक अत्याचारी राजा जनता पर निरन्तर अत्याचार करता है। इस निरंकुश राज्य का विरोध करते हुए एक सन्यासी जनता के बीच में राजा के प्रति विरोध की भावना का संचार करता है। वह जनता का इस बात के लिए आह्वान करता है कि जनता राजा के अन्यायपूर्ण आदेशों की अवज्ञा करे

1. हिन्दी नव जीवन पत्रः–(मौ0 अली के नाम लिखे गये पत्र से) दिनांक–10/02/1924
2. आन का मान– हरिकृष्ण प्रेमी– पृष्ठ संख्या–31

उन्हें टैक्स न दें और उनकी जेलें भर दें। सन्यासी के इस आह्वान का प्रभाव पड़ता है और जनता राजा के अन्यायपूर्ण आदेशों की विनय पूर्वक अवज्ञा करती है। लोग टैक्स नहीं देते हैं और राजा की जेले भर देते है। यहाँ तक कि राजा की सेना और सेनापति भी जनता का ही साथ देते हैं। सेना अपने हथियार फेंक देती हैं। सेनापति भी जनता का ही पक्ष लेता है। जनता की इस सविनय अवज्ञा से परेशान होकर स्वंय राजा अपनी पुत्री से कहता है–

"कैसा है अन्याय बनाते अपनी ही सरकार।
देते नहीं टैक्स, भर डाले सारे कारागार।।"[1]

राजा का उपरोक्त कथन ही इस बात का प्रमाण है कि जनता सविनय अवज्ञा कर रही है। यही भावना गाँधी जी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की है। इसी प्रकार से अन्य कृतियों में भी प्रेमी जी ने ऐसे अनेक प्रसंग रखे हैं। जहाँ कोई न कोई पात्र किसी न किसी अन्यायपूर्ण आदेश का शान्ति से विरोध करता है। यह विरोध पारिवारिक अत्याचार के विरोध में भी हो सकता है। मूल रूप से इस आन्दोलन की भावना यही है कि अन्याय का प्रतिकार आत्मबल के आधार पर किया जाये तथा अन्यायपूर्ण नियमों और आदेशों की अवहेलना की जाये। भले ही उसके लिए कितने ही कष्ट सहन करने पड़ें। प्रेमीजी इसी भावना का प्रतिपादन अनेक स्थलों पर किया है।

(ग) उपवास:

उपवास का भारतीय संस्कृति में अत्यधिक महत्व है। प्रायः जन सामान्य उपवास का तात्पर्य अन्न त्याग या निराहार रहना समझते हैं। वस्तुतः जन सामान्य की यही धारणा लोक परम्परा पर आधारित है। प्रायः लोग उपवास में निराहार ही रहते हैं। उपवास का तात्पर्य है ईश्वर के समीप स्थित होना। उप का अर्थ होता है "निकट" और वास का अर्थ होता है– "रहना"। अतः जब कोई भक्त या साधक ईश्वरीय साधना में लीन होता था तो स्वाभाविक रूप से ईश्वर के समीप अपनी आत्मा को स्थापित कर लेने के कारण उसका ध्यान सांसारिक वस्तुओं से हट जाता है। उसे भोजन करने की सुधि ही नहीं रहती वस्तुतः यह ध्यान की एक प्रक्रिया है जिसमें सम्पूर्ण चेतना ईश्वरीय ध्यान में लीन रहती है और भोजन या आहार का बोध नहीं रहता साधकों की प्रक्रिया ने ही उपवास का सम्बन्ध आहार न लेने से जोड़ दिया। अब सामान्य व्यक्ति कुछ विशिष्ट पर्वो पर भोजन त्याग करके यह मान लेता है कि वह उपवास कर रहा है।

---

1. स्वर्ण विहान– हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–21

महात्मा गाँधी ने भारतीय संस्कृति के मर्म को गहनता के साथ समझा था। वे जानते थे कि उपवास का जीवन में अत्यधिक महत्व है। इससे शरीर शुद्धि तो होती है। आत्मा भी बलशाली होती है। भोजन त्याग करने के लिए ही दृढ़ इच्छा शक्ति और गहरे आत्मबल की आवश्यकता होती है। इसलिए गाँधी जी ने समय–समय पर उपवास किये। इस उपवास को सत्याग्रह एवं आमरण अनशन का रूप दिया और लोंगों को उपवास के महत्व से परिचित कराया। महात्मा गाँधी ने यह भी बतलाया कि उपवास भारतीय धर्म की भाँति ही ईसाई एवं इस्लाम धर्म में भी विद्यमान है। उन्होंने एक बार हरिजन सेवक पत्र में लिखा– "उपवास आदि काल से चला आ रहा है। यह आत्मशुद्धि अथवा किसी उच्च्य या नीच हेतु की सिद्धि के लिए किया जाता है। बुद्ध, ईसा तथा पैगम्बर मुहम्मद ने ईश्वर–साक्षात्कांर के लिए उपवास किये थे। रामचन्द्र जी ने अपनी वानर सेना के लिए मार्ग देने हेतु सागर के सामने उपवास किया था।"[1] एक अन्य अवसर पर महात्मा गाँधी ने उपवास का महत्व बतलाते हुए कहा... "जब मानवीय बुद्धि काम नहीं करती तो अहिंसा का पुजारी उपवास करता है। उपवास से मन प्रार्थना की ओर तेजी से झुकता है यानि उपवास एक आत्मिक वस्तु है और उसका रुख ईश्वर की ओर होता है।"[2]

महात्मा गाँधी ने विविध अवसरों पर उपवास के सन्दर्भ में जो विचार व्यक्त किये और उनका वैयक्तिक एवं राजनीतिक जीवन में जो प्रयोग किया। उससे सिद्ध हो गया कि उपवास एक आध्यात्मिक विचार है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति के आत्मबल से है। प्रार्थना आत्मशुद्धि, पश्चाताप, हृदय परिवर्तन उपवास के ही आश्रित अंग हैं।

प्रेमी जी ने महात्मा गाँधी के विभिन्न विचारों को अपने साहित्य में प्रतिपादित किया है। उपवास का भी यत्र तत्र उल्लेख मिल जाता है। उपवास का प्रथम चरण है अन्न त्याग इस सन्दर्भ मे एक उदाहरण दृष्टव्य है–

"प्रतिशोध" नाटक में औरंगजेब अपनी मौसी से मिलने बुरहानपुर गया था। उसके साथ उसकी बहिन जहॉनारा भी थी। वहॉ पर मौसी की बॉदी हीराबाई जब एक दिन बगीचे में आम तोड़ने गई, तो औरंगजेब को उससे मुहब्बत हो गई और वह एकदम बेसुध और बेचैन हो जाता है तथा बेहोश हो जाता है। वह उसकी मुहब्बत में इतना डूब जाता है कि उसे पाने के लिए मान मर्यादा को ताक पर रख कर खाना पीना छोड देता है। हार कर औरंगजेब की मौसी ने हीराबाई औरंगजेब को सौंप दी इस सम्बन्ध में जहॉनारा का कथन दृष्टव्य है– "वह जिन्दगी के एक कुदरती जज्बे की सच्चाई थी। भैया वह इन्सानियत थी। तुम खाना पीना छोड़ बैठे, तुम्हें दुनियॉ का

1. ह0 ज0/ह0 से0 : 25/03/1939
2. हरिजन सेवक पत्र, महात्मागॉधी 21/12/1947, नई दिल्ली 14/12/1947

शर्मो लिहाज न रहा। तब मौसी ने हीराबाई तुम्हारे हवाले करके तुम्हारी जान बचाई थी।"[1] जहानारा के उक्त कथन में उपवास के दर्शन हो रहे हैं।

एक अन्य प्रसंग स्वर्ण विहान गीति नाटिका का है। यह एक सामाजिक नाटक है। इसमें एक निष्ठुर राजा के अत्याचार से जनता त्रस्त है। जनता में राजा के विरूद्ध एक विद्रोह की चेतना पनप रही है। एक सन्यासी उस सम्पूर्ण चेतना को और अधिक तीव्र कर रहा है वह जनता से कहता है कि जब तक स्वतंत्रता न मिल जाये तब तक हमे अपने सर्वस्व बलिदान के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए और सब कुछ त्याग कर, अन्न जल त्याग कर अपने प्राणविर्सजन के लिए भी तैयार रहना चाहिए–

"कोटि कोटि कठों से गूँजे,
यही गीत केवल यह तान।
अव स्वतंत्र जन ही बन लेंगे,
अथवा हम देबेंगे प्राण।।"

वस्तुतः गाँधी जी ने उपवास का जिस प्रकार आमरण अनशन के रूप मे, सत्याग्रह के एक अंग के रूप में प्रयोग किया था यह उदाहरण उसका ही एक रूप है जैसा कि उल्लेख किया है कि उपवास सत्याग्रह का ही एक अंग है और उसमें हृदय परिर्वतन पश्चाताप प्रार्थना सभी समाहित हैं। अतः प्रेमी जी के नाटकों में अनेक स्थलों पर इसका उल्लेख किया गया है।

शोध प्रबन्ध में अन्यत्र भी इन बातो का उल्लेख है अतः उन्हीं दृष्टान्तों को पुनः दोहराना पुनरावृत्ति मात्र होगी।

(घ) हिजरतः

हिजरत का शब्द कोश के अनुसार अर्थ होता है, देश छोड़ देना, परदेश में बसना या प्रवास। देश छोड़ देने के अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु व्यवहारिक रूप में किसी राजा के अत्याचार या गलत नीतियों के कारण देश त्याग देने को हिजरत कहा गया है। महात्मा गाँधी ने सत्याग्रह के अन्तर्गत हिजरत को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने अंग्रेजी सत्ता के अत्याचारों का विरोध करने के लिए लोगों को हिजरत करने की सलाह दी थी। एक घटना का उल्लेख तो किया ही जा चुका है। सन् 1928 में वारडोली के किसानो पर बम्बई सरकार द्वारा जब भीषण अत्याचार किये गये तो गाँधी जी ने उन्हें हिजरत की सलाह दी और वे किसान उस स्थान को त्याग कर पड़ोस के बडौदा राज्य में जाकर बस गये। स्पष्ट है कि गाँधी जी ने हिजरत को व्यावहारिक रूप भी प्रदान किया।

---

1. प्रतिशोध– हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–64

प्रेमी जी ने अपने अनेक ऐतिहासिक नाटकों में हिजरत का भी समावेश किया है। प्रायः राजदरवारों में षड़यन्त्र चला करते थे। ये सम्पूर्ण षड़यन्त्र सिंहासन के लिए होते थे। इनमें से लोग तो संघर्षरत रहते थे एवं कुछ राजपरिवार के व्यक्ति अत्याचारों के कारण उस राज्य की सीमा को त्याग कर दूर चले जाते हैं।

"रक्षाबन्धन" नाटक में प्रेमी जी ने इस बात का चित्रण किया है कि गुजरात के बादशाह बहादुर शाह का भाई चॉद खॉ अपने भाई बहादुर शाह के अत्याचारो से त्रस्त होकर वहॉ से भाग कर मेवाड़ में आ छुपता है। यद्यपि बाद में मेवाड़ को इसका दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है। चॉद खॉ का इस प्रकार भागना हिजरत का ही उदाहरण है। इसी नाटक में विक्रमादित्य अपने प्राणों के भय से अपना राज्य त्याग कर जंगल में शरण लेता है। यह भी हिजरत ही है।

"आहुति" नाटक में दिल्ली के बादशाह का एक सिपहसालार मीर महिमा अपने राजा की गलत बात का विरोध करता है इस पर राजा क्रुद्ध होकर उसे देश की सीमा से बाहर निकाल देता है। मीर महिमा महाराणा हम्मीर सिंह के पास शरण लेता है और रणथम्भौर में रहता है। मीर महिमा का प्रवास हिजरत ही है।

प्रेमी जी ने विदा और आन का मान नाटकों में अकबर के पलायन को चित्रित किया है। वस्तुतः औरंगजेब की गलत नीतियों का उसके पुत्र अकबर तथा पुत्री जेवुन्निसा खुले आम विरोध करते हैं एवं विद्रोह की आवाज भी उठाते हैं। औरंगजेब अपनी पुत्री को तो बन्दी बना लेता है एवं अकबर को मारवाडियों से युद्ध करने के लिए भेज देता है लेकिन अकबर मारवाडियों से युद्ध नहीं करता। वह उनसे मिल जाता है और शम्भा जी से सहायता मॉगता है पर शम्भा जी उसकी सहायता नहीं करता। तब अकबर उदास हो जाता है और अपने एक सेवक दुर्गादास से कहता है कि उसे भारत से अनन्य प्रेम है। पर उसकी आशाएं समाप्त हो चुकी हैं, अतः वहा यहॉ रहना नहीं चाहता। अकबर अपने दो छोटे शिशुओं सफीयतुन्निसा एवं बुलन्द अख्तर की देख भाल का दायित्व दुर्गादास को सौंप कर ईरान चला जाता है। इस प्रसंग का वर्णन प्रेमी जी ने दोनो ही नाटकों में अलग-अलग सन्दर्भों में किया है।

प्रेमी जी के 'भाई-भाई' नाट्यकृति में एक पात्र सूर्य कुमारी में पलायान वादी भाव है। वह देश छोड़ कर जाना चाहती है किन्तु जब उसकी दासी चमेली उसे षड़यन्त्रो के बारे में बताती है तो वह बालक मोकल के लिए जंगल में जाने का निश्चय करती है। चमेली कहती है-

"भोली हो राजमाता यह तो कर्तव्य से पलायन करना है। भारत की यही तो भूल है कि वह कर्तव्य से घबराकर वैराग्य के पथ पर अग्रसर होना चाहता है।-- जिस पर मनुष्य समाज के उद्धार का दायित्व है। वे अपने लिए मुक्ति का मार्ग

खोजते फिरते है।"[1]

प्रेमी जी ने अन्य नाटकों में भी इतिहास के ऐसे प्रसंग चित्रित किये हैं। जहाँ किसी न किसी के अत्याचार से त्रस्त होकर या अत्याचारी से बदला लेने की भावना से लोगों ने अपने राज्य की सीमा का त्याग किया है। उनके संवत प्रर्वतन नाटक में भी इस प्रकार के संकेत मिलते हैं। इसमें विक्रम वेताल एवं भर्तृहरिन एवं सरस्वती अपने राज्य स्वतंत्र कराने के लिए छद्‌म भेष में अपने राज्य से बाहर घूमते रहते हैं। इसी प्रकार शीशदान नाटक में भी स्वाधीनता संग्राम सेनानी तात्याटोपे को केन्द्र बना कर सम्पूर्ण नाटक की रचना की गई है। इसमें एक प्रसंग आया है कि नाना साहब अंग्रेजो से बदला लेने के लिए सेना का नेतृत्व करते हैं किन्तु एक देश द्रोही के अंग्रेजो से मिल जाने के कारण कानपुर में भारतीयों की पराजय होती है। इससे नाना दुखी होकर कानपुर से विठूर आ जाते है और फिर विठूर में अपनी पूरी सम्पत्ति को त्याग कर अपने परिवार के साथ नाव पर बैठकर चले जाते हैं एवं जाते समय अपनी तलवार भी तात्या को पकड़ा देते हैं। इस प्रसंग में नाना का विठूर आना एवं विठूर से पलायन हिजरत ही है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रेमी जी ने महात्मा गाँधी की भावना के अनुरूप ही हिजरत का अपने नाटकों में यत्र तत्र प्रयोग किया है।

(ड.) धरना एवं हड़ताल :

धरना एवं हड़ताल महात्मागाँधी के सत्याग्रह की लड़ाई के अभिनव अस्त्र थे। धरना के अर्न्तगत वे अपनी बात को मनवाने के लिए किसी प्रष्ठिान, दुकान के सामने या किसी स्थल पर एक आसन पर बैठ जाते थे। उनकी शिक्षा थी कि धरने के समय किसी प्रकार का अनैतिक आचरण नहीं करना चाहिए। उन्होंने अपने अनुयायियों को धरना के सन्दर्भ में कुछ विशेष निर्देश भी दिये थे। जिनका आशय था कि धरने पर बैठे व्यक्ति को कुछ खान पान की वस्तु ग्रहण नहीं करनी चाहिए, नारेबाजी नहीं करनी चाहिये, दुकानदार (जिसके विरूद्ध धरने पर बैठे हैं) से अपने व्यवहार को मधुर एवं शालीन रखना चाहिये, यातायात में बाधा नहीं डालनी चाहिये तथा धरना देते समय सामने वाले की सुविधा का भी पूर्ण रूपेण ध्यान रखना चाहिये। वस्तुतः गाँधी जी ने यह आन्दोलन मादक पदार्थो की बिक्री रोकने हेतु तथा विदेशी वस्त्रों की बिक्री एवं उपयोग रोकने के लिए प्रयोग किया था एवं उसमें वे लोगों को जागरूक बनाने में सफल हुए थे।

धरना की तरह सत्याग्रह का हड़ताल भी एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अर्न्तगत भी किसी अन्याय का प्रतिकार कराने के लिए समस्त कारोबार तथा प्रतिष्ठान

1. भाई–भाई हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–9

कराये जाते हैं। यह वाद इस बात का प्रतीक है कि जनता के अन्दर विरोध की ा कितनी प्रबल है। गाँधी जी हड़ताल को भी संयम के साथ करने का परामर्श थे उनका स्पष्ट निर्देश था कि किसी भी व्यक्ति की दुकान या कारोबार को पूर्वक बन्द नहीं कराना चाहिये उनका कथन था "किसी के ऊपर किसी प्रकार दबाव नहीं डाला जाना चाहिये एवं न व्यापार बन्द रखने के लिए किसी के ऊपर व या बल प्रयोग नहीं होना चाहिये क्योंकि जबरदस्ती से कराई गई दुकान ी–बन्दी है ही नहीं।"[1]

स्पष्ट है कि धरना एवं हड़ताल दोनों ही गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित याग्रह अन्दोलन के विशिष्ट अस्त्र थे। जब हम हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में गाँधी के इन सिद्धान्तों का अन्वेषण करने का प्रयास करते हैं तो वे प्राप्त नहीं होते। तुतः धरना एवं हड़ताल दोनों का मुख्य सम्बन्ध बाजार से है। यह जनता द्वारा किया ा प्रतीकात्मक विरोध प्रर्दशन हैं प्रेमी जी के अधिकांश नाटक ऐतिहासिक हैं उनमें जसत्ता के एवं राजदरबारों के घात–प्रतिघात या उनके द्वारा किया गया शोषण है तः उसमें बाजार की व्यवस्था का वैसा उल्लेख नहीं हैं जैसा धरना या हड़ताल के ए अपेक्षित है, हाँ चूँकि ये अंग सत्याग्रह के हैं अतः सत्याग्रह, उपवास, हृदय रेर्वतन, पश्चाताप की प्रतिछाया देखी जा सकती है पर उसी रूप में उनका उल्लेख हीं है जिस रूप में गाँधी दर्शन में ये मिलते हैं।

4. हृदय परिवर्तनः

हृदय परिवर्तन भी गाँधीवाद का एक प्रमुख सिद्धान्त है। जब किसी नुष्य को यह पता चल जाए कि यह कार्य गलत है। ऐसा कुत्सित कार्य मुझे नहीं करना चाहिये था और वह अपने वास्तविक रास्ते पर आ जाये इसे ही हृदय परिवर्तन कहते है। हृदय परिवर्तन अपनी भूल को स्वीकार करने पर ही सम्भव है। "प्रेमी" जी ने इस गाँधीवादी सिद्धान्त हृदय परिवर्तन को अपने नाटको में स्थान दिया है।

"प्रतिशोध" नाट्यकृति में चम्पतराय ने हमेशा ही औरंगजेब का साथ दिया और उसके बड़े भाई दारा का विरोध किया। यहाँ तक कि उसका सिर धड़ से अलग कर देना चाहता था। अन्त में जब दारा को मैली और भद्दी हथिनी की पीठ पर नंगे हौदे पर बैठे देखा तथा उसके पीछे ही दारा का पुत्र सिपहर शिकोह बैठा था तथा दोनों के पीछे नंगी तलवार लिये एक गुलाम बैठा था ऐसा करूण दृश्य देखकर चम्पतराय का हृदय परिर्वतन हो जाता है। वह औरंगजेब से कहता है–– "आदर कर तुम्हारी बीरता का, घृणा करता हूँ तुम्हारे कपट से, तुम्हारी निष्ठुरता से। मेरे हृदय में दारा के प्रति इतना क्रोध था कि अवसर पाने पर उसका सिर धड़ से अलग कर देता,

1. सत्याग्रह– क्रमांक 15 5/05/1920

किन्तु जिस दिन वह गिरफ्तार करके मैली और भद्दी हथिनी की पीठ पर नंगे हौदे पर बैठाया गया, उसके पास सिपहर शिकोह बैठा था, दोनों के पीछे एक राक्षस की सूरत का गुलाम नंगी तलवार लिए पहरे पर तैनात था, चारो ओर नंगी तलवारों का सख्त पहरा था, दारा शरीर पर मैले और मोटे कपड़े पहने था, करूणा जनक जुलूस लाहौरी दरबाजे से शहर में घुसा, जालिमों ने दोपहर की धूप में दारा की शहर में प्रदर्शनी कराई और वह अत्याचार मेरे कारण सम्भव हो सकता था, (ऑखों में ऑसू भर आते हैं) उस दृश्य को देखकर जी चाहा अपना गला घोट लूँ।"[1]

चम्पतराय से औरंगजेब कहता है, उस बदमाश के लिए इतनी हमदर्दी लेकिन चम्पतराय का परिवर्तित हृदय कहता है–– "उस जैसा महान, उस जैसा उदार व्यक्ति मुगल खानदान में न कभी पैदा हुआ, न होगा। जब सौभाग्य के दिनों में वह बाजार में निकलता था तो जो भिखारी भीख मॉगता था उसकी झोली में कुछ न कुछ पड़ ही जाता था। उस दिन भी, जब बदनसीवी की बेडियो में जकड़े हुए दारा के जुलूस पर मुगल खानदान की गैरत आठ–आठ ऑसू रो रही थी, एक भिखारी ने उसकी हथिनी के पास आकर कहा–– "ऐ दारा, पहले तो जब तू निकलता था तब मुझे कुछ न कुछ देता था, पर अब तेरे पास देने को कुछ नहीं है, दारा ने उसकी ओर ऑख उठाई। एक ठण्डी सॉस ली और कंधे पर से दुपट्टा उतार कर उसी ओर फेंक दिया। दारा की ऑखें फिर नीची हो गई। सारी जनता के मुँह से "वाह–वाह" की ध्वनि निकल पड़ी और ऑखों से ऑसू वह चले।"[2] चम्पतराय हमेशा ही दारा को मौत के घाट उतारने के पक्ष में थे। उक्त कथन में चम्पतराय का हृदय परिर्वतन ही दृष्टिगत होता है।

हीरा देवी दुष्ट प्रकृति की महिला है। वह दूसरों को प्रताड़ित करती रहती है। चम्पतराय, पहाड़ सिंह और भीम सिंह बुन्देलखण्ड की स्वतंत्रता के शुभ चिन्तक हैं। इसलिए बुन्देलखण्ड में चम्पतराय का सम्मान होता है। वह चम्पतराय के भोजन में जहर मिलवा देती है। वह जहरवाला थाल भीम सिंह जानबूझ कर स्वयं अपने लिए रखते हैं, जिससे भीम सिंह जी असमय ही कालकवलित हो जाते हैं। इस प्रकार के कृत्यों से उसका विश्वास जनता से उठ जाता है जिसके कारण हीरा देवी का हृदय परिर्वतन हो जाता है। इस सम्बन्ध में हीरा देवी का कथन दृष्टव्य है– "रास्ता बदला जा सकता है, तब रास्ता बदलना कैसा? आज यदि मैं कलेजा काटकर भी जनता के चरणों में रख दूँ तब भी वह मेरा विश्वास न करेगी। जनता क्षमा नहीं जानती सुजान, वह प्रायश्चित करने का अवसर नहीं देती।"[3]

1. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–43
2. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–8
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–80 व 81

"शपथ" नाट्यकृति में हूण सम्राट मिहिरकुल भारत पर राज्य करने का स्वप्न देख रहा है लेकिन जब पराजित हो जाता है उसे विष्णुधर्मन मालवा प्रदेश से भी निष्कासित कर देते हैं। अपनी पराजय के कारण ही उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह नर्तकी कंचनी से कहता है-- "भारत पर राज्य की मेरी लालसा पूरी नहीं होगी। विष्णु धर्मन के हाथों में भारत का सम्मान सुरक्षित है। मालव. प्रदेश से उसने मुझे निर्वासित कर दिया। यहाँ भी मुठभेड़ में हमें पराजित होना पडा है।-- अन्त का प्रारम्भ-प्रारम्भ हो गया अन्त दूर नहीं है कंचनी। मैं चाहता हूँ सब कुछ गँवाकर-अब मनुष्य बन जाऊँ, तुम मुझे मनुष्य बना दो।"[1]

"बन्धु मिलन" नाट्यकृति में शक्ति सिंह महाराणा बनने के लिए प्रताप सिंह को मार देना चाहता है। महाराणा प्रताप अपने भाई शक्ति सिंह को मेवाड़ से निष्कासित कर देते हैं। शक्ति सिंह मुगलों से मिलकर मेवाड़ पर चढ़ाई करवा देता है। किसी प्रकार महाराणा प्रताप के दिवंगत होने तथा प्रमाणिकता के लिए राजमुकुट भी प्राप्त हो जाता है। इधर अपने देश के लिए शक्ति सिंह की पत्नी इंदु भी मान सिंह की सेना में भर्ती हो जाती है। शक्ति सिंह इंदु को सैनिक वेश में पहचान नही पाता है। महाराणा की मृत्यु का समाचार पाते ही शक्ति सिंह का हृदय परिर्वतन हो जाता है। वह अपना मस्तक पकड़ कर पृथ्वी पर बैठ जाता है। इस सम्बन्ध में मान सिंह का कथन दृष्टव्य है-- "यह क्या हो रहा है, तुम लोगों को? (सैनिक के रूप में इंदु से) तुम हमारी सेना के साधारण सैनिक हो प्रताप की मृत्यु से तुम्हारी आँखों में आँसू किस लिए? और शक्ति सिंह तुम-तुम किसलिए विचलित हो उठे?"[2]

मानसिंह कहता है कि मेरा अनुचर अभी राजमुकुट लेकर आता ही होगा बीरवर शक्ति सिंह तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिये वह राजमुकुट तुम्हारे मस्तक पर ही शोभायमान होगा, लेकिन इंदु कहती हैं कि किसी देशद्रोही को मेवाड़ का राजमुकुट धारण नहीं करने दिया जायेगा। इंदु राजमुकुट लेकर प्रस्थान करती है। मुगल सैनिक इंदु के हाथो से उसे छीन लेना चाहता है। शक्ति सिंह के मन में देश के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत होती है। शक्ति सिंह का हृदय परिर्वतन हो जाता है। वह मुगल सैनिक से कहता है-- "सावधान जो तुमने एक कदम भी आगे रखा तो तुम्हारा मस्तक पृथ्वी पर लोटने लगेगा।"[3] लेकिन मान सिंह कहता है कि राजमुकुट तो आपके शीश पर रखा जायेगा आप इसे फिर मेवाड़ भेज देना चाहते है। इस पर शक्ति सिंह कहता है.... "मुझे राजमुकुट के साथ मेवाड़ भी चाहिये। राजमुकुट चाहे न मिले लेकिन मेरा मेवाड़ तो मुझे मिलनाचाहिये। आप कहेंगे कि सम्राट अकबर मुझे मेवाड़ भी

1. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-152
2. बन्धु मिलन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-84
3. बन्धु मिलन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-87

देंगे, किन्तु तब भी मुझे मेवाड़ नहीं मिलेगा। मेवाड़ मुझे बुलाकर मेरे मस्तक पर राजमुकुट रखेगा तो मैं उसे स्वीकार करूँगा। तुम्हारे या सम्राट अकबर के हाथ से नहीं।"[1]

"स्वप्न भंग" नाट्यकृति में औरंगजेब का पुत्र मुहम्मद अपने पिता की आज्ञा पालन करने हेतु शाहजहाँ से शाही मुहर और राजमुकुट लेने आता है। लेकिन मुहम्मद को यह ज्ञात होता है कि इसी राजमुकुट के कारण ही गृह कलह मची हुई है, तो उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। शाहजहाँ मुहम्मद से कहते हैं कि तुम औरंगजेब से भी योग्य हो तुम मुगल साम्राज्य को विध्वंस से बचा सकोगे और वह राजमुकुट और शाही मुहर देने को तैयार हो जाते है, लेकिन मुहम्मद मुकुट को स्वीकार नहीं करता है। वह शाहजहाँ से कहता है... "नहीं दादा मैं दुर्बल प्राणी हूँ, मुझे यह प्रलोभन न दीजिये। मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा। इसी राजमुकुट के लिए इतना हत्याकाण्ड हुआ है। यह बहुत भयंकर वस्तु है। काम पूरा किये बिना ही लौट जाऊँगा। मैं इसे नहीं छूना चाहता।"[2]

"प्रकाश स्तम्भ" नाट्यकृति में जो ब्राह्मण पद्मा की शादी का प्रस्ताव लेकर आया था, लेकिन कालभोज बाप्पा से भेट हो जाने के बाद ब्राह्मण का हृदय परिवर्तन हो जाता हैं। वह राजकुमारी पद्मा से कहता है कि मैं वही ब्राह्मण हूँ जो तुम्हारी शादी का प्रस्ताव लेकर आया था। वह पद्मा की सहेली चम्पा से कहता है। इस बार मैं कालभोज बाप्पा का दूत बनकर उससे राजकुमारी पद्मा के विवाह का प्रस्ताव नागदा–नरेश के पास लेकर आया हूँ।"[3] पहले ब्राह्मण किसी और का पद्मा से शादी का लेकर आया था लेकिन बाप्पा की शादी का प्रस्ताव नागदा नरेश के पास ले जाना ब्राह्मण का हृदय परिवर्तन था।

इसी नाट्यकृति में पहले पशुचराने वाले ग्वाले बाप्पा से पद्मा विवाह करने के लिये तैयार नहीं हैं, ब्राह्मण के द्वारा बाप्पा के विषय में बताने पर पद्मा का हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह बाप्पा से विवाह करने के लिए उद्यत हो जाती है। उसके पिता नागदा नरेश के पूछने पर कि इस विवाह के खेल को पद्मा कितना महत्व देती है तो पद्मा कहती है.... "नारी तो एक ही विवाह करती है चाहे वह खेल में हो।"[4]

"कीर्ति स्तम्भ" नाट्यकृति में जयमल रूपवती युवती तारा को पाना चाहता है। वह जबरन ही तारा की टाँग पकड़ कर जमीन पर पटक देता है। इसी

1. बन्धु मिलन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–87
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–102
3. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–32
4. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–34

समय तारा के हितचिन्तक द्वारा बाण छोडा जाता है जिससे जयंत बिंध जाता है। अपने इस कुकृत्य से जयमल का हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह तारा से कहता है.... "तुम्हारे मादक रूप के आकर्षण ने मुझे पागल कर दिया। मेवाड के इतिहास में ऐसा दुष्कर्म सम्भव मैंने ही किया। मुझे क्षमा कर देना।"[1]

"रक्षा बन्धन" नाटक में मुगलसेना का पोर्चगीज सेना अध्यक्ष का जवाहर बाई की तलबार संचालन तथा वीरता को देखकर हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह एक पात्र मुलू खाँ से कहता है... "कैसा प्यारा था वह नजारा। दोनों हाथों में नेकी की तरह खूबसूरत औरत तलबार चलाती हुई हमारी फौज पर टूट पड़ी। लडना छोड़ कर मैं तो तमाशा देखने लगा। जी चाहा उसके कदमों में सिर रख दूँ।"[2] जवाहर बाई की बीरतां देखकर उनके चरणों में सिर रख देने की भावना आना ही सेनाध्यक्ष का हृदय परिवर्तन है।

इसी नाटक में विक्रमादित्य प्राणों के भय से महाराणा पद को छोड़कर जंगल में शरण लेते हैं, लेकिन सेठ धनदास द्वारा यह विदित होता है कि तुम्हारी माता ने शत्रु से लोहा लिया हैं तलवार चलाई है। विक्रमादित्य का हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह कहता है.... "धन्य हो माँ। मैंने कौन-सा पुण्य किया था जो तुम सी माँ पाई और तुमने कौन सा पाप किया था जो मुझ-सा पुत्र पाया? तुमने शस्त्र ग्रहण कर अपने पुत्र के रिक्त स्थान को भरा।"[3] जो विक्रमादित्य प्राणों की चिन्ता से वन में घूमता फिरता था। हृदय परिवर्तन हो जाने पर मरने को उद्यत हो जाता है। वह धनदास से कहता है.... "मरने जाने वाले को सेना की क्या आवश्यकता? मैं युद्ध करूँगा। अकेला ही युद्ध करूँगा मैं मरूँगा। शत्रु दल का संहार करते हुए वीरो की मौत मरूँगा।"[4]

"संवत् प्रवर्त्तन" नाट्यकृति में उज्जयनी का शक क्षत्रय नहपाण का युद्ध करते-करते हृदय परिवर्तन हो गया है। अब वह शान्ति स्थापित करना चाहता है। वह अपने सेनापति से कहता है.... "सेनापति, हमें सेना के सभी पदाधिकारियों को एकत्रित कर उन्हें आदेश देना चाहिये कि वे सभी सैनिकों को समझा दें कि अब युद्ध काल समाप्त हो गया है। सैनिक अपना व्यवहार शिष्ट बनायें। नागरिकों पर आतंक न फैलावें। मदिरा पीकर नगर में न घूँमें हमें यहाँ राज्य करना है। लूट-पाट करके चला नहीं जाना है।"[5]

---

1. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-84
2. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-55
3. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-84
4. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-85
5. संवत् प्रवर्त्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ-77

"आन का मान" नाट्यकृति में लूट–पाट हिंसा आदि कुकृत्यों से औरंगजेब का जीवन के अन्तिम समय में हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह अपनी पुत्री जीनतुन्निसा से कहता है.... "लेकिन इस बूढ़े सॉप के जहर के दाँत टूट गये हैं, बेटी। चाहो तो इसकी थूथरी कुचल दे सकती हो।"[1] मेहरुन्निसा अपने पिता औरंगजेब द्वारा किये गये अत्याचार, लूट–पाट, मार–काट आदि के सम्बन्ध में बात–चीत करती है, जिसे सुनकर औरंगजेब का हृदय परिवर्तन हो जाता है। मेहरुन्निसा जब औरंगजेब से पूछती है कि मेरी बात सुन कर आप क्यों दुःखी हो उठे हो तो औरंगजेब कहता है..... "वह सब तुमने नहीं कहा मेहर। यह तो आबाजेखलक (जनता की आवाज) है। आज पहली बार तुम्हारे मुँह से ही तो ये शब्द नहीं सुने। ये शब्द दशो दिशाओं में घूम रहे हैं... हमारे अन्तःकरण में भी हमारे हृदय की प्रत्येक धड़कन में भी।"[2]

जिस औरंगजेब ने अपनी पुत्री तथा पुत्रों को कभी भी प्यार नहीं किया। अपनी पुत्री जेबुन्निसा को कारागृह में डाल दिया तथा अकबर भी भय से ईरान भाग गया। इन भूलों से औरंगजेब का हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह कहता है.... "हम दक्षिण के पवन से कहते हैं तुम ईरान जाओ... हमारे बेटे से कहो तुम भी बाप हो। वह भूल मत करो जो तुम्हारे बाप ने की थी। बाप का द्वार बेटे के लिए सदा खुला रहता है। खुदा तुम्हे बाप के प्यार को समझने की बुद्धि दे। उसने तुम्हारे सारे अपराध क्षमाकर दिये हैं। वह तुम्हारे कुशल के लिए खुदा से प्रार्थना करता है।"[3]

औरंगजेब आजीवन ही राज्य विस्तार के लिए संग्रामरत रहा। इन संग्रामों की जब वह याद करता है तथा अपने साम्राज्य में सुख–शान्ति को नही देखता है तो उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। वह दुर्गादास से कहता है.... "दुर्गादास हम जानते हैं कि राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को सुखी रखे, शान्ति दे, व्यापार धन्धों को बढ़ायें, उसको न्याय प्रदान करे। हमें इस बात का वास्तव में दुःख है कि आज साम्राज्य में सुख शान्ति का आभाव है। हमें खुदा ने अवसर दिया तो हम साम्राज्य की सुख समृद्धि को लौटा लाने का यत्न करेंगे। निरन्तर संग्राम करते रहना मनुष्य का स्वाभाविक जीवन नहीं है। हमने अपनी आँखो से देखा है दक्षिण की लड़ाइयों में प्रतिवर्ष एक लाख मनुष्य और हाथी, घोड़े, ऊँट, बैल आदि मिलाकर तीन लाख पशु मरते रहें है। जब गोलकुण्डा में अकाल पड़ा तो सतहत्तर कोसों तक मुर्दो के ढ़ेर से दीख पड़ते थे। यह सब देखकर मेरी आत्मा काँप उठी है।"[4]

---

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–62
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–33
3. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–60
4. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–85

हृदय परिवर्तन गाँधीवादी विचारधारा का एक प्रमुख सिद्धान्त है। हृदय परिवर्तन से क्रूर और निर्मम व्यक्ति भी कुमार्ग से सुमार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं। प्रेमी जी ने अपने अनेक नाटकों में गाँधीवादी धारणा के अनुरूप ही हृदय परिवर्तन को अपनाया है।

5. पश्चातापः

मनुष्य गलती करता है, जब उसको गलती के विषय में पता चलता है कि मैंने अमुक कार्य गलत किया है। उसके हृदय में ग्लानि का भाव उदय होता है और उसे अपने किये गलत कार्य पर पश्चाताप होता है। पश्चाताप भी गाँधीवादी विचारधारा का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। प्रेमी जी के अनेक नाटको में इस प्रकार के प्रसंग देखने को मिलते हैं। जब अपने किये गलत कार्यों पर पश्चाताप होता है।

"आन का मान" नाटक में औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ एवं भाइयों के विरुद्ध होकर राजगद्दी प्राप्त की थी। उसी प्रकार औरंगजेब के चारों बेटे गद्दी पाने के लालच से लड़ाई करने को तैयार हैं लेकिन औरंगजेब को अपनी इसी भूल पर पश्चाताप होता है, वह अपनी बेटी मेहरुन्निसा से कहता है हम बीमार शाहजहाँ हैं... हमारे चारो बेटे मुहम्मद मुहज्जम, मुहम्मद आजम, मुहम्मद अकबर और कामवक्श, सम्राट शाहजहाँ के चारो बेटे... दाराशिकोह, शुजा, मुराद और औरंगजेब हैं। वे चारो ही दिल्ली के तख्त पर बैठने को व्याकुल हैं। अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर बढ़े चले आ रहे हैं हम लड़ाई रोकना चाहते हैं... लेकिन हमारी कोई नहीं सुनता"[1]

औरंगजेब अपने बेटे मुहम्मद सुलेमान का बध कर देता है, लेकिन जिस वक्त उसके चार बेटे-राजसिंहासन प्राप्त करने के लिए युद्ध करने को भी तैयार है तभी वह मेहरुन्निसा से अपने बेटों के सम्बन्ध में कहता है कि मुझे अपने लड़कों से सद्व्यवहार ही मिलेगा। मेहरुन्निसा कहती है आपको ऐसा विश्वास किस आधार पर है तभी औरंगजेब पश्चाताप करता हुआ मेहरुन्निसा से कहता है.... "हमारे विश्वास का आधार था, तुम्हारा सबसे बड़ा भाई, खुदा उसे जन्नत में शान्ति दे मुहम्मद सुलेमान। जब हमने उसे कार्यवश बन्दी अब्बाजान के पास भेजा था तब अब्बाजान ने उसे हमारी जगह शाही सिंहासन पर बैठाने का लालच दिया था... अगर वह अब्बाजान को एक बार आगरा के किले के बाहर जाने देता। तब सुलेमान ने कहा... अब्बाजान मेरे लिए खुदा हैं मैं किसी मूल्य पर उनकी आज्ञा के विरुद्ध नहीं जा सकता।"[2]

इस प्रकार औरंगजेब अपने मृतक पुत्र के सम्बन्ध में पश्चाताप ले रहा है।

---

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-63
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-64

औरंगजेब आजीवन ही संघर्षरत रहा है। उसने जीवन में मानवोचित कोई कार्य नहीं किया। वह अपने पिता के कार्यों की याद करता है तथा अपनी भूलों को स्वीकार करता है और पश्चाताप करता हुआ अपनी बेटी जीनतुन्निसा से कहता है.. अब्बाजान ने ताजमहल तथा दूसरे भव्य–भवनों के निर्माण में धन लगाकर युग–युग के लिए मुगल एश्वर्य और वैभव की निशानियाँ छोड़ दी, लेकिन औरंगजेब ने इसी धन से केवल रक्त की होली खेली। नगर ग्रामों को शमशानों में परविर्तित कर दिया।"[1]

औरंगजेब ने धर्मान्धिता के कारण अपने परिवारीजनों की भी चिन्ता नहीं की। अकबर ईरान चला गया है। उसके बेटा और बेटी से मिलने के सम्बन्ध में औरंगजेब पश्चाताप करता है। उसका कथन दृष्टव्य है.... "ऐसा जान पड़ता है जैसे आज तक अन्धकार में ही हम चलते रहे हैं और इतनी दूर निकल आये कि जहाँ से चले थे, मुड़कर वहाँ नहीं पहुँच सकते हैं। अगर अपने परिवार को ही अपना बना सकूँ तो बहुत समझो। बहुत चाहा कि अकबर लौट आये– वह नहीं आया। लेकिन उसकी निशानियाँ हैं। शहजादा बुलन्दअख्तर और शहजादी सफीयतुन्निसा खुदा करे वे ही मेरे पास आ जावें।"[2]

औरंगजेब अपने बेटों से मिलने के लिए आतुर है। उसने अपने स्वजनों के प्रति जीवन में जिन भूलों को किया उन्हें स्वीकार करता हुआ पश्चाताप करता है। वह दुर्गादास राठौर से कहता है कि.... "सुनो दुर्गादास हमे इन्सान बनने का अवसर दो। हम प्यार करना चाहते हैं, लेकिन किससे करें? हमारी सूरत में ऐसी क्या भयानकता है कि हमारे बच्चे भी हमसे दूर भागते हैं माना कि आकाक्षाओं के अन्धेपन में हम अपनी मर्यादायें भूल बैठे। हमने किसी भी पवित्र नाते का सम्मान नहीं रखा। हमारे हाथ रंगे हुए है स्वज़नों के खून से, लेकिन क्या हमें प्रायश्चित करने का अवसर भी संसार नहीं देना चाहता।"[3]

"शपथ" नाटक में एक पात्र मिहिरकुल है, वह धन्यविष्णु से कहता है मुझे कंचनी से अधिक आप पर क्रोध आया था। मेरा रोष आपकी काया के खण्ड–खण्ड करने को प्रस्तुत हो गया था। धन्यविष्णु अपनी भूल पर पश्चाताप करता हुआ कहता है... "मेरा निर्लज्ज अस्तित्व धरा की छाती पर व्यर्थ ही लदा हुआ है।"[4] मेवाड़ की भूमि के अन्तर्गत सिसौदिया वंश में जन्म लेने वाला महावत खाँ कालान्तर में मेवाड़ के विध्वंश में सहायक बनता है। उसे अपनी भूल पर पश्चाताप होता है। इस परिप्रेक्ष्य में महावत खाँ का एक कथन दृष्टव्य है... "किन्तु मेरा यह अन्त मुझ जैसे

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–66–67
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–70
3. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–89
4. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–120

कुल कलंक संसार में पैदा ही क्यों होते हैं? मेवाड़ का पतन मेरे ही हाथों से हुआ। अब मैं महाराष्ट्र के सर्वनाश में सम्मिलित होने के लिए आया हूँ। ....झूठे दर्द के कारण मैंने धर्म को छोड़ा ही नहीं, देश के साथ भी द्रोह किया। मालूम नहीं मेरे पतन पथ का अन्त कहाँ जाकर होगा?"[1]

"शतरंज के खिलाड़ी" नाटक में जैसलमेर के महारावल का पुत्र रत्न सिंह अनजाने में ही अलाउद्दीन के कोष को लूट लेता है, जिसके परिणामस्वरूप अलाउद्दीन महबूब खाँ को जैसलमेर पर आक्रमण करने का आदेश देता है। रत्न सिंह जैसलमेर के संकट का कारण स्वयं को मानता है और पश्चाताप करता हुआ अपनी भाभी किरणमयी से कहता है.... "मेरे अपराध से सम्पूर्ण जैसलमेर का सर्वनाश होने जा रहा है। इसी लिये भाभी मैं काली से पूछने आया था क्या सचमुच वह प्यासी है?... अगर है, तो क्या वह केवल रत्नसिंह का रक्त पीकर संतुष्ट नहीं हो सकती?"[2]

इसी बीच युद्ध सामग्री एवं खाद्य पदार्थों में किसी देशद्रोही द्वारा आग लगा दिये जाने से उनके अग्रज मूलराज दुःखी है। ऐसी स्थिति में रत्नसिंह पुनः पश्चाताप करता हुआ अपनी भाभी किरणमयी से कहता है.... "मुझे दुःख है कि मेरे कारण जैसलमेर का सर्वनाश हो गया भाभी।"

"ममता" नाटक में रजनीकान्त की पत्नी लता अपने घर से चली जाती है। रजनी कान्त लता के घर छोड़कर चले जाने में अपने को ही दोषी मानता है। ओर वह पश्चाताप करता हुआ कहता है.... "सम्भवतः मुझमें ही कुछ न्यूनता थी, कदाचित मैं ही उसकी भावनाओं का आदर नहीं कर सका। जिसके कारण मुझे उससे घृणा हो गयी और वह सदा के लिए चली गयी।"[3]

लता के घर से चले जाने के बाद समाज में नाना प्रकार के प्रवाद प्रचलित हो जाते हैं, जिसका वह उत्तर देने में असमर्थ है। अतः पश्चाताप करता हुआ मुंशी जी से कहता हैं.... मैने स्वयं ही उसका गला घोंट डाला है अपने बच्चे की माँ को मैने ही मार डाला है। ....वह मेरे लिये घर में आँखे बिछाये बैठी रहती और मैं दूसरी लड़की के साथ अपना समय व्यतीत करता रहा।"

जब लता अपना घर त्यागती है तो अपने बच्चे अरविन्द को भी घर पर छोड़ देती है। वह दिल्ली में अध्यापन कार्य करने लगती है। वहाँ जब उसे अपने बच्चे की रुग्णावस्था का पता चलता है तो वह उसे देखने के लिए घर वापस आती है। तब उसे भावातिरेक में लिये गये निर्णय के सम्बन्ध में पश्चाताप होता है। वह मुंशी जी से कहती है.... "मुझसे मेरे पति की जरा सी उपेक्षा नहीं सही गई, और उसने अपना,

1. शिवा साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–158–159
2. शतरंज के खिलाड़ी : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37
3. ममता : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–59

उनका और बच्चों का जीवन नरक बना डाला.... मेरी सन्देहशीलता ने स्वयं मुझे ही दण्ड दिया। जीवन भर मुझे व्यथित रखा।"[1]

"प्रतिशोध" नाट्यकृति में चम्पतराय ने औरंगजेब को मदद देकर बुन्देलखण्ड को पराधीनता की बेडियों में जकड़वा दिया। उसे अपनी भूल पर पश्चाताप होता है। वह औरंगजेब से कहता है.... "तुम्हारी वीरता का आदर करके और तुम्हें दिल्ली के सिंहासन पर बैठाकर मैंने बुन्देलखण्ड की गुलामी की जंजीरों को और भी मजबूत कर दिया। प्रतिहिंसा की आँधी मुझे कहाँ खींच लाई।"[2]

जब दाराशिकोह को अपमानित करके मौत के घाट उतारा गया था तभी चम्पतराय को घोर पश्चाताप होता है। वह इसके लिए अपने को उत्तरदायी मानता हुआ औरंगजेब से कहता है... "रोते–रोते मेरी आँखें फूट जायें, तब भी मेरे हृदय के पश्चाताप की ज्वाला शान्त नहीं होगी। जब दरवार में दारा के कटे हुए सिर को तुमने मनुष्यता से च्युत होकर अपने पैर से उसे ठुकराया था। तब जी चाहा था, तुम्हारे सिर को भी काट कर उसी तरह से पैरों से ठुकराऊँ।"[3]

इसी नाट्यकृति में औरंगजेब ने चम्पतराय और लाल कुँवरि को गिरफ्तार करने के लिए आदेश दिया। गिरफ्तार होने के स्थान पर चम्पतराय तथा लाल कुँवरि आत्मघात कर लेते हैं। औरंगजेब को अपनी इसी नीचता पर पश्चाताप होता है, वह जहानारा से कहता है... "जब से मैंने सुना है कि चम्पतराय और कुँवरि ने गिरफ्तार होने के बजाय खुदकशी कर ली, तब से मुझे नींद नहीं आती। ऐसे साफ दिल और बहादुर इन्सान को मैंने तकलीफ दीं मुझे इसका अफसोस है।"[4]

इसी नाट्यकृति में हीरादेवी को लाल कुँवरि से घृणा है, क्योंकि बुन्देलखण्ड की जनता लाल कुँवरि को चाहती है। हीरा देवी कुटिलनीति का सहारा लेती है, जिसके कारण महोबा और बुन्देलखण्ड पराधीन हो जाते हैं तथा लाल कुँवरि के बेटे राह के भिखारी बन जाते है। इन्ही कुत्सित कार्यों से हीरादेवी को गहन पश्चाताप होता है। हीरादेवी का कथन दृष्टव्य है.... "जब अपने अतीत की ओर देखती हूँ, तो अपने ही ऊपर घृणा होती है। मैं ऐसी पिशाचिनी कैसे बन गई। लाल कुँवरि! हाँ, केवल लाल कुँवरि के कारण। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड उसी के चरणों में क्यों हृदय न्यौछावर करे? मेरा नारी हृदय ईर्ष्या से जल उठा उस ईर्ष्या की अग्नि में जल गया महोबा का राजवंश और बुन्देलखण्ड की स्वाधीनता अब लाल कुँवरि के बेटे राह के भिखारी बने घूमते हैं। मैं अपनी इस सफलता पर हँसू या रोऊँ, खुशी से फूल उठूँ या

1. ममता : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–98
2. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–42, 43
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–44
4. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–65

लज्जा से गड़ जाऊँ। जब अपने गौरव को अवाध देखती हूँ, उसे चुनौती देने का अभाव पाती हूँ, तो मेरा हृदय पश्चाताप की ज्वाला में जलने लगता है।"[1]

"विदा" नाट्यकृति में अकबर अपने पिता औरंगजेब की धार्मिक क्षेत्र में पक्षपातपूर्ण नीति का विरोध करने के लिए हिन्दुओं का पक्ष लेता है, परन्तु औरंगजेब कुटिल नीति का सहारा लेता है। वह अकबर को हिन्दुओं का विश्वास पात्र नहीं रहने देता। वह अपने पुत्र को सम्बोधित किया गया पत्र इस प्रकार प्रेषित कराता है कि जो हिन्दुओं को प्राप्त हो जाता है। तदोपरान्त हिन्दू उसका विश्वास करना छोड देते हैं तथा अपने लिए घातक समझने लगते हैं। जिससे अकबर पश्चाताप करता है। वह दुर्गादास एवं समरदास से कहता है कि.... "हिन्दुस्तान का दुर्भाग्य है कि मेरा प्रयत्न सफल नहीं हो सका। मैं अब जीवित नहीं रहना चाहता, दुर्गादास जी अब मेरे लिए इस संसार में जगह नहीं।"[2]

यद्यपि दुर्गादास को उससे सहानुभूति है, परन्तु वह उसकी सहानुभूति नहीं चाहता। वह अपनी हिन्दू मुस्लिम एक्य की मनोरम कल्पना के अपूर्ण रह जाने के कारण गहन पश्चाताप करता है।

"स्वप्न भंग" नाट्यकृति में शाहजहाँ ने अपने शासनतंत्र में अपने पुत्रों को निरंकुश रहने दिया। जिससे उनके एक पुत्र औरंगजेब ने उन्हें बन्दी बना लिया। वह असहाय होकर पश्चाताप करते हुए कहते हैं..... "मैं औरंगजेब पर पूर्णरूप से कठोर न हो सका, क्योंकि वह मुमताज का बेटा है। मैं निर्दय न हो सका। मैंने शुरू से ही राजदण्ड का कठोरता से प्रयोग किया होता तो इन काले साँपों की थूथरी को कभी का कुचल दिया जाता। अन्तिम क्षण तक में द्विविधा में पड़ा रहा। किसे पता था, कि मुमताज कि तुम मेरे गले में फूलों की माला के बहाने साँप डाल जाओगी।"

इसी नाट्यकृति में रोशनआरा जो औरंगजेब की बहिन है तथा औरंगजेब के शासन–तंत्र को चलाने में सहायता प्रदान करती है। वह अपने बड़े भाई दारा को नीचा दिखाने के लिए औरंगजेब को प्रोत्साहन प्रदान करती है। अन्ततोगत्वा रोशन आरा को अपनी इसी भूल के कारण गहन पश्चाताप होता है। वह अपनी दासी से कहती है.... "मैं समझती थी मैं जहानारा और दारा का अभिमान चूँर्ण करूँगी, लेकिन आज मेरा अभिमान चूर्ण हो गया। लोग मुझे भय की दृष्टि से देखते है, श्रद्धा और प्रेम से नहीं। मेरी ओर उठने वाली आँखों में एक तीक्ष्ण व्यंग्य, एक गहरी घृणा उपेक्षा सी नजर आती है। सच बात कहूँ कभी–कभी मेरा हृदय भी मुझे कोसता है।"[3] रोशन आरा अपने अब्बा शाहजहाँ पर हुए अत्याचारों के सम्बन्ध में चिन्तन करते

1. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–69
2. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–120
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–108

चतुर्थ अध्याय

मी जी के नाटकों में समतामूलक गाँधीवादी अवधारणा

1. सम्पन्न विपन्न की एकता
2. धन का समान वितरण
3. ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त

चतुर्थ-अध्याय

प्रेमी जी के नाटकों में समतामूलक गाँधीवादी अवधारणा

गाँधी जी एक महान आध्यात्मिक पुरुष थे। उन्होंने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष पर विचार किया तथा जिस क्षेत्र में जो समस्यायें आयी उनका स्वयं ही अपने ढ़ंग से समाधान खोज निकाला। आर्थिक क्षेत्र में भी गाँधी जी समानता के समर्थक थें। उन्होंने इस समता के लिए सम्पन्न विपन्न की एकता को आवश्यक माना है। वे चाहते थे कि समाज का धनी और निर्धन वर्ग एकता के साथ जीवन यापन करे। वे आर्थिक क्षेत्र की विषमता को दूर करने के पक्ष में थे। इसके लिए उन्होंने धन के समान वितरण पर जोर दिया तथा धन के समान वितरण के लिए ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का प्रतिपादन भी किया। प्रेमी जी भी अपने युग के युग–पुरुष महात्मा गाँधी से अत्यधिक प्रभावित थे। उनके नाटकों में हमें अन्य गाँधीवादी सिद्धान्तों की भाँति ही समतामूलक गाँधीवादी अवधारणा के तत्व... सम्पन्न–विपन्न की एकता, धन का समान वितरण एवं ट्रस्टीशिप आदि तत्व परिलक्षित होते है।

1. सम्पन्न–विपन्न की एकताः–

गाँधी जी एकता स्थापित करने के लिए या राम राज्य स्थापित करने के लिए सम्पन्न–विपन्न की एकता को आवश्यक मानते थे। गाँधी जी ने स्वयं ही राजा और रंक की समानता के सम्बन्ध में कहा है... "वर्ग संघर्ष भारत की मूल प्रकृति के विपरीत है, जो सबके साथ समान न्याय के बुनियादी अधिकारों के आधार पर साम्यवाद का विकास करने की क्षमता रखती है। मेरी कल्पना के रामराज्य में राजा और रंक दोनों के अधिकारों की समान रूप से रक्षा की जायेगी।"[1]

"प्रेमी" जी के अनेक नाटकों में इस समता मूलक गाँधीवादी अवधारणा के तत्व सम्पन्न–विपन्न की एकता का दिग्दर्शन होता है।

"स्वप्न–भंग" नाट्यकृति में एक मजदूर पात्र प्रकाश समाज की आर्थिक विषमता के बारे में सम्पन्न पात्र दारा से कहता है..."आज वैभव सम्पन्न व्यक्ति ताजमहल बनाकर संसार से कहते हैं, हम बड़े दुःखी हैं, किन्तु हम मजदूर अपने दुःख

1. गाँधी जी की चुनौती : कम्यूनिज्म को–गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–138

को आत्म वेदना के हृदय के कब्रिस्तान में दफनाये रखते है।"[1] दारा इसके उत्तर में सम्पन्न विपन्न की एकता के सम्बन्ध में कहता है... "किन्तु सूना वृद्ध पुरुष में सम्राट नही; मनुष्य बनना चाहता हूँ। सम्राट बन कर मैं मनुष्यों को मनुष्य बनाना चाहता हूँ। मैं धनी, निर्धन, विद्वान–अविद्वान और छोटे–बड़े का भेद मिटाना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि संसार एक मजदूर के मृत्यु का दुःख भी उतना ही अनुभव करे जितना कि वह शाहजहाँ की पत्नी की मृत्यु का करता है।"[2]

"आहुति" नाटक में मीर महिमा को रणथम्मौर के महाराव हम्मीर सिंह शरण देते है। इसके फलस्वरूप अलाउद्दीन का प्रथम आक्रमण नलहारणोंगढ़ पर होता है। वहाँ के किलेदार की पुत्री चपला से हम्मीर सिंह को ज्ञात होता है कि उसके पिता, पति, भाई आदि तीन दिन के युद्ध में मारे गये हैं। हम्मीर सिंह सम्पन्न–विपन्न की एकता के पक्षधर हैं। वे असहाय चपला को बेटी कहकर पुकारते हैं तथा उनके पुत्र जय और विजय चपला से बहिन कहते हैं। चपला उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को सुनकर कहती है.... "यह तुम्हारी उदारता है कि मामूली किलेदार की बेटी को अपनी बहिन कहते हो।"[3] इस सम्बन्ध में सम्पन्न विपन्न की एकता के सम्बन्ध में हम्मीर सिंह का कथन अवलोकनीय है... "नहीं बेटी क्षत्रियों में कोई बड़ा छोटा नही हम सभी एक ही तेज के कण है। व्यवस्था के लिए कोई सिंहासन पर बैठा है, कोई द्वार पर खड़ा है। वास्तव में हम सब भई–भाई है। जिस दिन राजपूत एक दूसरे को छोटा–बड़ा समझने लगेंगे उनका बल क्षीण हो जायेगा।"[4]

"भग्न प्राचीर" नाट्यकृति की मीरा भी राजाओं सत्ताधारियों और सर्वसाधारण के मध्य व्याप्त विषमता को दूर करना चाहती है, तथा मरणासन्न संग्राम सिंह सम्पन्न–विपन्न की एकता के सम्बन्ध में कहते हैं कि... "हमारा वास्तविक बल सर्व साधारण जन है। अतः हमें उन्हें अपने समान और स्वयं को उनके समान बनाना होगा। देश के लिए लड़ना राजा का नही सभी लोगों का कर्तव्य है। देश के नाम पर सबको एक होना होगा।"[5]

"अमर आन" नाट्यकृति में एक प्रसंग में अहाडी रानी अपनी दासी गुलाब के सौन्दर्य की प्रशंसा करती है किन्तु गुलाब कहती है–गरीब सुन्दर नहीं हुआ करते, इसके उत्तर में अहाड़ी रानी कहती है... "पगली सौन्दर्य क्या धनवानों की

---

1. स्वप्न–भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–28
2. स्वप्न–भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–28–29
3. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–32
4. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–32
5. भग्न प्राचीर : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–110

सम्पत्ति है।"[1] अहाड़ी रानी का उक्त कथन सम्पन्न–विपन्न की एकता के परिप्रेक्ष्य में कहा गया है।

"कीर्ति स्तम्भ" नाट्यकृति में सूरजमल सम्पन्न विपन्न की एकता को आवश्यक मानते हैं। वे राजा और प्रजा में एकता न होने के कारण कहते हैं... "जिस राजा से प्रजा घृणा करती हो उसकी सत्ता बालू के दुर्ग के समान है। जरा से धक्के से वह धराशायी हो जाता है।"[2] इस कथन से यह संकेत मिलता है कि प्रजा और राजा के बीच एकता होनी चाहिए।

"भाई–भाई" नाट्यकृति में एक पात्र चूड़ाजी बताता है कि बाप्पा रावल ने जब मेवाड़ का राज्य प्रारम्भ किया था; तब उसने राज्याभिषेक के समय घोषणा की थी। "मस्तक पर राजमुकुट धारण करने से मैं प्रजा से भिन्न नहीं हो गया।"[3] मोकल के उक्त कथन में सम्पन्न–विपन्न की एकता ही प्रदर्शित हो रही है।

"प्रतिशोध" नाट्यकृति में छत्रशाल को गरीबों से हमदर्दी है। वह सम्पन्न–विपन्न की एकता का पक्षधर है। वह विषमता देखकर एकता के सम्बन्ध मेंकहता है... "बुन्देलखण्ड में मुट्ठीभर लोग शुभकरण, हीरादेवी और देवीसिंह सोने के थालों में खाते हैं और वैभव के पालनों में झूलते है। तो लाखों की संख्या में गरीब जनता दाने–दाने को मुँहताज हो रही है। चलो भैया उनके दुःखों में हमे भी अपने कष्टों को मिला देना चाहिये।"[4]

"प्रकाश स्तम्भ" नाट्यकृति में बाप्पा स्वयं ही कहता है... "वह तो मनुष्य रह कर सीमित शक्ति द्वारा मनुष्य के स्वार्थ और दंभ से युद्ध करना चाहता है। वह नीच और ऊँच के क्षेत्रीय और भील के, राजा और प्रजा के बीच विषमता की खाई को पाट देना चाहता है।"[5] बाप्पा का यह कथन सम्पन्न–विपन्न की एकता का ही द्योतक है।

इसी नाट्यकृति में बाप्पा का विवाह खेल–खेल में हो गया है, किन्तु पद्मा बाप्पा से उसकी विपन्न अवस्था में विवाह करने को तैयार नहीं है। तो बाप्पा पद्मा से कहता है... तो तुम प्रेम के हेतु राजमहल छोड़ने को प्रस्तुत नहीं हो? इसके उत्तर में पद्मा का कथन सम्पन्न–विपन्न की एकता का पोषक है। वह बाप्पा से कहती है... "मैं तो राजमहल छोड़ कर धूल में मरघट की ज्वाला में भी आसन जमाने

1. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–2
2. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–136
3. भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–44
4. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–69
5. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–14

को प्रस्तुत है, किन्तु मैं चाहती हूँ कि मेरा प्रेमी धूल से ऊपर उठे, प्रचंड मार्तंड की भाँति प्रकाशित हो। अन्त में तो सभी को मिट्टी में मिल जाना है। जहाँ न कोई बड़ा है न कोई छोटा।"[1]

"स्वर्ण–विहान" नाटिका में राजा रणधीर बड़ा ही निष्ठुर है वह जनता को त्रस्त रखता है। अन्त में प्रजा की शक्ति के आगे उसका हृदय परिवर्तन हो जाता है। अब वह एकता चाहता है। उसकी यह मनुष्य–मनुष्य की एकता ही, सम्पन्न–विपन्न की एकता है। राजा रणधीर का कथन इस परिप्रेक्ष्य में दृष्टव्य है...

"हो जहाँ हृदय ही राजा,
हो जहाँ प्रेम का शासन।
सबकी ममता में होवे,
समता का पावन आसन।।"[2]

सम्पन्न–विपन्न की एकता के सम्बन्ध में सन्यासी का कथन भी उल्लेखनीय है...

"कुचले नहीं किसी का मानस,
स्वार्थो का अभिमान।
सब समान है, सब समान है,
राजा और किसान।।"[3]

"बन्धन" नाटक में लिखी भूमिका मे प्रेमी ने सम्पन्न–विपन्न की एकता के सम्बन्ध में कहा है... "पूँजी और श्रम का संघर्ष चल रहा है। इस नाटक में इस संघर्ष का गाँधीवादी हल है।"[4]

"प्रेमी" जी के उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि बन्धन नाटक में उन्होंने पूँजीपति और श्रमिक समस्या का गाँधीवादी हल प्रस्तुत किया है। खजाँचीराम एक धनी पूँजीपति है। वह एक मिल का भी संचालक है। वह मजदूरों के ऊपर अत्याचार करता है। उनकी माँगे पूरी नही करता है। इसलिए मजूदर वर्ग हड़ताल करता है। मोहन मजदूरों का नेता है। अन्त में मोहन तथा पूँजीपति की पुत्री मालती का विवाह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिससे सारा विरोध समाप्त हो जाता है। मजदूरो की माँगे पूरी की जाती है।"[5] इस प्रकार "प्रेमी" जी ने श्रमिको तथा पूँजीपति में एकता स्थापित की है। वह एकता ही सम्पन्न–विपन्न की एकता है।

1. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–14
2. स्वर्ण विहान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–84
3. स्वर्ण विहान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–86
4. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 7 (भूमिका)
5. बन्धन : अंक–3, हरिकृष्ण प्रेमी, दृश्य–6

इसी नाट्यकृति में सम्पन्न–विपन्न की विषमता पर कटाक्ष तो बालक क करते है...

"एक बालक... वह है रायबहादुर साहब की कोठी इतनी बड़ी कोठी मे सिर्फ तीन आदमी रहते हैं।

दूसरा बालक... और हमारे मकान में?

तीसरा बालक... एक–एक कोठी में दस–दस।

चौथा बालक... बहुत से तो बिना मकान के ही रहते है।"[1]

इन चारों बालको के कथनों से यह संकेत मिलता है कि समाज में सम्पन्न–विपन्न की एकता होनी चाहिये।

"नई राह" नाट्यकृति में एक पात्र सेठ करोडीमल है। उसका कथन भी सम्पन्न–विपन्न की एकता का परिचायक है वह पूॅजीपत होते हुए भी अपने को हृदयहीन और अत्याचारी बताता है। करोड़ीमल का कथन दृष्टव्य है... "मैं तो पूॅजीपति हूँ। हृदयहीन नित्यप्रति प्रातः से संध्या तक गरीब मजदूरों को मारता हॅू... पैसा मेरी ताकत है... मैं केवल पूॅजीपति ही नहीं एक जमींदार भी हूॅ। आज जमीदारियॉ चली गईं लेकिन स्वभाव नहीं गये। अत्याचार करना ही हमारा स्वभाव है।"[2]

इसी नाट्यकृति में लता सम्पन्न–विपन्न का भेद मिटाने की प्रतिज्ञा करते हुए किशोर से पूछती है... "क्या झोपड़ी और महल का संघर्ष समाप्त नहीं होगा?"[3]

किशोर सम्पन्न–विपन्न की एकता के सम्बन्ध में लता से कहता है... "सबके पास सर छुपाने के लिए मकान हो, भर पेट भोजन प्राप्त हो, शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा हो और प्रत्येक व्यक्ति को योग्यता के अनुसार काम करने के लिए धन्धा हो, ऐसी स्थिति बनाना ही तो हमारे हाथ में है।"[4]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रेमी जी ने अपनी नाट्यकृतियों में गॉधीवादी अवधारणा के तत्व सम्पन्न–विपन्न की एकता को बड़ी कुशलतापूर्वक सम्पादित किया है।

2. धन का समान वितरणः–

गॉधी जी ने समता स्थापित करने के लिए धन के समान वितरण पर जोर दिया है। वे धन के असमान वितरण को राम–राज्य का दर्शन करने में बाधक

1. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–22
2. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–39
3. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–24
4. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–77

मानते थे। इस सम्बन्ध में गॉधी जी ने कहा है... "समाजवाद की जड़ में आर्थिक समानता है। थोड़े लोगों को करोड़; बाकी लोगों को सूखी रोटी भी नहीं, ऐसी भयानक असमानता में रामराज्य के दर्शन की आशा कभी न रखी जाय।"[1]

समतामूलक गॉधीवादी अवधारणा के अनुसार "प्रेमी" जी ने धन के समानवितरण को भी अपने नाटको में अभिव्यजित किया है।

"अमर–आन" नाट्यकृति में अहाड़ी रानी का कथन धन के समान वितरण की ओर संकेत कर रहा है। वे कहती है... "अकबर की जो हार्दिक अभिलाषा थी। वह जहॉगीर के लिए नीति और शाहजहॉ के लिए केलव चाल मात्र बन गई है। एक बात उसमें अच्छी है,, वह भारत को अपना जन्म स्थान मानता है। वह भारत को भूखों नहीं मरने देना चाहता एक भाई भले ही वैभव के शिखर पर पहुॅच जाये और दूसरा केवल गुजारा ही करे... लेकिन भूखा वह भी न रहे... यही उसकी कामना है।"[2]

"शपथ" नाट्यकृति में विष्णु बर्द्धन कहता है... "जिस प्रकार सूर्य की किरणों को थोड़े से व्यक्ति बन्दी बनाकर नहीं रख सकते उसी प्रकार उदार पृथ्वी माता द्वारा प्रदत्त धान्य–दृव्य–रत्नादि को कोई बन्दी बनाकर नहीं रख सकेगा।"[3] विष्णु बर्द्धन का कथन धन के समान वितरण की ओर संकेत कर रहा है।

"रक्तदान" नाट्यकृति में मिर्जा मुगल पर आरोप लगाया जाता है कि उसने सेठ साहूकारों से धन एकत्र किया है; और उसे राजकोष में जमा नहीं किया। बख्त खॉ, मिर्जा मुगल से कहता है... "न्याय के सम्मुख छोटे–बड़े का भेद नहीं होता। आपकी जो आवश्यकताऍ हों, उनके अनुसार आपका वेतन नियत है। आपको कोई अधिकार नहीं आप अपने खर्चों के लिए या मौज मज़े के लिए प्रजा से अनियमित तरीके से धन वसूल करें।"[4] बख्त खॉ का यह कथन धन के समान वितरण की ओर संकेत कर रहा है क्योंकि वह मिर्जा मुगल से अधिक वेतन न मिलने की बात कहता है। महात्मा गॉधी की भी यही मान्यता थी कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आवश्यकतानुसार मिले।

"बन्धन" नाट्यकृति की झॉकी में प्रेमी जी ने लिखा है... "इस नाटक में क्या है? यह तो पाठक उसे पढ़कर ही जाने। एक पूॅजीपति का एक नव युवक ने किस तरह हृदय परिवर्तन किया। यही इसमें बताया गया है। इससे पाठक यह न समझे कि लक्ष्मी को बन्धन मुक्त करने का यही उपाय है। यह तो एक चित्र है।

1. गॉधी जी की चुनौती कम्युनिज्म को : गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–113
2. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–52
3. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–114
4. रक्तदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–143

पाठक यह समझ पाये कि समाज के कुछ लोगों ने लक्ष्मी को अपने यहाँ बन्दी बना रखा है। इस लिए हिंसा का ताण्डव चल रहा है। इस ताण्डव को रोकने के लिए लक्ष्मी को पूँजीपतियों से मुक्ति मिलनी चाहिए। कैसे? इसका उत्तर समाज के नेता सोचें।"[1] प्रेमी जी का यह कथन धन के समान वितरण की ओर ही संकेत कर रहा है।

इसी नाट्यकृति में पूँजीपति खजाँची राम का कथन भी धन के समान वितरण की ओर ही संकेत कर रहा है। वह श्रमिको से कहता है... "यह तुम लोगों का ही तो रुपया है, जो हमने अपनी तिजोरियों में बन्द कर रखा है। लक्ष्मी को हमने कैद करना चाहा लेकिन हमारी कैद में वह खुश नहीं है। वह मुक्त होना चाहती है। जब तक वह मुक्त न होगी, मार–काट हिंसा बनी रहेगी।"[2]

इसी नाट्यकृति में प्रेमी जी ने समाज में व्याप्त धन की असमानता को चित्रित किया है। मजदूरों ने धन के समान वितरण के लिए ही हड़ताल की थी, लेकिन हड़ताल असफल हो जाने के कारण मजदूरों के बाल–बच्चे भूखों मर रहे है। एक नौ साल की बच्ची अपने मजदूर बाप लक्ष्मण से पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए रोटी माँगती है। लक्ष्मण के घर में दो तीन दिन से चूल्हा नहीं जला है, वह अपनी बेवसी और लाचारी को बताते हुए अपने मजदूर साथी रहीम से कहता है...

"इसे मौत भी नहीं आती। अफीम खाने को भी पैसे नहीं है, नही तो घोल कर पिला देता, और फिर यह कभी रोटी नहीं माँगती।"[3] लक्ष्मण के कथन से स्पष्ट होता है कि प्रेमी जी धन का समान वितरण चाहते थे। तभी तो उन्होंने समान में व्याप्त असमानता को उठाया है।

इसी नाट्यकृति में एक बालक धन के समान वितरण की बात स्पष्ट शब्दों में करता है। वह सरला से कहता है कि काम तो सारे मजदूर मिलकर करते है, फिर मिल की सारी आमदनी सब को बराबर क्यों नहीं बाँटतें।"[4] दूसरा बालक कहता है कि यह स्वयं मिल मालिक बन कर क्या करेगा?

"मैं सबको बराबर बेतन दूँगा। मैं क्या कोठी में रहूँगा और मोटर पर चलूँगा? नहीं, मैं अपनी झोपड़ी में ही रहूँगा।"[5]

"नई राह" नाट्यकृति में किशोर, अहिंसात्मक क्रान्ति से पैसे बालों की स्वार्थ वृत्ति को नाश करने की कामना करते हुए विनोद से कहता है... "लेकिन रक्तरंजित क्रान्ति भारत की संस्कृति के विरुद्ध है, और मैं इसके विरुद्ध हूँ। मैं पैसे

1. बन्धन–झाँकी : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–5
2. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, अंक–3, दृश्य–6
3. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–26
4. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–55
5. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56

बालों का नाश नहीं चाहता.... केवल उनकी स्वार्थवृत्ति का नाश चाहता हूँ।"[1]

वह युवकों से अहिंसात्मक क्रान्ति करने का आह्वान् करता है। इस सम्बन्ध में विनोद कहता है...

"महात्मा गाँधी ने संसार के सम्मुख नया ही मार्ग अहिंसा का रखा है। हिंसा द्वारा की गयी क्रान्ति अस्थायी होती है।"[2]

महात्मा गाँधी के बताये हुये मार्ग पर चलकर किशोर गाँव की समस्याओं को दूर करने और उसे स्वर्ग बनाने में जुट जाता है। गाँव वाले "किशोर–गाँधी" की जय बोलते है। किशोर के गाँधीवादी मार्ग पर चलने से प्रभावित होकर पूँजीपति विनोद, किशोर का प्रतिद्वन्दी होते हुए भी बम्बई छोड़कर उसके गाँव पहुँच जाता है और वहीं रह कर ग्रामीणों की सेवा करना चाहता है।

सेठ करोड़ीमल के हृदय में धन के समान वितरण की भावना घर कर जाती है। वह अपनी मिलें बेचकर सारी सम्पत्ति देश–हित में लगाने का निश्चय करते हैं... "मैंने निश्चय किया है कि अपनी मिलें बेच दूँगा। और अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को किशोर के आदेश के अनुसार देश के कार्य में लगाऊँगा।"[3]

इस प्रकार "प्रेमी जी" ने अपने नाटकों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से धन के समान वितरण को स्थान देकर समतामूलक गाँधीवादी अवधारणा को अपनाया है।

3. ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त (न्यासिता):–

महात्मा गाँधी के इस सिद्धान्त के अनुसार मानव के हृदय में प्रेम और विवेक की भावना को जागृत कर; मालिको को यह समझना चाहिये कि उसके पास जो कुछ भी पूँजी है, वह तो श्रमिको की ही कमाई का फल है। इसीलिए मालिकों को स्वयं अपने को उस सम्पत्ति का संरक्षक (ट्रस्टी) मानना चाहिए। इस सम्पत्ति का विनियोग भी जन–कल्याण के लिए ही करना चाहिये। व्यक्तिगत सम्पत्ति संग्रह करने के खतरों और बुराइयों को समझना चाहिये। उनके हित में भी यही ठीक होगा कि वह केवल व्यक्तिगत ऐश आराम में उस पैसे को खर्च न कर उसे जनता की भलाई के काम में लगावे। इस प्रकार पूँजीपति केवल संरक्षक की तरह रहे। जब इस प्रकार की स्थिति हो जायेगी तो फिर मालिक और मजदूर का भेद मिट जायेगा। मजदूर को भी पर्याप्त भोजन, अच्छे मकान, उनके बच्चों की सुन्दर शिक्षा और दवा–दारू का अच्छा प्रबन्ध रहेगा।"[4]

---

1. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–68
2. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–78
3. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–78, अंक–3, दृश्य–2
4. महात्मा गाँधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0–85

गॉधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में 1903 में ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। इसका अर्थ यह है कि जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक सम्पत्ति एकत्रित करता है, उसे केवल अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त सम्पत्ति का उपयोग करने का अधिकार है, शेष सम्पत्ति का प्रबन्ध उसे एक ट्रस्टी की हैसियत से उसे एक धरोहर समझकर समाज कल्याण के लिए करना चाहिये।

प्रेमी जी की कुछ नाट्यकृतियों में ट्रस्टीशिप का भी वर्णन मिलता है।

"नई राह" नाट्यकृति में किशोर करोड़ीमल से ट्रस्टीशिप की बात करता है... "अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को राष्ट्र की धरोहर समझें और राष्ट्र के हित में उसका उपयोग करें।"[1]

इसी नाट्यकृति में किशोर एक स्थान पर ट्रस्टीशिप की बात करता है। वह कहता है... "सारी पूँजी राष्ट्र की हो जाय और राष्ट्र की ओर से सारे व्यवसाय हों और सभी नागरिकों के सुख–दुःख का उत्तरदायित्व राष्ट्र पर हो तो क्या काम नहीं चलेगा?"[2]

"बन्धन" नाट्यकृति में श्रमिको का नेता प्रकाश मालती से ट्रस्टीशिप के सम्बन्ध में बात करता है। वह कहता है... "धन किसी का नहीं है वह केवल समाज के कल्याण के लिए है।"[3]

"कीर्ति स्तम्भ" नाट्यकृति में संग्राम सिंह का कथन परोक्ष रूप से ट्रस्टीशिप के विषय में ही कहा गया है। ... "दादा भाई को मेवाड़ के राजमुकुट का सचमुच मेवाड़ का मोह नहीं है। और सच पूँछा जाये तो मेवाड़ के महाराणा को कभी राजा होने का, प्रजा का स्वामी होने का, ऐश्वर्य और वैभव के उपयोग के अधिकारी होने को गर्व करना ही नहीं चाहिये, क्योंकि वह राजा नहीं एकलिंग का दीवान मात्र है। गलहोत वंश के राजपुत्र की क्या, प्रत्येक मेवाड़ी यहॉ तक कि वनों में निवास करने वाला भील भी मेवाड़ राज्य का समान रूप से स्वामी है।"[4] संग्राम सिंह के उक्त कथन में प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार की भावना ही न्यासिता या ट्रस्टीशिप की भावना है।

इस प्रकार प्रेमी जी ने अपनी नाट्यकृतियों में समतामूलक गॉधीवादी अवधारणा के अन्तर्गत ट्रस्टीशिप को भी स्थान दिया है।

---

1. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–106
2. नई राह : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–106
3. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–83
4. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 160

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रेमी जी ने अपनी कृतियों में गॉधीवादी आवश्यकता को पूर्ण रूप से प्रतिविम्बित किया है। उन्होंने अपने नाटको में गॉधीवादी अवधारणा के विभिन्न तत्वों सम्पन्न–विपन्न की एकता, धन का समान वितरण एवं ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त का वर्णन बखूवी किया है।

पंचम अध्याय

प्रेमी जी के नाटकों में गाँधी जी के आध्यात्मिक विचार

1. ईश्वर
2. जगत
3. मानव
4. पुनर्जन्म
5. कर्मफल

पंचम अध्याय

'प्रेमी' जी के नाटकों में गाँधी जी के आध्यात्मिक विचार

शताब्दियों तक पराधीनता में रहने के कारण भारतीय अपनी संस्कृति को विस्मृत करते जा रहे थे। देश के चिन्तक, राजनीतिज्ञ, मनीषी एवं साहित्यकार सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए मार्ग की तलाश में थे। उस समय महात्मा गाँधी ने भारतीय अध्यात्म एवं धर्म का विशद् अध्ययन कर उसे जन–जन तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया। उन्होंने अपनी राजनीतिक लड़ाई को लड़ने के लिए भी धर्म एवं दर्शन को ही अस्त्र बनाया। उन्होंने जन–जन को राम राज्य के प्रति आस्थावान बनाया। गाँधी जी के दर्शन में ईश्वर, जगत, मानव, पुर्नजन्म एवं कर्मफल आदि तत्व समाहित हैं।

गाँधी जी अपने युग की एक बड़ी राजनीतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति के रूप में मान्य रहे। उनके नेतृत्व में कोटि–कोटि भारतवासियों ने अपनी आस्था व्यक्त की। गाँधी जी के विचार दर्शन से प्रभावित होकर उस युग के अनेक साहित्यकारों ने साहित्य मे गाँधीवादी दर्शन को उतारने के प्रयास किये। तत्कालीन सहित्यकारों को देश की समस्याओं का समाधान गाँधी जी के दर्शन में ही दिखाई दे रहा था। हरिकृष्ण प्रेमी का आविर्भाव गाँधीवादी युग में ही हुआ था। अतः उन्हें भी गाँधीवादी सिद्धान्तों में अटूट आस्था थी। महात्मा गाँधी ने भारतीय दर्शन और संस्कृति के जिन तत्वों को ग्रहण किया है, प्रेमी जी ने उनको अपने अनेक नाटकों में अभिव्यक्ति दी है। उनकी नाट्य कृतियों का गहन अध्ययन करने पर जिन प्रमुख भारतीय–दर्शन के सिद्धान्तों को सहजता से देखा जा सकता है। वे निम्नांकित है–

1. ईश्वरः–

भारतीय दर्शन ईश्वर के अस्तित्व में आस्था रखता है। अधिकांश दर्शनों के अनुसार इस जगत का नियमन करने वाला एक ईश्वर है। सम्पूर्ण जगत उस ईश्वर के सत्स से ही संचालित होता है। निर्गुण उसे ब्रह्म के नाम से अभिहित करते है और सगुण उसे ईश्वर के नाम से। महात्मा गाँधी की भी इस जगत से इतर एक आलौकिक सत्ता में आस्था थी। गाँधी जी का ईश्वर राम था। उनकी दिनचर्या राम की उपासना और कीर्तन से प्रारम्भ होती थी। उनका लक्ष्य राम राज्य की स्थापना था। स्पष्ट है कि गाँधी जी को ईश्वर की सत्ता के अस्तित्व में पूर्ण आस्था थी। यद्यपि गाँधी जी के आराध्य 'राम' थे तो भी उनकी प्रार्थना थी–

"ईश्वर अल्ला तेरे नाम,
सबको सम्मति दे भगवान।"

वस्तुतः गाँधी जी ने कई धर्मो, सम्प्रदायों और चिन्तकों के चिन्तन को अपनी प्रार्थना मे समाहित किया था। यदि हम सन्त कवियों की ओर दृष्टि डालें तो वे भी ईश्वर में तो आस्था रखते थे, पर नाम के विवाद में नहीं पड़ते कबीर का तो स्पष्ट मत था.....

"दुई जगदीश कहाँ ते आये कहु कौने भरमाया।
अल्लाह, राम, करीम, केशव , हजरत नाम धराया।।"

प्रेमी जी के नाटकों में गाँधी जी के दर्शन से प्रभावित होने के कारण ईश्वर का जो रूप मिलता है, वह किसी एक सम्प्रदाय या एक नामतक सीमित नहीं है। उन्होंने ईश्वर को भिन्न–भिन्न नामों से अभिहित किया जैसे– एकलिंग[1], विश्वनियंता[2], भगवान[3], विधाता[4], चैतन्य[5], खुदा[6], परवरदिगार[7], अल्लाहताला[8], अदृष्य[9], प्रकृति[10], महाकाल[11], भवानी[12] आदि। फिर भी वे एकेश्वर वाद के समर्थक रहे हैं। उदाहरणार्थ..... "विदा" नाटक में औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा एकेश्वरवाद का समर्थन करती हुई कहती है.... "खुदा एक है और आकारहीन है। उसकी मूर्ति नहीं बनायी जा सकती। मनुष्य को केवल एक खुदा को ही मानना चाहिये और किसी देवी–देवता पर विश्वास नहीं करना चाहिये।"[13]

"प्रेमी" जी ने 'स्वप्न भंग' नाटक में वेदान्त दर्शन के 'अद्वैतवाद' का प्रतिपादन किया है। अपार वैभवशाली दारा को विपन्नावस्था में देख कर प्रकाश को दुःख होता है उस समय वह ईश्वर से इस संसार को विनष्ट करने की कामना करता

1. कीर्तिस्तम्भ–प्रकाश स्तम्भ, भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–132, 48, 47
2. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–57
3. आन का मान, भाई–भाई, अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 20, 119, 14, 60
4. अग्नि परीक्षा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–75
5. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–17
6. रक्तदान, स्पप्न भंग, आहुति, विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–176, 11, 18, 28
7. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27
8. रक्षाबन्धन, साँपों की सृष्टि : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–89, 109
9. संवत् प्रवर्त्तन, अमर बलिदान, शीशदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–52, 62, 30
10. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–62
11. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–115
12. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
13. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–5

है, तब दारा उससे कहता है... "यह दुनियाँ और इस दुनियाँ के सब कुछ सिवा खुदा के कुछ नहीं है। बाबा मेरी राय में यही इस्लाम है और हिन्दुओं का वेदान्त है।"[1]

प्रकाश द्वारा जहाँनारा को प्रदत्त दारा की पुस्तकों में इसी बात का उल्लेख है... "यहाँ न कोई हिन्दू है न मुसलमान केवल उस एक इस खुदा उस ब्रह्म का अलग–अलग घट में प्रतिबिम्ब है।"[2] नादिरा की दासी सलीमा नादिरा से शीघ्र ही दारा के दिल की रानी तथा भारत की मलिका बनने को कहती है, तो नादिरा ईश्वर की सत्ता के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए कहती है... "समय की गति को किसने जाना है, सखी? तुम मुझे शहजादा दारा के दिल की रानी, भारत की भावी मलिका कहती हो, लेकिन जो इस दुनियाँ के चक्र को चलाता है, उसकी आँखों में दारा का, दारा की रानी का और दिल्ली की बादशाहत का क्या मूल्य है? जैसे विराट हिमालय के सामने एक रजकण। अरे उतना भी तो नहीं। वह अपने एक इशारे से राजमहलों को मिट्टी का ढ़ेर बना देता है।"[3]

नादिरा खुदा के विषय में कहती है... "खुदा ने मुझे जितना सुख इस समय दे रखा है, हिन्दुस्तान की मलिका बनने पर क्या इससे कुछ ज्यादा पा सकूँगी?"[4]

प्रकाश ईश्वर में विश्वास करते हुए दारा से कहता है... "संसार में जितना दुःख है, उसको दूर करने की शक्ति भगवान के अतिरिक्त किसी में नहीं। भगवान तुम्हारी इच्छाएँ पूर्ण करे।"[5]

'स्वप्न भंग' कृति में ही औरंगजेब मौलवी से जब धर्म विस्तार की बात कहता है तो मौलवी ईश्वर में विश्वास करता हुआ कहता है... "खुदा आपको सफल करें।"[6] एक स्थल पर शाहनबाज औरंगजेब को समझाता हुआ कहता है...."तुम दुनियाँ को धोखा दे सकते हो लेकिन खुदा की आँखों में धूल नहीं झोंक सकते हो।"[7] नादिरा ईश्वर की सत्ता में विश्वास करती हुई खुदा के प्रति कहती है... "जहाँनारा, तुम मुझे गीत सुनाओ। तुम्हें खुदा ने कवि बनाया है।"[8]

---

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–117
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–128
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–11
4. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–13
5. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–30
6. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–48
7. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–49
8. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56

दारा का ईश्वर के प्रति विश्वास निम्न वाक्य से स्पष्ट होता है जो उसने अपनी पत्नी नादिरा से कहे, वह कहता है... "जितना सुख आज तक हमने भोगा है, प्रकृति अब उसका बदला चुका लेगी।"[1] दारा की दीन हीन दशा देखकर प्रकाश ईश्वर के अस्तित्व में आस्था व्यक्त करता हुआ कहता है..... "मैं क्या देख रहा हूँ? हे विधाता! क्या तेरा यही न्याय है। आज संसार में न्याय, स्नेह और मनुष्यता का पद–पद पर अपमान हो रहा है। स्वार्थ, कष्ट और हिंसा फलफूल रही है। भगवान तुम वास्तव में कुछ हो। अगर हो तो तुम्हारा न्याय दण्ड कहाँ गया? भूकम्प, हैजा, महामारी, तूफान, आँधी, बज्र और प्रलय कहाँ हैं? इस संसार को नष्ट क्यों नहीं कर देते महाकाल।"[2]

"आहुति" नाटक में अलाउद्दीन अपने सेनापति मीर गभरू को (उसके भाई) मीर महिमा के विरुद्ध युद्ध करने का आदेश देता है, इससे उसका द्वितीय सेनापति जमाल खाँ विचलित हो जाता है। उसमें अपने पराये का भाव अधिक है। अतः अपने मनोभावों को व्यक्त करता हुआ वह मीरगभरू से कहता है... "मैं सगे भाई पर तलवार उठाने की भी हिम्मत न कर पाता।"[3] वह भाई के विरुद्ध युद्ध भूमि पर जाने की अपेक्षा आत्महत्या करना श्रेष्ठ मानता है। इस परिप्रेक्ष्य में मीर गभरू का ईश्वर के अस्तित्व में आस्था से परिपूर्ण कथन अवलोकनीय है... "दुनियाँ में सिर्फ एक माँ है और वह है खुदा, जो तुम हो वही महिमा है, वही अलाउद्दीन है, वही हमीर है। हम सभी भाई हैं, जब हमीर के खिलाफ तलवार उठाने में नही हिचकते तो महिमा के खिलाफ उठाने में क्यों हिचकूँ।"[4]

"कीर्ति–स्तम्भ" के महाराणा रायमल ईश्वरीय सत्ता में विश्वास करने के कारण निर्भय होकर बिना पूर्व सूचना दिये, एकाकी राजयोगी के समीप आते है। राजयोगी उन्हें अकेले भ्रमण न करने का परामर्श देते है। इस परिप्रेक्ष्य में महाराणा का कथन अवलोकनीय है... "जिस पर भवानी की कृपा का हाथ है, उसे किसी भी षड़यन्त्र से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है।"[5] भिखारिन के रूप में यमुना ज्वाला से कुछ याचना करती हुई दुआयें दे रही है.... ज्वाला उसे झिडक देती है इसी परिप्रेक्ष्य में यमुना ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व में आस्था करती हुई कहती है.... "रानी जी जो मनुष्य पर दया करता है उस पर भगवान प्रसन्न होते हैं। भगवान के नाम पर कुछ दे

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–62
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–115
3. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–26
4. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–28
5. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–51

दो माई। जिन्हें भगवान ने दिया है, उन्हें भगवान की सन्तान दीन दुखियों को देना ही चाहिये।"[1]

मेवाड़ के राजकुमार आपस में युवराज पद के लिए संघर्षरत हैं। ऐसी दशा में राजयोगी बताते हैं कि ईश्वरीय सत्ता (भवानी) के द्वारा जिसके लिए आदेश होगा वही युवराज पद प्राप्त करेगा। महाराणा का कथन दृष्टव्य है.... "मेवाड़ के राजकुमारों में युवराज पद के लिए प्रतिस्पर्धा जागृत हो उठी है। वे तलवार से इसका फैसला करना चाहते थे, किन्तु मैंने उन्हें किसी प्रकार अभी तक शान्त रखा है। वे इस बात पर राजी हो गये हैं कि राजयोगी द्वारा भवानी का आदेश, जिसे युवराज पद प्रदान करने का प्राप्त हो, उसे सब सहर्ष स्वीकार करें।"[2]

ईश्वर सत्ता के अस्तित्व में विश्वास रखने वाले राजयोगी कहते हैं... "राजन, राजयोगी अपना मस्तक देकर भी महाराणा जी की दुश्चिन्ता को दूर करने को प्रस्तुत है, किन्तु हम सबके अन्तर की भावना को जानने वाली भवानी अपना चमत्कार दिखायेंगी। आप देखिये तो सही, राजकुमार स्वयं ही अपने भाग्य का निर्णय कर लेंगे।"[3]

इसी कृति में तारा मेवाड़ की प्रशंसा करती है तो महाराणा रायमल ईश्वरीय सत्ता के विषय में तारा को बताते हैं... "निश्चय ही भाग्य लिपि का अदृश्य लेखक मतवाला नहीं है बेटी! अज्ञात अनंत और आलौकिक शक्ति के वरदान पाने के लिए मानव को तप करना पड़ता है। बलिदान देना पड़ता है। जीवन का कठोर संघर्ष भी तप है। जिसमें तप करने की, बलिदान देने की शक्ति का लोप हो जाता है, उस पर किसी न किसी रूप में अभिशाप अवतरित होता है।"[4] इसी कृति के एक प्रसंग में महाराणा को राजयोगी अवगत कराते हैं कि युवराज शत्रु सेना को परास्त करके मेवाड़ की कीर्ति को और अधिक बढ़ाते चले आ रहे हैं। तो ईश्वर में विश्वास करने वाले महाराणा रायमल कहते हैं... "हे भगवान एकलिंग तुम्हारी ही अपार अनुकम्पा से मेवाड़ के यश की रक्षा हो सकी है। तुम्हारे तृतीय नेत्र की ज्योति की एक–एक किरण प्रत्येक मेवाड़ी के हृदय में समाविष्ट होकर उसे चिर प्रज्वलित रखती है।"[5]

"शिवा साधना" में शिवाजी, रामदास से ईश्वर के अस्तित्व में आस्था व्यक्त करते हुए कहते हैं... "वास्तव में सबकी रक्षा वही सर्वशक्तिमान परमात्मा करता

1. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–13
2. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–55
3. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–51
4. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–130
5. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–132

है, जिसने इस शिला के भीतर भी इस मेढ़क की जीवन रक्षा का प्रबन्ध कर रखा था।"[1]

"शतरंज के खिलाड़ी" नाट्यकृति मे जैसलमेर के महारावल जीतसिंह की पुत्रबधू किरणमयी अमावस्या की रात्रि काली मन्दिर में आती है। अपनी भाभी को एकाकी अवलोकन कर रत्न सिंह को आश्चर्य होता है। उस समय किरणमयी का कथन ईश्वर की आस्था से परिपूर्ण है... "जानते हो रत्नसिंह जिसके अन्तःकरण में आदि शक्ति काली का निवास है उसके लिए कहीं अन्धकार नहीं है ...वह कभी अकेली नहीं है।"[2]

"भग्न प्राचीर" नाटक में मीरा तो कृष्ण के अनुराग में रेग कर कृष्णमयी हो गयी है। इसलिए वह गिरिधर की मूर्ति को सेज पर प्रतिष्ठित कर पर्यक के पास बैठकर वीणा बजाने के साथ–साथ गीत गाती है।

संग्राम सिंह के पुत्र भोजराज, मीरा के धार्मिक विचारो से अवगत न होने के कारण उसे इस स्थिति में देखकर तलवार तानते हैं परन्तु कृष्ण के प्रति मीरा के अनन्य अनुराग से विज्ञ होकर अपनी धारणा परिवर्तित करते हैं। तदुपरान्त वे मीरा से प्रणय–निवेदन करते हैं। मीरा का दृष्टिकोण लोकोत्तर होने के कारण वह अपनी असमर्थता व्यक्त करती हुई कहती है.... "किन्तु क्या करूँ, अदृश्य मुझे उठाकर गिरिधर नागर के स्नेह-सागर में डुबो देता है। मैं इस लोक को सर्वथा भूल ही जाती हूँ।"[3]

"प्रकाश स्तम्भ" नाट्यकृति हारीत योगी का तथा बाप्पा की माँ ज्वाला का ईश्वर में विश्वास है।[4]

ज्वाला, योगी से प्रश्न करती है कि "सारे देवताओं को छोड़कर शिव की उपासना ही आपने क्यों चुनी?"[5] इस सम्बन्ध में हारीत उत्तर देते हैं "राम ने उसकी पूजा की है, रावण ने उसकी उपासना की है।"[6] नागदा नरेश हारीत से मिलने जाते हैं। विलम्ब के लिए हारीत से क्षमायाचना करते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में ईश्वर में आस्था रखने वाले हारीत कहते हैं... "कुछ चिन्ता नहीं। पहले हम भगवान एकलिंग की पूजा कर लें फिर कुछ गम्भीर चर्चा करेंगे।"[7]

---

1. शिवा साधाना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–96
2. शतरंज की खिलाड़ी : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–36
3. भग्न प्राचीर : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–32
4. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–46
5. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–48
6. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–48–49
7. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–78

"प्रतिशोध" नाटक में प्राणनाथ प्रभु की ईश्वरीय सत्ता के अस्तित्व में आस्था रखते हुए लाल कुँवरि से कहते हैं... "उनकी पूजा सर्वोपरि है, बहन। अत्याचारियों के रक्त से माँ का खप्पर भरता रहे, यही माँ की विधिवत पूजा है। माँ का खप्पर इस मूर्ति के हाथ में नहीं हैं, वह अनन्त आकाश की भाँति व्यापक है, सम्पूर्ण पृथ्वी ही माँ का खप्पर है। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड ही सर्वव्यापनी, सर्वशक्तिमती सृष्टि और मरण की क्रीडा में विरत माँ भवानी का मन्दिर है। आज चम्पतराय विन्ध्यवासिनी की जिस प्रकार पूजा कर रहे हैं, उससे भवानी का हृदय तृप्त हो रहा है।"[1]

लालकुँवरि ईश्वर में आस्था व्यक्त करती है वह प्राणनाथ प्रभु से कहती है... "मैं देवी से यह याचना करने आई थी कि मेरा छत्रसाल बुन्देलखण्ड को स्वतंत्र कराने में समर्थ हो देवी की पूजा करके, छत्रसाल पर छत्रछाया करने की उनसे प्रार्थना करके मुझे शीघ्र वापस जाना होगा।"[2] बलदिवान ईश्वर की सत्ता में आस्था रखता है वह छत्रसाल से कहता है... "तुम वास्तव में नेतृत्व के योग्य हो, किन्तु भगवान की इच्छा जान लेना भी आवश्यक है। इस पर हमने दो चिट्ठियाँ लिखी। एक में लिखा था कि हमारा यज्ञ सफल होगा, दूसरी में लिखा था असफल। चिट्ठयों तह करके कहा कि भवानी विन्ध्यवासिनी का नाम स्मरणकर एक चिट्ठी उठाओ। उसने जो चिट्ठी उठाई उसमें लिखा था कि सफल होगा। अब मुझे विश्वास हो गया कि विन्ध्यवासिनी का आशीर्वाद हमारे साथ है।"[3]

"शीशदान" नाटक में "नाना साहब बच्चों को भगवान का रूप मानते हैं।"[4]

"अमर आन" नाटक में अहाड़ी रानी ईश्वर में विश्वास करती हुई कहती है... "भगवान करे सब ठीक ही हो, लेकिन पता नहीं मेरे मन में क्यों आशंका के बादल घिर रहे है।"[5] "भगवान ने चाहा तो हम शीघ्र ही फिर मिलेंगे।"[6] अहाड़ी रानी ईश्वर में विश्वास व्यक्त करती हुई दारा से कहती है... "भगवान तुम्हें बल दे और तुम्हारा संकल्प पूरा करे अब मेरी वाणी महा मौन में बिलीन हो जाना चाहती है।"[7]

1. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ–12
2. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ–15
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–93
4. शीशदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–128
5. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–66
6. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–71
7. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–96

"शपथ" नाटक में विष्णुवर्द्धन ईश्वर के अस्तित्व में आस्था रखता है। वह कहता है... "विधाता सृष्टिकर्त्ता पालनहार के साथ ही संहारक भी है। संसार में संहार न हो तो बसुधा विषधरो और हिंसक जन्तुओं से भर जाये और सृष्टि का जीवन रहना भी असम्भव हो जाए। अशिव, अंमगलकारी का संहार कल्याणकारी होता है, कर्त्ता जब हन्ता बनता है तो क्या असुन्दर हो जाता है, सुहासिनी।"[1]

"छाया" नाटक में छाया अपनी बेटी को आलौकिक सत्ता के विषय में अवगत कराती है। वह कहती है... "जिसने यह दुनियाँ बनाई है, जिसने आसमान मे तारे बनाये हैं, जमीन व फूल बनाये हैं, नदी–झील समुद्र व पहाड़ बनाये हैं जिसने तुम्हें बनाया है, मुझे बनाया है, सबको बनाया है।"[2] छाया अपनी बेटी के सुख लाभ के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती है... "बेटी तुझमें तेरे पिता के सारे सद्‌गुण हैं। ईश्वर तेरे सिर पर अपनी कृपा का हाथ रखे।"[3]

"आन का मान" नाटक में औरंगजेब ईश्वर के प्रति विश्वास रखता है। वह कहता है... "खुदा की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं होता।"[4] औरंगजेब अपने बेटे अकबर के विषय में कहता है... "उसने कहलाया है कि वह आयेगा हिन्दुस्तान लेकिन औरंगजेब इस संसार में नहीं होगा, लेकिन देखना है, खुदा के यहाँ पहले किसे आमंत्रण मिलता है।"[5] ईश्वर में विश्वास करता हुआ औरंगजेब कहता है... "लेकिन उसकी निशानियाँ है, शहजादा बुलंद अख्तर और शहजादी शफीयतुन्निसा। खुदा करे वे ही हमारे पास आ जायें।"[6]

"भाई–भाई" नाटक में रणमल ईश्वर में विश्वास करता है, वह कहता है... "हे भगवान! तेरी कैसी लीला है।"[7] किरण मयी भी ईश्वर में आस्था रखती है। वह कहती है... "किन्तु रणमल याद रखो, भगवान एकलिंग इस अन्याय को चलने नहीं देते। उनका तीसरा नेत्र खुलेगा और अन्यायियों को भष्म कर देगा।"[6] रणमल भी ईश्वर में आस्था व्यक्त करता है। वह कहता है... "बड़ी राजमाता, मैं भगवान के अतिरिक्त किसी से नहीं डरता। मेरे मन में लेशमात्र भी छल होगा तो भगवान एकलिंग

1. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–82
2. छाया : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–25
3. छाया : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
4. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–63
5. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–69
6. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–70
7. भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–77
8. भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–78

निश्चय ही मुझे दण्ड देंगे।"[1]

"रक्षाबन्धन" नाटक में विक्रम की यह प्रार्थना आलौकिक सत्ता में विश्वास व्यक्त कर रही है.... "भगवान शंकर! भगवती काली मुझे साहस दो, तेज दो मैं मेवाड़ की रक्त ध्वजा को सम्भाल सकूँ।"[2] हुमायूँ ईश्वर में आस्था व्यक्त करता हुआ कहता है... "तुम भूलते हो, तुम सब एक ही परबरदिगार की औलाद हो, हिन्दुओं के अवतारों ने और तुम्हारे पैगम्बरों ने एक ही रास्ता दिखाया है।"[3]

"शीशदान" नाट्यकृति में तात्या टोपे ईश्वर में आस्था व्यक्त करता हुआ कहता है... "द्रोपदी का चीरहरण संभव नहीं हुआ किन्तु अविचार और अत्याचार के हाथ थक गये। द्रोपदी का चीरहरण नहीं हुआ। भगवान का यही चमत्कार है, अजीजन। अंग्रेज भी भारतमाता का चीरहरण करने का यत्न कर रहे हैं, किन्तु भारतमाता को आज भी भगवान पर विश्वास है।"[4]

"विदा" नाटक में दुर्गादास ईश्वर में आस्था व्यक्त करता है... "भगवान पर भरोसा रख कर आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार कीजिये।"[5]

"संवत् प्रर्वतन" नाट्यकृति में विक्रम ईश्वरीय सत्ता में आस्था रखता है। वह कहता है... "धन्य हो बन्धु में ऐसे ही निर्भीक हृदय वाले व्यक्तियों की खोज में हूँ। आज तुमसे भेंट हुई इसमें भी मैं अदृश्य का कृपापूर्ण हाथ देखता हूँ।"[6]

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रेमी जी की नाट्यकृतियों में गाँधी जी के आध्यात्मिक विचार का प्रमुख तत्व ईश्वर पूर्ण रूप से विद्यमान है उनकी सभी कृतियों में गाँधी जी के आध्यात्मिक विचारों की प्रतिछाया देखने को मिलती है। भारतीय दर्शन में ईश्वर ही वह सर्वशक्तिमान सत्ता है, जो अखिल ब्रह्माण्ड को चलाती है। "प्रेमी जी" ने ईश्वर को विभिन्न नामों से अभिहित किया है।

2. जगतः—

भारतीय दर्शनों के आधार पर यह जगत् एक आलौकिक सत्ता के द्वारा ही चलाया जा रहा है। समग्र जगत उस अलौकिक सत्ता के सत्य से ही संचालित हो रहा है। कुछ लोग जो निर्गुण के उपासक हैं वे इस जगत् का नियामक ब्रह्म को

1. भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–78
2. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–7
3. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–38
4. शीशदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–129
5. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–25
6. शीशदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–129

मानते हैं जबकि सगुण के उपासक जगत का नियामक ईश्वर को मानते है। महात्मा गाँधी जी की भी इस जगत से ऊपर एक आलौकिक सत्ता में आस्था थी। वे जगत में उसका रूप देखते थे। उनका लक्ष्य सत्य एवं अहिंसा द्वारा रामराज्य की स्थापना करना था। गाँधी जी स्वयं कहते हैं... "ज्यों–ज्यों मैं प्रकृति के कानून पर अमल करता हूँ त्यों–त्यों मुझे जिन्दगी में मजा आता है। सृष्टि की रचना में आनन्द आता है उससे जो मुझे शान्ति मिलती है, और प्रकृति के गूढ़ भाव समझने की जो शक्ति प्राप्त होती है उसका वर्णन करना मेरी शक्ति से परे है.... जगत का नियमन प्रेम धर्म करता है। मृत्यु के होते हुए भी जीवन मौजूद ही है। प्रतिक्षण विध्वंस चल रहा है, परन्तु फिर भी विश्व तो विद्यमान ही है। सत्य असत्य पर विजय प्राप्त करता हैय ईश्वर शैतान के दाँत खट्टे करता है।"[1]

प्रेमी जी के नाटकों मे गाँधी जी के दर्शन से प्रभावित होने के कारण जगत् का जो रूप उभर कर आया है वह किसी सम्प्रदाय तक सीमित नहीं है अपितु अलौकिक सत्ता का ही वर्चस्व सर्वत्र देखने को मिलता है।

प्रेमी जी ने "स्वप्न भंग" नाटक में ईश्वर के अद्वैत का प्रतिपादन किया हैं। अपार वैभवशाली दारा को विपन्नावस्था में देखकर प्रकाश को दुःख होता है। उस समय वह ईश्वर से इस संसार को विनष्ट करने की कामना करता है। तब दारा उससे कहता है... "यह दुनियाँ और इस दुनियाँ के सब कुछ सिवा खुदा के कुछ नहीं है।"[2]

इसी अंक में नादिरा की दासी सलीमा नादिरा से शीघ्र ही दारा के दिल की रानी तथा भारत की मलिका बनने को कहती है, तो नादिरा उत्तर देती है... "जो इस दुनियाँ के चक्र को चलाता है उसकी आँखों में दारा का दारा की रानी का तथा दिल्ली का बादशाहत का क्या मूल्य है? जैसे एक विराट हिमालय के सामने एक रज कण।"[3]

प्रकाश संसार को ईश्वर की ही सत्ता मानता है वह कहता है... "संसार में जितना दुःख है उसको दूर करने की शक्ति भगवान के अतिरिक्त किसी में भी नहीं। भगवान तुम्हारी इच्छाएं पूरी करे।"[4] स्वप्न भंग में ही एक स्थल पर शाहनबाज औरंगजेब को समझाता हुआ कहता है कि, "तुम दुनियाँ को धोखा दे सकते हो लेकिन खुदा की आँखो में धूल नहीं झोक सकते।"[5] प्रकाश दारा की दीन हीन दशा देख कर संसार की दशा का वर्णन करता हुआ कहता है... "आज संसार में न्याय और मनुष्यता

1. सर्वोदय– वर्ष 1 अंक 8, चतुर्थ आवरण, पृ0–
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–117
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–13
4. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–30
5. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–49

का पद–पद पर अपमान हो रहा है। ...इस संसार को नष्ट क्यों नहीं करदेते, महाकाल!"[1]

"आहुति" नाटक में अलाउद्दीन अपने सेनापति मीरगभरू को (उसके भाई) मीर महिमा के विरुद्ध युद्ध करने का आदेश देता है, इससे उसका द्वितीय सेनापति जमाल खाँ विचलित हो जाता है, उसमें अपने पराये के भाव अधिक हैं। वह भाई के विरुद्ध युद्ध भूमि में जाने की अपेक्षा आत्महत्या करना श्रेष्ठ मानता है। इस परिप्रेक्ष्य में मीर गभरू का कथन अवलोकनीय है... "दुनियाँ में सिर्फ एक माँ है और वह है खुदा, जो तुम हो वही महिमा है, वही अलाउद्दीन है वही हमीर है... जब हम हमीर के खिलाफ तलवार उठाने में नही हिचकते तो महिमा के खिलाफ उठाने में क्या हिचकूँ।"[2]

"शपथ" नाटक में विष्णु वर्धन जगत में संतुलन रखने के लिए संहार को भी आवश्यक मानते हुए सुहासिनी से कहता है... "संसार में संहार न हो तो वसुधा विषधरों एवं हिंसक जन्तुओं से भर जाए।"[3]

"कीर्ति स्तम्भ" नाटक में सूरजमल और ज्वाला के पिता श्री ऊदा जी देशद्रोही होने के कारण रणक्षेत्र में मारे जाते हैं। यद्यपि उनकी मृत्यु के उत्तरदायी सूरजमल और ज्वाला हैं, फिर भी वे मोह के वशीभूत होकर दुःखी है। ऐसी स्थिति में संग्राम सिंह उन्हें उपदेश देते हुए कहते है... "मोहवश हम सत्य को असत्य समझ बैठे हैं। कृष्ण ने गीता में देह को असत्य एवं आत्मा को सत्य बताते हुए संसार के सारे नाते झूठे सिद्ध किये हैं। समर भूमि में कर्त्तव्य कीप्रेरणा से युद्ध करते समय हमें इन सभी नातों से ऊपर उठना होगा।"[4] संग्राम सिंह का उक्त कथन हमें संसार के झूठे रिस्तों से ऊपर उठ कर संसार के वास्तविक स्वरूप को समझने की प्रेरणा देता है।

"आहुति" नाटक में संसार में नियतिवाद का वर्णन हुआ है। हम्मीर सिंह अपूर्ण साहस और शौर्य का प्रदर्शन करके अलाउद्दीन की सेना को परास्त कर उनकी पताकाए छीन लेते हैं और उन्हें आगे करके अपने दुर्ग की ओर प्रत्यावर्तित होते हैं। उस स्थिति में क्षत्राणियाँ शत्रु–विजय की आशंका से भयभीत होकर जौहर की अग्नि में आत्म बलिदान करती हैं; महाराव के पुत्र अक्षय सिंह को शत्रुओं के हाथों में पड़ने से बचाने के लिए भागती हुई चपला जिस समय तुरही की ध्वनि से राजपूतों की विजय का आभास पाती है तो वह महाराव के समीप जाकर उन्हें वस्तुस्थिति से अवगत कराती है। उस समय वेदनातुर महाराव संसार की नियति के समक्ष मानव की

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–115
2. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–28
3. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–82
4. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–24

पराजय को व्यक्त करते हुए सैनिको को आदेश देते हैं... "अब गढ़ के भीतर क्या होगा? अब संसार में हम बिल्कुल अकेले हैं, चलो वापस चलो। शत्रु से लोहा लेते हुए सदा के लिए सो जाओ। नियति हमारे विरुद्ध है भाई, और फिर एक न एक दिन यही स्थिति आनी थी।"[1]

उपरोक्त उद्धरण इस बात के प्रमाण हैं कि प्रेमी जी के नाटकों में जगत के नश्वर रूप का प्रतिपादन हुआ है। प्रेमी जी ने गाँधीवादी विचार दर्शन के अनुरूप ही स्वीकार किया है कि संसार नश्वर है इस संसार का नियंता एक ही ईश्वर है। उसे किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। साथ ही संसार में नियतिचक्र बलवान है। वह व्यक्ति को नचाया करता है। जगत् के इन्हीं भावो को प्रेमी जी ने स्थान–स्थान पर व्यक्त किया है।

3. मानवः–

प्रेमी जी के जीवन काल में दो महायुद्ध हो चुके थे, उन युद्धो के परिणाम लोगों को विदित हो गये थे, फिर भी हिंसा–प्रतिहिंसा का क्रम अनवरत रूप से चल रहा था। गाँधी जी ने मानवता को प्रमुख स्थान दिया। गाँधी जी ने दुःखी एवं निराश्रित मानव की भलाई के लिए कार्य किये। मानवतावादी विचारों से ओत–प्रोत प्रेमी जी के अन्तःकरण के पवित्र भाव की प्रतिछाया हमे उनके नाटकों में भी देखने को मिलती है।

"शपथ" नाटक में उज्जयिनी की कंचनी परिस्थितिवश नर्तकी बनती है। विष्णु बर्द्धन पतन मार्ग की ओर जानेवाली कंचनी को सुमार्ग पर आने का अधिकारी मानते है। वे वत्स से कहते है... "कोई व्यक्ति किसी कारण, प्रलोभन और परिस्थितिवश पतन के पथ पर चला गया तो क्या वह सदा के लिए सुपंथ पर सम्मानपूर्वक आने का अधिकार खो बैठता है। जिस दिन हमारा समाज इतना अनुदार हो जायेगा उसी दिन समझ लो उसमें विनाश के कीटाणु जन्म ले लेंगे।"[2] वत्स भी विष्णु बर्द्धन के कथन की प्रशंसा करते हैं। विष्णु बर्द्धन वेश्या को गृहणी बनाने के लिए तैयार हो जाते हैं।[3]

"रक्षाबन्धन" नाट्यकृति मैं जबाहरबाई को जब पता चलता है कि कर्मवती हुमायूँ को भाई बनाना चाहती है, तो वह चौंक जाती है तब कर्मवती मानव मात्र में समानता को दर्शाती हुई कहती है... "चौंकती क्यो हो, जबाहर बाई! मुसलमान भी इन्सान हैं। उनके भी बहने होती है। सोचो तो बहन, क्या वे मनुष्य नहीं हैं? क्या

1. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–90 से 91
2. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–104
3. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–104, 157

उनके हृदय नहीं है? वे ईश्वर को खुदा कहते, मन्दिर में न जाकर मस्जिद में जाते हैं, क्या इसीलिए हमें उनसे घृणा करनी चाहिए।"[1]

"विदा" नाट्यकृति में दुर्गादास अकबर से कहता है भारत के दुर्भाग्य से आज शिवाजी हमारे बीच नहीं है। वह होते तो आज हिन्दुस्तान की स्थिति और ही होती। वह एक चतुर राजनीतिज्ञ थे। वह मानव मात्र की भलांई के लिए कार्य करते रहे। इस सन्दर्भ में अकबर कहता है... "वह एक ऊँचे दर्जे के देश प्रेमी थे। एक सच्चे मानव थे। उनके दिल में हिन्दू–मुसलमान किसी प्रकार का भेद नहीं था। उनकी सेना में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी।"[2]

"प्रतिशोध" नाट्यकृति में जेबुन्निसा मानवता के विषय में सोचती हुई कहती है कि... "मैं यह सोचकर हैरान हूँ कि मजहब के नाम पर इन्सान इन्सान की जान क्यों लेता है। मालूम नहीं यह खुदगरजी की आँधी इन्सानियत को कहाँ लिये जा रही है। अब्बा को भी सारी जिन्दंगी भर एक खब्त सवार रहा हैं... दुनियाँ को मुसलमान बनाने का! आखिर यह क्यों? क्या हिन्दू रह क़र इन्सान–इन्सान नहीं रहता? मुसलमान बनकर क्या वह ज्यादा खूबसूरत हो जाता है? अब्बा के तउस्सुब ने न जाने कितने बेकसूर लोगों की जान ले ली है। हक का जल्बा दुनियावी रिश्तों सें ऊपर है। मेरा जी चाहता है कि इस जुल्म के खिलाफ मैं भी बागी बन कर मराठों, बुन्देलों और राजपूतों की मदद करूँ। राजपूतों की कौम भी कितनी अच्छी है, जहाँ औरतें भी तलवार चलाती हैं काश! मैं राजपूतानी होती।"[3]

"रक्षाबन्धन" नाट्यकृति में कर्मवती हुमायूँ को राखी भेजकर मानवता के प्रति संकेत करती हुई जबाहर बाई से कहती है... "समझदार शत्रु को शत्रु बनाये रखना ही तो मनुष्यता नहीं है। हुमायूँ वीर है और वीर पुत्र है। विग्रह और सन्धि दोनों में वह मेवाड़ियों के लिए योग्य प्रतिपक्षी है। उसे भाई बनना आता है। ऐसे वीर की बहन बनने में किसी भी क्षत्राणी को गर्व होना चाहिये।"[4] इसी नाट्यकृति में तातार खाँ कहता है... "आँखो पर से तअस्सुब का चश्मा हटा कर देखो। जिन्हें हम दुश्मन समझते हैं, वे सब हमारे भाई हैं। हम एक ही खुदा के बेटे हैं।"[5]

"स्वप्न भंग" नाट्यकृति में छत्रसाल सभी मानव जाति को एक ही बाप का बेटा मानता है । वह कहता है... "मनुष्य न हिन्दू है न मुसलमान। युवराज दारा

1. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27
2. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–5
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–121
4. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–28
5. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37

और मैं साथ–साथ बैठते–उठते, हँसते–गाते और एक दूसरे का सुख–दुःख कहते–सुनते हैं। मानो हम एक ही बाप के बेटे हों हमारे सामने जाति धर्म का प्रश्न ही नहीं उठता।"[1]

"शपथ" नाट्यकृति में क्षत्रिय सैनिक भीमदेव हूण सैनिकों को एक अस्पृश्य स्त्री पर अत्याचार करते हुए देख कर भी उसकी सहायता नहीं करता है, क्योंकि वह अन्त्यज जाति की है। उसकी चीत्कार को सुनकर मालू नामक भील उस स्त्री की सहायता के लिए भीमदेव को प्रेरित करता है, परन्तु वह उसकी उपेक्षा करता है। तदन्तर वह भीमदेव की तलवार छीन कर उन सैनिकों से भिड़ जाता है। उसी समय उसकी सहायता के लिए सुहासिनी एवं उमा आ जाती है। सुहासिनी जिस समय युवती के बन्धन खोलने के लिए आगे आती है, उसी समय भीमदेव कहता है... "वह चाण्डाल है, अस्पृश्य!" तत्क्षण सुहासिनी कहती है... "चाण्डाल वे हैं जो मनुष्य को अस्पृश्य समझते हैं।"[2]

"प्रकाश स्तम्भ" नाट्यकृति में बाप्पा रावल जन्म को जाति का निर्धारक न मानकर कर्म को मानता है और इस दृष्टि से वह मानव मात्र की एक जाति मानता है। उसका जन्म राजपरिवार में होता है। भीलों के साथ ग्राम्य वातावरण में रह कर बाप्पा इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि... "जाति प्रथा ने हमारे समाज को छिन्न–भिन्न कर दिया है। उच्च जाति वालों ने समाज केएक अंश को अस्पृश्य और दास की स्थिति में पहुँचा दिया है।"[3] हममें पारस्परिक भातृ भाव समाप्त हो गया है वह इसे शोषण मान कर मानव जाति पर अत्याचार मानताहै उसकी यह भी मान्यता है कि... "पवित्रता, सच्चरित्रता और वीरता किसी जाति या वर्णविशेष की धरोहर नहीं है।"[4]

विकास के अवसर मिलने पर शूद्र में भी मानवता के वे ही उच्चगुण आ सकते हैं, जो ब्राह्मण की सन्तान में हो सकते हैं।[5] बाप्पा के भील साथी बाल्या को जब यह ज्ञात होता है कि बाप्पा राजपुत्र है तो वह हीनता के भाव से मुक्त हो जाता है। उस स्थिति में बाप्पा कहता है... "बाप्पा तो उस राम का वंशज है, जिसने निषाद को गले लगाया, जिसने शबरी भीलनी के झूठे बेर खाये, जिसने वानर सेना संगठित कर लंका को जीता था।"[6] प्रकारान्तर से वह अपने साथियों से स्वयं को श्रेष्ठ न मानते हुए मानव मात्र का ही एक अंश मानता है।

---

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी पृ0–80
2. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–68
3. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–15
4. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27
5. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–72
6. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–72

"शीशदान" नाटक मे तात्या के माध्यम से प्रेमी जी ने मानव को केवल मानव माना है। तात्या कहता है... "मैं केवल एक ही जाति को मानता हूँ वह है मनुष्य तुम्हें इस बात में सन्देह नहीं होना चाहिये कि तुम मनुष्य हो अपने हाथः से शरवत देने में संकोच क्यों हुआ तुम्हें?"[1]

इस प्रकार प्रेमी जी के नाटकों में विश्व मानवता की झलक दिखाई पड़ती है। उन्होंने विभिन्न विषयों को उठाकर अपने नाटकों के माध्यम से मानवतावाद के सिद्धान्तों को स्थापित किया। उनके अन्तःकरण के पवित्र भाव की प्रति छाया उनके नाटकों में विभिन्न रूपों में देखने को मिलती है।

4. पुनर्जन्मः–

भारतीय दर्शन परम्परा आत्मा को अमर मानती है, साथ ही पुनर्जन्म में भी विश्वास करती है। श्रीमद्भगवत् गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन का मोह दूर करने के लिए उपदेश देते है, उसमें आत्मा की अमरता की तथा पुनर्जन्म की बात आती है–

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहाणाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयति नवानि देही।।"[2]

अर्थात् हे! अर्जुन न कोई मरता है और न कोई मारता है। आत्मा तो अजर–अमर है। जिस प्रकार से मनुष्य पुराने कपड़ों को त्यागकर नये वस्त्र धारण करता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी पुराने शरीर को त्याग कर नयें शरीर में प्रवेश करती है। महात्मा गॉधी को गीता ने बहुत ही प्रभावित किया, जिसका उन्होंने अपनी आत्मकथा तथा प्रवचनों में जिक्र किया है। उन्होंने गीता के सम्बन्ध में यहॉ तक कहा है कि मैं जब किसी समस्या से जूझता हूँ तो उसका समाधान मुझे गीता जी में मिल जाता है। गॉधी जी पुनर्जन्म को मानते थे। उन्होंने कहा भी है– "मैं वेद, उपनिषद्, पुराण और जो कुछ हिन्दू धर्म शास्त्र नाम से जाना जाता है, तथा अवतारों और पुनर्जन्म में मेरा विश्वास है।"[3] वे हिन्दू धर्म को शाश्वत मानते हैं तथा मोक्ष या मुक्ति को भी मानते है। उन्होंने कहा है– "हिन्दू धर्म की मूलभूत मान्यताऍ अन्य विशाल धर्मो के समान शाश्वत हैं और आसानी से समझ में आने वाली है। हर हिन्दू एक ही ईश्वर को मानता है, पुनर्जन्म मानता है और मुक्ति या मोक्ष मानता है।"[4]

1. शीशदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–20–21
2. श्रीमद्भगवत् गीता : अध्याय–2, श्लोक–22
3. हिन्दू धर्माभिमानी महात्मा गॉधी : जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–14
4. हिन्दू धर्माभिमानी महात्मा गॉधी : जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–15

प्रेमी जी ने गाँधी जी के आध्यात्मिक विचारों से प्रेरित होकर साहित्य का सृजन किया, जिससे उनके नाटकों में इस भारतीय दर्शन के तत्व पुनर्जन्म में दृष्टिगोचर होती है।

"प्रकाश स्तम्भ" नाटक में चम्पा उच्च या निम्न जाति में जन्म लेने के सम्बन्ध में हारीत से कहती है... "उच्च या निम्न जाति में जन्म लेना तो व्यक्ति के गत जीवन के सुकृत्यों अथवा कुकृत्यों पर निर्भर है।"[1] चम्पा का यह कथन पुनर्जन्म की ओर संकेत करता है।

"विदा" नाटक में औरंगजेब एकाएक स्वप्न को देखकर डर जाता है। वह बचाओ–बचाओ चिल्लाता है। उसकी बेगम उदयपुरी उसके पास जाती है तो औरंगजेब बताता है, स्वप्न में मैंने देखा है कि चारों कोनो से चार काले नाग फुँफकारते हुए मुझे डसने के लिए आ रहे हैं तथा उन साँपो के मुँह मेरे बेटों जैसे हैं। इसी प्रसंग के समय उदयपुरी बेगम कहती है... "मैंने तो मरे हुओं को जीवित होते नहीं देखा।"[2] लेकिन औरंगजेब पुनर्जन्म में विश्वास करता है। वह कहता है... "लेकिन मैंने तो देखा है। मैंने समझा था दारा मर गया... लेकिन नहीं वह जीवित है। उसने मेरे पुत्र का रूप रख लिया है। अकबर कौन है दारा नही तो कौन है।"[3]

अकबर अपने पिता से नाराज होकर ईरान चला जाता है। उदयपुरी बेगम औरंगजेब से कहती है कि आप अकबर को क्षमा कर दीजिये तथा अपने पास बुला लीजिये। औरंगजेब को पुनर्जन्म में पूर्व आस्था है। वह उदयपुरी बेगम से कहता है... "मैं अकबर को क्षमा कर दूँ तो भी वह मुझे क्षमा नहीं करेगा उदयपुरी। इसलिऐ कि अकबर, अकबर नहीं है जो मेरा पुत्र बन कर आया है। मैंने उसे मारा था और वह मुझसे प्रतिशोध लेना चाहता है।"[4]

"प्रेमी जी" की नाट्य कृतियों में पुनर्जन्म कम ही उदाहरण देखने को मिलते हैं। उनकी कुछ कृतियों में आत्मा की अमरता परिलक्षित होती है। जो कि पुनर्जन्म से सम्बन्धित है। क्योंकि आत्मा अमर है तभी तो पुनर्जन्म होता है। भारतीय दर्शन में ऐसा मानते हैं कि जब तक पुनर्जन्म नहीं हो जाता है तब तक आत्मा भटकती रहती है। महात्मा गाँधी ने आत्मा की अमरता के विषय में कहा है... "..... आत्मा का कभी जन्म और मरण नहीं होता, प्रत्येक शरीर में अवतरित हो वह एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है, और वह मोक्ष को प्राप्त करने में समर्थ है।"[5]

---

1. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
2. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–146
3. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–146
4. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–147
5. हिन्दू धर्माभिमानी महात्मा गाँधी : सम्पादक– जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–20

"कीर्ति स्तम्भ" नाटक में सूरजमल और ज्वाला के पिता श्री ऊदा जी देशद्रोही होने के कारण रणक्षेत्र में मारे जाते है। यद्यपि उनकी मृत्यु के उत्तरदायी सूरजमल और ज्वाला हैं। फिर भी वे मोह के वशीभूत दुःखी हैं। ऐसी स्थिति में संग्राम सिंह उन्हें उपदेश देते हुए कहते हैं... "मोहवश हम असत्य को सत्य समझ बैठे है। कृष्ण ने गीता में देह को असत्य और आत्मा को सत्य बताते हुए संसार के सारे नाते झूठे सिद्ध किये है। समर भूमि में कर्त्तव्य की प्रेरणा से युद्ध करते समय हमें इन सभी नातों से ऊपर उठना होगा।"[1]

"आहुति" नाट्यकृति में विजयोन्माद में शत्रु की पताकाओं को लेकर आते हुए राजपूतों को शत्रु सेना समझ कर समस्त वीरांगनायें जौहर व्रत का पालन करने के लिए तैयार हो जाती हैं। उसी समय राजकुमार अक्षय सिंह को लेकर चपला, महारानी के समक्ष आती है। बालक अक्षय सिंह अपनी माँ को जौहर की ज्वाला में दग्ध होने के लिए तैयार होता देख कर दुःखी होता है और कहता है... "माँ तुम मुझे छोड कर जाओगी?"[2] इस स्थिति मे महारानी का आत्मा की अमरता के सम्बन्ध में यह कथन अवलोकनीय है... "नहीं बेटा, मेरा शरीर जलकर भष्म हो जायेगा, किन्तु मेरी आत्मा तुम्हारे चारो ओर मंडराती रहेगी। तुम्हारे पिता जी की आत्मा भी तुम्हारी आत्मा में निवास करेगी।"[3] इस प्रकार महारानी आत्मतत्व की अमरता का वर्णन करके अपने दुःख दग्ध पुत्र को सान्त्वना प्रदान करती हैं।

"आन का मान" नाट्यकृति में औरंगजेब ने दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए अपने स्वजनों का वध किया था। इन घटनाओं की स्मृति से मेहरुन्निसा को अपार वेदना होती है। वह ग्वालियर के किले में मारे जाने वाले अपने स्वसुर मुरादबख्श के सम्बन्ध में अपनी अग्रजा जीनतुन्निसा से कहती है कि उस कमरे में जिसमें उन्होंने अन्तिम स्वांस ली थी। भयानक अट्टाहास सुनाई दिया जब चारों ओर देखा तो कुछ दिखाई नहीं पड़ा मेरे कानों में समुद्र के गर्जन जैसे शब्द सुनाई दिये... "ओ औरंगजेब की बेटी अपने बाप से कह देना कि उसने अपनी बेटी का व्याह मेरे बेटे से कर दिया है। इसलिए उसे मैं क्षमा नहीं कर दूँगा। मैं अभी मरा नहीं हूँ और उसने जितने लोगों को मारा है, उसमें से कोई नहीं मरा है।"[4] इस कथन में आत्मा की अमरता परिलक्षित होती है।

उस आवाज (अमर आत्मा) ने जो कहा मेहरुन्निसा अपनी बहिन जीनतुन्निसा से कहती है... "उस आवाज ने आगे कहा कि मुझे दिल्ली में एक बार

1. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–24
2. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–86
3. आहुति : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–86
4. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56

जसबन्त सिंह के पुत्र पृथ्वी सिंह मिल गये, जिन्हें औरंगजेब ने जहरीला शिरोपाँव पहनाकर मार डाला था। पृथ्वी सिंह ने कहा.... "मैं धूर्त औरंगजेब से प्रतिशोध लिए बिना नहीं रहूँगा। मैंने मारवाड़ के घर–घर में जन्म लिया है। मैं मर नहीं सकता। मुझे जितनी बार मारा जायेगा, मैं उतनी बार जन्म लूँगा।"[1] उस आवाज ने शम्भा जी के विषय में भी बताया जिसको मेहरुन्निसा जीनतुन्निसा को बताती है... "मैं एक बार दक्षिण भी गया था। वहाँ मुझे शम्भा जी मिले थे। उन्होंने कहा मुराद मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ, तुम अगर दिल्ली के तख्त पर बैठते तो मेरा तुमसे झगड़ा न होता क्योंकि हम दोनों का स्वभाव एक था। हम रण भूमि में महाकाल के अवतार रहे तो रंगमहल में अनंग के। हम जीवन को जीना जानते थे। मुझे मरने का जरा भी खेद नहीं, लेकिन मैं इस बात को जरा भी नहीं भूल सकता कि मेरा मुँह काला करके मेरे गले में घटियाँ बाँध पर ऊँट पर बिठा कर मुझे विशालगढ़ से बहादुरगढ़ तक लाया गया था और बहादुरगढ़ में मुगल सेना के डेरों में पैदल घुमाया गया था। मैं इसे नहीं भूलूँगा। मैं प्रतिशोध लूँगा।"[2] "अमर आन" नाटक में उक्त कथनों में आत्मा की अमरता ही परिलक्षित होती है।

"प्रेमी" जी ने 'शपथ' नाटक में भी अन्य अनेक नाटकों की तरह आत्मा की अमरता को स्वीकार किया है। मंदाकिनी अपनी माँ से आत्मा की अमरता के सम्बन्ध में कहती है... "गीता से आज भी आत्मा की अमरता का विश्वास पाकर अन्याय और अत्याचार से संग्राम करने को वह प्रस्तुत है।"[3]

इसी कृति में विष्णुवर्द्धन अपनी माँ पार्वती को सती होने को तैयार होता देखकर पूछता है कि आप हमें अकेला छोड़कर सती होगी। माँ के बिना बेटा अपना प्रण पालन कैसे करेगा? उसके उत्तर में पार्वती कहती है... "तुम्हारी माँ वायु में व्याप्त होकर प्रत्येक पल तुम्हें आशीर्वाद देगी, तुम्हारे संकल्पों को बल प्रदान करेगी।"[4] पार्वती का उक्त कथन आत्मा की अमरता की ओर संकेत करता है।

विष्णुवर्द्धन अपनी माँ को सती होने से रोकना चाहता है। इस पर पार्वती कहती है... "आत्मा अमर है, तुम्हारी माँ मरेगी नहीं ।"[5]

इस प्रकार "प्रेमी" जी ने अपनी नाट्यकृतियों में पुनर्जन्म में आस्थाव्यक्त करते हुए अपने नाटकों में गाँधीवादी आध्यात्मिक विचारों का प्रतिपादन भी किया है।

---

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–57
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–58
3. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–17
4. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–19
5. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–22

5. कर्मफलः—

महाभारत के युद्ध में अर्जुन अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर युद्ध करने को तैयार नहीं थे। भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने का उपदेश दिया। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है...

"कर्मण्डेवाधिकारस्तें मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फल हेतु भूर्मा ते सङ्‌गोअस्त्व कर्माणि।।"[1]

अर्थात् तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे फल में कभी नहीं और तू कर्मो के फल की वासना वाला मत हो तथा तेरी कर्म करने में भी प्रीति न होवे।

गाँधी जी को भारतीय दर्शन में पूर्ण आस्था थी, वे ईश्वर में विश्वास के साथ ही जगत, पुनर्जन्म तथा कर्मफल में भी विश्वास करते थे। जिसके अनुसार प्रत्येक कर्म का ईश्वर नियमानुसार फल प्रदान करता है। वे कहते हैं... "जैसा बोयेगा, वैसा ही काटेगा। कर्म का सिद्धान्त अखण्डित और अखण्डनीय है। इसलिए ईश्वर के हस्तक्षेप का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर तो नियम का निर्धारण कर देता है, फिर वह हमें भी यों ही छोड़ देता है।"[2] इस कर्म के नियम के अनुसार ही गाँधी जी शरीर श्रम की महत्ता पर बल देते थें, "जिसकी झलक उन्हें भगवत गीता के तृतीय अध्याय में मिली जिनमें बिना यज्ञ किये खाने वाले को चोर कहा गया है।" गाँधी जी के आश्रम के लोग खेती–बाड़ी करते थे तथा बचे हुए समय में चरखा कातते थे। जिसके फलस्वरूप उन्हें खाने के लिए अनाज एवं सूत कातने से कपड़ा उपलब्ध होता था। गाँधी जी कहते थे... "खेती का आदर्श ध्यान में रखते हुए लोग उसके विकल्प में दूसरे श्रम जैसे कताई, बुनाई, बढ़ईगीरी, लुहारी इत्यादि भी कर सकते है।"[3] गाँधी जी के इन सिद्धान्तों को साहित्यकारों ने अपने साहित्य में अवतरित किया है। हरिकृष्ण प्रेमी को गाँधी जी के आध्यात्मिक विचारों मे अटूट आस्था थी, इसी लिये उनके साहित्य में भी इस पवित्र भाव की प्रतिच्छाया देखने को मिलती है।

"रक्षाबन्धन" नाटक में महाराणा संग्राम सिंह की पत्नी महारानी कर्मवती अपने पति की मृत्यु के बाद जीवित रहती है, परन्तु बहादुर शाह के आक्रमण तथा आपसी वैमनस्य के कारण मेवाड़ के दुर्दिन आ जाते हैं। वे हुमायूँ को राखी भेजती हैं, परन्तु शेरखाँ से बंगाल–बिहार में युद्धरत रहने के कारण उसे आने में विलम्ब होता है। इधर मेवाड़ में रक्षा करने की समर्थ नहीं है। ऐसी स्थिति में वे निराश होकर बारह

1. श्रीमद्भगवत गीता : अध्याय–2, श्लोक–47
2. महात्मा गाँधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0–43 से 44
3. महात्मा गाँधी का दर्शन : डॉ0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0–84

हजार वीरांगनाओं के साथ जौहर–व्रत का पालन करती हैं। इससे राजपूतों में उत्साह का संचार होता है तथा वे पूर्णतन्मयता से युद्ध में लग जाते हैं। महाराणा बाघ सिंह इस स्थिति में प्राप्त पराजय को विजय से भी श्रेष्ठ मानते है, क्योंकि उनका कर्मफल में पूर्ण विश्वास है। वे भीलराज से कहते हैं... "....हम तो केवल एक बात जानते हैं... रण में अपनी आंहुति देना। फल क्या होगा? यह हम नहीं सोचना चाहते। जिस पर हमारा अधिकार नहीं है, उसका हमें मोह क्यों हो?"[1]

"स्वप्न भंग" नाटक में दारा अपने मित्र छत्रसाल की मृत्यु के अनन्तर प्रमत्त लोगों जैसा प्रलाप करता हुआ आत्महत्या करने के लिए उद्यत है। वह अपनी पत्नी नादिरा से विष का प्याला माँगने लगता है। उसकी जिजीविषा समाप्त हो चुकी है। जहानारा उसे साधनारत रहने का उपदेश देती है। वह दारा से कहती है... "तुम हिम्मत हारते हो, दारा ...पुरुष नियति का दास नहीं, उसका निर्माता है। निरन्तर साधना में लगे रहना ही मनुष्य की सच्ची सफलता है।"[2] दारा किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में शाहजहाँ के पैरो पर गिर पड़ता है। वह उनसे अपने जीवित न रहने की आकांक्षा व्यक्त करता है। इस कथन को सुनकर जहानारा कहती है... "तुम यह क्या क़हते हो! वीर पुरुष असफलताओं की सीढ़ी बनाकर विजयमन्दिर में प्रवेश करते हैं, भैया तुम्हें अभी बहुत कार्य करना है।"[3]

दारा का प्रारम्भिक जीवन सुख समृद्धि से परिपूर्ण रहा था। तदुपरान्त यकायक कष्टों तथा दुःखों ने उसे दुर्बल बना दिया, परन्तु वह अपनी पूर्व दुर्बलता को अपने सिद्धान्तों और आदर्शों की पूर्णता हेतु सबलता में परिणत कर लेता है। असहनीय कष्ट सहने के उपरान्त जब सपत्नीक उसकी भेंट एक वृद्ध मजदूर प्रकाश से होती है, तो उसमें दृढ़ता का संचार हो जाता है। जैसा कि दारा के विचारों से स्पष्ट है... ".... जीवन के अन्तिम पल तक इसके लिए संघर्ष करूँगा। मैंने गीता को भी पढ़ा है, उसका फारसी में अनुवाद भी किया है। मैं कर्म के तत्व को मानता हूँ। फल की मुझे चिंता नहीं है।"[4] वह अन्त तक कर्म करता रहता है।

"प्रतिशोध" नाट्यकृति में छत्रसाल अपने गुरू प्राणनाथ प्रभु से प्रभु छत्रसाल को कर्म का सन्देश देते है वे कहते हैं... "धैर्य धारण करो कुमार तुम उन्हीं चम्पतराय के पुत्र हो, जिन्होंने एकाकी ही मुगल साम्राज्य की प्रबल शक्ति और बुन्देलखण्ड के देशद्रोही राजाओं से आजीवन युद्ध किया था, जिन्हें कभी भी विजयों ने उद्धत नहीं बनाया, पराजयों ने निराश नहीं किया। ऐसे पिता के पुत्र होकर तुम

1. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–116
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–85
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–86
4. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–117 से 118

विचलित होते हो, छिः कुमार, तुम्हें यह मिथ्या शोक छोड़कर कर्म करना चाहिये।"[1] छत्रसाल देशहित के कार्यो में संलग्न हो जाता है, उसका एकमात्र सहायक, रतनशाह ओर छत्रसाल के कार्यो का समर्थन नहीं करते। ऐसी स्थिति में अंगदराय कहता है.... "सफलता न मिले तो न सही, किन्तु पिता की ही भाँति एक उज्जवल आदर्श के लिए अपने प्राण समर्पित करने का आनन्द तो हम पा ही सकेंगे।"[2] अंगदराय के उक्त कथन के सन्दर्भ में छत्रसाल का कथन अवलोकनीय है... "हाँ भैया, मैं भी यही समझता हूँ कि कर्म करना ही हमारा धर्म है। विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना पौरुष है।"[3] साधन हीन होने पर भी छत्रसाल अनवरत रूप से अपने कार्य में अनवरत रहता है।

"आहुति" नाटक में नियतिवाद के साथ कर्मफल का वर्णन आया है। हम्मीर सिंह अपूर्व साहस और शौर्य का प्रदर्शन करके अलाउद्दीन की सेना को परास्त कर उनकी पंताकाएँ छीन लेते हैं और उन्हें आगे कर अपने दुर्ग की ओर प्रत्यावर्तित होते हैं। उस स्थिति में क्षत्राणियाँ शत्रु विजय की आशंका से भयभीत होकर जौहर की अग्नि में आत्म बलिदान करती हैं, महाराव् के पुत्र अक्षय सिंह को शत्रुओं के हाथ में पड़ने से बचाने के लिए भागती हुई चपला जिस समय तुरही की ध्वनि से राजपूतों की विजय का आभास पाती हैं, तो वह महाराव के समीप जाकर उन्हें समस्त वस्तुस्थिति से अवगत कराती है। उस समय वेदनातुर महाराव नियति में आस्था प्रकट करते हुए चपला से कहते हैं... "भगवान शंकर को जो स्वीकार था। वहीहुआ। नियति के बज्रलेख के आगे मानव का पराक्रम पराजित हुआ। हमारी विजय अब हमारे किस उपयोग की? अब गढ़ के भीतर क्या होगा? अब संसार में हम बिल्कुल अकेले हैं, चलो वापस चलो शत्रु से लोहा लेते हुए सदा के लिए सो जाओ। नियति हमारे विरुद्ध है भाई, और फिर एक न एक दिन यही स्थिति आनी थी।"[4] वे इस दुःख को भी वरदान स्वरूप स्वीकार करके कर्म क्षेत्र में अपने साथियों सहित पुनः चले जाते है। वे इस स्थिति को अवश्यम्भावी समझ कर निराश नहीं होते हैं।

इससे स्पष्ट है कि नियतिवाद में आस्था होते हुए भी वे कर्ममय जीवन को ही श्रेष्ठ समझते हैं, उनकी नियति कर्मवाद से परिपूर्ण है।

"विषपान" नाटक में कृष्णा के विवाह को लेकर संघर्ष की स्थिति है। एक ओर से जयपुर नरेश जगत सिंह और दूसरी ओर से जोधपुर नरेश मानसिंह सेना सहित चित्तौड़ नगर की सीमा में ठहरते हैं। ऐसे समय में दौलत सिंह मेवाड़ की

---

1. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
2. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–67
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–67

रक्षा के लिए स्वेच्छा पूर्वक निर्वासित शक्तावत सरदार, संग्राम सिंह के पास जाकर उसे वस्तुस्थिति से अवगत कराता है। संग्राम सिंह का मत है कि टीका जोधपुर नरेश के लिए भेजा गया है। अतः विवाह भी उन्हीं के साथ होना चाहिए। तदुपरान्त दौलत सिंह इस तथ्य से भी अवगत कराता है कि मानसिंह के सहयोगी अमीर खाँ के पास तोपें हैं, अतः उनका सामना तलवारों एवं बल्लमों से नहीं किया जा सकता, तदोपरान्त वह मेवाड़ के सम्मान की रक्षा के लिए विजय के उद्देश्य को प्राप्त करने की अभिलाषा व्यक्त करता है, इस सम्बन्ध में संग्राम सिंह भारतीय संस्कृति के अनुरूप निष्काम कर्मयोग का उपदेश देता हुआ कहता है.... "हमें केवल कर्म करना है। फल भगवान के हाथ है।"[1] इस प्रकार संग्राम सिंह उद्देश्य सिद्ध को महत्व प्रदान नहीं करता बल्कि कर्म में आस्था रखता है।

"उद्धार" नाटक में द्विजराज विदेशी शासन को भाग्य का लेख समझता है, उसका विचार है कि भाग्य का लेख प्रयत्न करने पर भी परिवर्तित नहीं हो सकता। इस बात को सुनकर हमीर का सखा दलपति कहता है.... "ब्राह्मण देवता, भाग्य का नाम लेकर आप पुरुषार्थ की हत्या करना चाहते हैं।"[2] दलपतिशाह के कथन के अन्तर्गत पुरुषार्थ की हत्या करना ही कर्मवाद का प्रेरक है। इसमें यह स्पष्ट है कि भाग्य को कर्म से बदला जा सकता है।

कमला के परिणय के उपरान्त हमीर के उत्साह में कमी आती जा रही है। कमला को ऐसा अनुभव हो रहा है कि वैवाहिक बन्धन ने हमीर को दुर्बल बना दिया है। जिसके परिणाम स्वरूप वह मेवाड़ की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लक्ष्य को विस्मृत कर बैठा है। वह उसे कर्त्तव्य का स्मरण कराती है, परन्तु हमीर परिस्थितिवश शान्त है, अतः उत्तेजना के क्षणों में वह ऐसा कोई निर्णय नहीं लेना चाहता जिसका मेवाड़ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। हमीर कमला से कहता है... "....मेवाड़ के भाग्य के साथ खिलवाड़ तो नहीं कर सकता।" इस परिप्रेक्ष्य में कमला का कथन अवलोकनीय है... "प्रयत्न करना मानव के वश में है ओर फल प्रारब्ध के।"[3] इससे स्पष्ट है कि कमला स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रयत्न करने पर बल देती है या कर्म करने में विश्वास रखती है, परन्तु हमीर का ध्यान फल की प्राप्ति पर है, इसलिए वह कमला से कहता है... "फिर भी अच्छी तरह से सोच विचार करने के पश्चात् उठाया हुआ पग प्रायः सुपरिणामकारी होता है।"[4]

1. विषपान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–68
2. उद्धार : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–76
3. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–104
4. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–105

स्व0 अजय सिंह के पुत्र सुजान सिंह मेवाड़ के एक सामन्त गम्भीर सिंह को आलस्य त्यागकर कर्मण्यता का उपदेश देते हुए कहते हैं... "मैं यह नहीं कहता कि मनुष्य पुरुषार्थ को तिलांजलि देकर अभावी में सिसकता हुआ जीवन बिताये। आलसी बनेंगे तो अपने देश से विश्वासघात करेंगे उसे कंगाल बनायेंगे। हमें पुरुषार्थी और कर्मण्य तो बनना ही होगा।"[1] इस कथन से स्पष्ट है कि सुजान सिंह पुरुषार्थ एवं कर्मण्यता को महत्व देते हैं।

"शपथ" नाट्यकृति में अपने पति की मृत्यु के बाद पार्वती उनके साथ चिता में दग्ध होने का निश्चय करती है। सुहासिनी उसे ऐसा करने से रोकती है। इस पर पार्वती वाणी की तुलना में कर्म का महत्व बताती हुई कहती है... "मानव की वाणी की अपेक्षा उसका कर्म अधिक अच्छा नेतृत्व कर सकता है।"[2]

"भग्न प्राचीर" नाटक में मीरा से प्रणय सम्बन्ध न हो पाने के कारण भोजराज में निराशा उत्पन्न नहीं होती है। वह बाबर की सेना से युद्ध करने के लिए कार्य क्षेत्र का चयन करके मीरा से कहता है... "अपनी निराशा के दर्द को भुलाने के लिए भोजराज अब सुरा का सहारा नहीं लेगा। उसके सामने कर्त्तव्य पथ खुला हुआ है। उसे मार्ग मिल गया है, उसे एक संगीत बुला रहा है।"[3] इस कथन से स्पष्ट है कि वह अपनी वृत्तियों को रण क्षेत्रोन्मुख कर देता है। प्रेम की अप्राप्ति उसे अनासक्त योद्धा बना देती है।

बाबर की सुप्रशिक्षित सेना एवं तोपखाने के समक्ष राजपूत ठहर नहीं पाते। घायल संग्राम सिंह भागते हुए कतिपय सैनिकों को अपने पास बुला कर कहते है.... "...कायरों की मौत मरने से तो अच्छा है, शत्रु से दो हाथ करते हुये ये प्राण दिये जायें। भगवान कृष्ण ने कहा है... मनुष्य को कर्म करना चाहिये। फल की चिन्ता नहीं। जब तक इस शरीर में प्राण हैं, हमें कर्त्तव्य किये जाना चाहिये।"[4] इस प्रकार वे उन सैनिकों को रणक्षेत्र से पलायन न करने का उपदेश देते है।

"प्रकाश स्तम्भ" नाटक का पात्र जातिगत विषमता के लिये कर्म सिद्धान्त को उत्तरदायी मानता है। वह बाप्पा से कहता है... "कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र क्यों होता है। जो जैसा कार्य करता है, वह वैसी जाति में जन्म लेता है। तुम नास्तिक लोग कर्म को केवल कल्पना समझते हो।"[5] इस सम्बन्ध में वह कर्म एवं वर्ण का अभिन्न सम्बन्ध मानता है।

---

1. हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–96
2. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–22
3. भग्न : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37
4. भग्न : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37
5. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27 से 28

इसी प्रकार चम्पा उच्च या निम्न जाति में जन्म लेने के विषय में कहती है... "उच्च या नीच जाति में जन्म लेना व्यक्ति के गत जीवन के सुकृत्यों पर निर्भर है।"[1] इस सम्बन्ध में हारीत का कथन अवलोकनीय है... "विधि–विधान और तथाकथित कुछ धर्म शास्त्रों के निर्माताओं ने ऐसी ही धारणाओं को बारम्बार प्रचार कर निम्न वर्ग को अपनी हीनता से सन्तुष्ट रखने का यत्न किया है। भाग्य का लेख अमिट समझ कर वे अपनी स्थिति से ऊपर उठने का यत्न नहीं करते, उनका आत्मविश्वास भी नष्ट हो गया, किन्तु व्यापक दृष्टि से देखें तो इससे हमारे देश की हानि हुई है।"[2] हारीत का उक्त कथन कर्मवाद का ही समर्थक है।

कला–प्रिय चित्तौड़ नरेश मानसिंह मोर्य को राजा के पद से हटाने के लिये हारीत, नृत्य और संगीत कला में निपुण चम्पा को अपनी कला प्रदर्शन की आशा देते हैं, परन्तु उसके समीप जाने में भयाक्रान्त चम्पा अपने कार्य के पुरस्कार की याचना करती है। इस सम्बन्ध में हारीत उसे कर्मफल में विश्वास दिलाते हुए उपदेश देते हैं। वे कहते हैं.... "बेटी, शुभ उद्देश्य से कर्म करना ही कर्म का पुरस्कार है, सफलता भी नहीं, असफलता के भय से कार्य न करना भी कायरता है। मन में आत्म विश्वास रखकर कार्य करो, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है।"[3]

"कीर्ति स्तम्भ" नाटक के महाराणा रायमल अपने पुत्र पृथ्वीराज की उद्दण्डता से क्षुब्ध है, अतः वे उसे मेवाड़ से निर्वासित करते हैं तथा संग्राम सिंह युवराज पद का परित्याग कर स्वेच्छापूर्वक मेवाड़ से जाते है। कुछ समय के उपरान्त पृथ्वीराज को उसका बहनोई सिरोही नरेश विष देता है, जिससे वह असमय में कालकलवित हो जाता है तथा महाराणा के तृतीय पुत्र जयमलराव सूरतान के वाण से आहत होकर मृत्यु–मुख में प्रविष्ट हो जाता है। इस प्रकार दो पुत्रों की मृत्यु तथा एक पुत्र संग्राम सिंह के निर्वासन से महाराणा दुःखी हैं। राजयोगी उन्हें सान्त्वना देते हैं और आगामी युद्ध के लिए प्रजा की राजभक्ति से अवगत कराकर उन्हें शक्ति प्रदान करते है। वे पुत्रों के विछोह से दुःखी हैं, फिर भी कर्त्तव्य पथ से विमुख नहीं होते है। वे सूरजमल तथा विदेशी शक्तियों से संघर्ष करने के लिए तैयार हैं, परन्तु वे अपनी विजय के प्रति संशयग्रस्त हैं। इस स्थिति में राजयोगी उन्हें कर्म का उपदेश देते हैं... "महाराणा जी कर्त्तव्य करना मनुष्य का धर्म है, फल की उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिये।"[4]

---

1. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
2. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
3. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–97

"विदा" नाटक में औरंगजेब को कर्मफल के सिद्धान्त में आस्था नहीं थी, परन्तु जब उसकी पुत्री जेबुन्निसा कहती है... "आप अपने अब्बाजान से विद्रोह कर सकते हैं, तो मैं भी अपने अब्बाजान से कर सकती हूँ।"[1] उस समय औरंगजेब अपने जीवन में किये जाने वाले कार्यों एवं अपने पिता शाहजहाँ के निम्नलिखित कथन के सम्बन्ध में सोचता हुआ अपनी पुत्री जेबुन्निसा से कहता है... "या खुदा, मैं क्या सुन रहा हूँ। मुझसे अब्बाजान ने कहा था.... "...जिस तरह तुमने मुझसे विद्रोह किया है उसी तरह तुम्हारे बेटे–बेटियाँ करेंगे।" तब मैंने उनसे कहा था... "खुदा की इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं होता अपनी नियति के अनुसार ही प्रत्येक व्यक्ति को फल मिलता है। मुझे इस बात का पक्का विश्वास है कि मेरी नियति पूरी तरह साफ है, अतएव मुझे यह भरोसा है कि मेरी सन्तान सदा मुझसे सदव्यवहार करेगी। जेबुन्निसा तुमने मुझे चौंका दिया है।"[2] प्रस्तुत कथन में कर्मवाद को ही प्रोत्साहन मिला है।

"प्रतिशोध" नाटक में देवी सिंह कर्मफल में विश्वास करते हैं वे हीरादेवी से कहते हैं... "समाचार क्या है? चम्पतराय अपनी करनी का फल पा रहे हैं। जंगल–जंगल मारे–मारे फिर रहे हैं। औरंगजेब से चम्पतराय का भला क्या मुकाबला है?"[3]

अंगदराय छत्रसाल से कहते हैं... "अंगद और छत्रसाल अकेले ही महाकाल से भिड़ने को तैयार हैं। सफलता न मिले तो न सही, किन्तु पिता जी की भाँति एक उज्जवल आदर्श के लिए अपने प्राण समर्पित करने का आनन्द तो हम पा ही सकेंगे।"[4] इसके प्रतिउत्तर में छत्रसाल कर्मफल में विश्वास करते हुए कहते हैं... "हाँ भैया, मैं तो यही समझता हूँ कि कर्म करना हमारा धर्म है। विपरीत परिस्थितियों से संघर्ष करना ही पौरुष है।"[5]

विजया भी कर्म करने में विश्वास करती है। वह कहती है.... "...मैं चाहती हूँ कि मुझे एक क्षण का भी अवकाश न मिले अविरत गति से मैं चलती हूँ। कर्म करती ही रहूँ।"[6]

"शपथ" नाट्यकृति में सुहासिनी कर्मफल में विश्वास करती है, वह कहती है... "हमें शिव, सत्य, सुन्दर के पथ पर चलना चाहिये। हम कर्म करेंगे तो

1. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–07
2. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–07
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–43
4. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–67
5. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–68
6. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–70

महाकाल हमें सफलता देगा ही।"[1]

"भाई–भाई" नाटक में सूर्य कुमारी मे पलायनवादी भाव है जब दासी चमेली षडयन्त्रों का बोध कराती है तो वह बालक मोकल की रक्षा के लिये जंगल में जाने का निश्चय करती है। उसके ऐसे निर्णय से अवगत होकर चमेली उसे कर्त्तव्य पर डटने को प्रेरित करती है.... "भोली हो, राजमाता, यह तो कर्त्तव्य से पलायन करना है। भारत की यही तो भूल है। वह कर्त्तव्य से घबराकर वैराग्य के पथ पर अग्रसर होना चाहता है... जिस पर मनुष्य समाज के उद्धार का दायित्व है। वे अपने लिए मुक्ति का मार्ग खोजते फिरते हैं।"[2]

"अमृत पुत्री" नाटक में कणिका कर्मण्यता की समर्थक है। वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार सिद्धियों को मानव जीवन का लक्ष्य निरुपित करती है। इस चतुष्टय में हमारे देश में अर्थ के सम्बन्ध में तथा गाँधीवादी विचार धारा में अपरिग्रह को आदेश माना जाता है। वह अर्थ संग्रह को पाप मानती है, क्योंकि धन–संचय का दुष्परिणाम यह होता है कि.... "त्याग और सन्तोष के नाम पर हम अकर्मण्यता के प्रश्रय देते हैं। यह अपराध है।"[3] वह सिंहरण से स्पष्ट शब्दों में कहती है कि... "हमें लोभी तो नहीं होना चाहिये। हमें अपनी और अपने राष्ट्रों की सम्पत्ति बढ़ानी चाहिये। सम्पत्ति अर्जित करना पाप नहीं है।"[4]

जयपाल भी धन संचय को पाप मानता है। कणिका पुरुषार्थ करने का प्रबोध देती हुई कहती है...."संसार का सम्पूर्ण धन भूमि में हैं। शस्य रत्न, स्वर्ण सब धरतीमाँ देती है। लेकिन देती है साधक को। धरती माता की सेवा करो। तब पुरुषार्थ करो। सब पाओ।"[5] कणिका के उक्त कथन में कर्म को ही प्रोत्साहन मिला है।

"शक्ति साधना" नाट्यकृति में महर्षि पातंजलि द्वारा प्रेरक वाणी को सुनकर पुष्पमित्र का मन उत्तेजित तो होता है किन्तु अपनी वृद्धावस्था की बात कहकर वह कर्त्तव्य पालन में असमर्थता प्रकट करता है। इस पर पातंजलि उसे उपदेश देते हुए कहते हैं... "सेनापति, यौवन और बुढ़ापे का आयु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। जो समय आने पर कर्त्तव्य–पालन में अग्रसर होता है, वही युवक है। कर्त्तव्यरत मनुष्य कभी बूढ़ा नहीं होता और फिर तुम्हारा यौवन तुम्हारे पुत्र अग्निमित्र के रूप में तुम्हारे सामने उपस्थित है।"[6]

---

1. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–71
2. भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–
3. अमृत पुत्री : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–59
4. अमृत पुत्री : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–59
5. अमृत पुत्री : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–59
6. शक्ति साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–22

"रक्त रेखा" नाट्यकृति में सिन्ध नरेश दाहर सिन्ध प्रदेश के मकरान भाग को मुक्त कराने के लिए चिन्तित है। सिन्ध प्रदेश के पूर्व शासक साहसी राय के पिता के काल में ही सिंध के मकरान प्रदेश पर अरबो का अधिकार हो चुका था और इस प्रदेश पर अरबों से प्राप्त करने के प्रयास में उन्हें जीवन से हाथ धोना पड़ा था। तदन्तर उनके मंत्री दाहर के पिता चच ने सिन्ध प्रान्त का मुकुट अपने सिर पर धारण कर अपने प्राणों की बलि दे दी, फिर भी वे उस क्षेत्र को विदेशियों से मुक्त न करा सके। इसी श्रृंखला में दाहर भी कार्यरत है, परन्तु दाहर का मंत्री क्षपाकर राष्ट्रीय एकता के अभाव में उस क्षेत्र को जीतने के सम्बन्ध में आशंका प्रकट करता है, इस परिप्रेक्ष्य में दाहर का कथन उल्लेखनीय है.... "हम विजय प्राप्त करेंगे ही, यह मानकर तो मैं नहीं चलता। फल की इच्छा किये बिना कर्म करना, कर्त्तव्य करते रहना मानव का धर्म है।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन से यही कहा था। मैं तुम्हारी भाँति निराशावादी नहीं हूँ। भले ही दाहर समाप्त हो जाये.... कुछ काल के लिए सिन्ध विदेशियों के हाथ में चला जाये किन्तु मुझे आशा है कि हमारे संघर्ष से भारत के सुप्त यौवन की निद्रा भंग होगी।"[1] दाहर निराशावादी नहीं है। वह कर्मफल में आस्था रखता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गाँधी जी के आध्यात्मिक विचारों को प्रेमी जी ने यथाशक्य अपने नाटकों में उतारने का प्रयास किया है। गाँधी जी के ईश्वर, जगत, मानव, पुनर्जन्म एवं कर्मफल के सन्दर्भ में जो विचार है, वे भारतीय धर्मशास्त्रों एवं दार्शनिक ग्रन्थों का निचोड़ है। प्रेमी जी ने गाँधी जी की मान्यताओं को अपने अनेक नाटकों में स्थान–स्थान पर अभिव्यक्ति प्रदान की है।

1. रक्त रेखा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–14 से 15

षष्ठ अध्याय

प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवादी मानवतावाद

1. विश्व बन्धुत्व की भावना
2. जीव दया
3. दलित जीवन के प्रति करुणा भावना
4. आमूल परिवर्तन के स्थान पर सुधार की भावना
5. धार्मिक एकता
6. साम्प्रदायिक एकता
7. राष्ट्रीय एकता

षष्ठ अध्याय

"प्रेमी" जी के नाटकों में गॉधीवादी मानवतावाद

"प्रेमी" जी के जीवन–काल में दो महायुद्ध हो चुके थे, उन युद्धों के परिणाम लोगों को विदित हो गये थें, फिर भी हिंसा–प्रतिहिंसा का क्रम अनवरत रूप से चल रहा था। सन् 1920 में महात्मा गॉधी ने राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लिया था। गॉधी जी ने स्वतंत्रता आन्दोलन में मानवता को प्रमुख स्थान दिया। गॉधी जी ने दुःखी और निराश्रित जनता की भलाई के कार्य किये। उन्होंने धार्मिक, साम्प्रदायिक जातीय एवं राष्ट्रीय एकता पर विशेष बल दिया तथा "बसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना को बढ़ावा देते हुए उन्होंने विश्वबन्धुत्व की भावना, दलित जीवन के प्रति करूणा, जीवदया, जैसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए दीन हीन मानव को गले लगाया। बेदनावतार "प्रेमी" जी विश्व मानवता से अछूते नहीं रहे। उन्होंने भय मुक्ति हेतु पाश्चात्य हिंसा वृत्ति का परित्याग करके गॉधीवादी मानवतावाद के सिद्धान्तों को स्थापित किया ।

मानवता वादी विचारों से ओत–प्रोत "प्रेमी" जी के अन्तःकरण के पवित्र भाव की प्रतिछाया हमे उनके नाटकों में विभिन्न रूपों में दृष्टिगत होती है।

1. विश्व बन्धुत्व की भावनाः–

महात्मा गॉधी मानवतावादी विचारक "बसुधैव कुटुम्बकम्" की भावना से ओत–प्रोत थे। उनका कहना था कि "मानवजाति के विकास में सार्वजनिक जीवन के अनेक स्तर देखने को मिलते है, जैसे परिवार, जाति, गॉव, प्रदेश और राष्ट्र। इन सब को पार करने के बाद ही विश्व बन्धुत्व या अन्तर्राष्ट्रीयता के अन्तिम आदर्श को प्राप्त किया जा सकता है।"[1] गॉधी जी विश्व बन्धुत्व की भावना के लिए राष्ट्रीय एकता को आवश्यक मानते थे। गॉधी जी के शब्दों में..... "मेरे बिचार में विना राष्ट्रवादी हुए अन्तर्राष्ट्रीयवाद तभी सम्भव हो सकता है, जबकि राष्ट्रवाद एक यर्थाथ बन जाये।"[2]

गॉधी जी भारत का उत्थान भी विश्व बन्धुत्व की भावना के लिए करना चाहते थे। गॉधी जी ने यंग इण्डिया के 4 अप्रैल 1929 के अंक में लिखा था........... "मैं भारत का उत्थान इस लिये चाहता हूँ, कि जिससे सम्पूर्ण विश्व का हित हो

1. भारतीय राजनीतिक चिन्तन : डॉ0पुखराज जैन, पृ0–179
2. भारतीय राजनीतिक चिन्तन : डॉ0पुखराज जैन, पृ0–179

सके। मैं भारतवर्ष का स्थान दूसरे राष्ट्र के विनाश पर नहीं चाहता। मैं उस राष्ट्रभक्ति की निन्दा करता हूँ, जो हमें दूसरे राष्ट्रों के शोषण तथा मुसीबतों से लाभ उठाने के लिये उत्साहित करती है।"[1]

गाँधी जी की विश्व–बन्धुत्व की भावना से अनुप्राणित होकर "प्रेमी" जी ने भी अपने अनेक नाटकों में इस मानवतावादी तत्व का वर्णन किया है।

"स्वप्न भंग" नाट्यकृति में शाहजहॉ का कथन विश्व–बन्धुत्व की ओर संकेत कर रहा है। शाहजहॉ अस्वस्थ है। जहॉनारा अपने पिता की अस्वस्थ दशा को देख कर विलाप करने लगती है। शाहजहॉ अपनी पुत्री को सान्त्वना देते है वह कहते हैं......"जो आता है, वह जाता है। तुम्हारी मॉ चली गई। तुम्हारा बाप भी चला जायेगा। मेरी मॉ चली गई थी, मेरे बाप भी चले गये थे फिर भी बेटी मुझे जीना पड़ा। मनुष्य का संसार केवल उसका घर ही नहीं होता। उसे अपने सुख–दुःख संसार के सुख–दुःख में डुबा देने होते है।"[2]

इसी नाट्यकृति में दारा की संसार के प्रति भी बन्धुत्व की भावना है। वह कहता हैं....."व्यक्तियों का दुःख दूर करने से क्या होगा। घुन तो सम्पूर्ण समाज के मूल सिद्धान्तों में लगा हुआ है। धन और शक्ति प्राप्त करने की लालसा ने संसार को नकार दिया है।"[3]

इसी नाटक का एक पात्र प्रकाश मानवतावाद में आस्था रखता है। उसके हृदय में अखिल विश्व के प्रति करूणा का भाव है। प्रकाश मानवता का अपमान होते देख कर, वह दारा से कहता है– "तुम युवराज दारा! मैं यह क्या देख रहा हूँ? हे! विधाता, क्या तेरा यही न्याय है। आज संसार में न्याय, स्नेह और मानवता का अपमान हो रहा है। स्वार्थ, कपट और हिंसा फल फूल रहे है। भगवान तुम वास्तव में कुछ हो! अगर हो तो तुम्हारा न्याय–दण्ड कहॉ गया? भूकम्प, हैजा, महामारी, तूफान, ऑधी, बज्र और प्रलय आज कहॉ है? इस संसार को नष्ट क्यों नहीं कर देते महाकाल!"[4] प्रकाश के उक्त कथन में विश्व–बन्धुत्व की भावना ही मुखरित हो रही है।

"बन्धन" नाट्यकृति में सेठ राय बहादुर का पुत्र कहता है कि...... "आज जो अरबों रुपया युद्ध में लग रहा है, उसमें मनुष्यता का क्या मंगल होगा? संसार हिंसा के पथ पर जा रहा है।"[5] प्रकाश के उक्त कथन में विश्व–बन्धुत्व की

---

1. भारतीय राजनीतिक चिन्तन : डॉ0पुखराज जैन, पृ0–179
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–73
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–30
4. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–114–115
5. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–53

भावना निहित है, क्योंकि प्रकाश को संसार की चिन्ता है।

"प्रकाश स्तम्भ" नाट्यकृति में बाप्पा मानवतावाद का पक्षधर है। बाप्पा अरब सेनापति की पुत्री से अपना विवाह करके विश्व बन्धुत्व की भावना का पोषण करता है। जब नागदा नरेश कहतें है कि हमीदा विधर्मिणी है? इसके उत्तर में ब़ाप्पा कहता है....."हाँ! आपकी दृष्टि में मेरे लिए तो संसार में केवल एक धर्म है और वह है मानवता।"[1]

"रक्तदान" नाट्यकृति में विद्रोही सैनिकों का प्रतिनिधि बहादुरशाह के समक्ष फ्रेजर के जाने की दिशा में लक्ष्य साधता है। यह देखकर बहादुरशाह कहते है–. ...."ठहरो! हमारे सामने किसी को बन्दूक का निशाना न बनाओ। अँग्रेज भी उसी प्रकार इंसान है, जिस प्रकार भारतवासी।"[2] बहादुरशाह के उक्त कथन में विश्व–बन्धुत्व की भावना निहित है।

"अमर बलिदान" नाटक में महारानी लक्ष्मीबाई दूसरों के दुःख से दुखी होकर ही अँग्रेजों के विरुद्ध है, लेकिन विमुख होने के बावजूद भी वे विश्व–बन्धुत्व की भावना का विकास करती है। वे अँग्रेज अधिकारी को शरण देने के लिए तैयार हो जातीं है। डिप्टी कमिश्नर गार्डन संकटपूर्ण स्थिति में महारानी से सहायता प्राप्त करने का निवेदन करता है। उसके निमित्त वह उन्हें झाँसी के राज्य को प्रदान करने का प्रलोभन देता है, परन्तु महारानी विश्व–बन्धुत्व की भावना को श्रेष्ठ मानतीं हैं। वे इस प्रस्ताव को ठुकरा देतीं है। वे गार्डन से कहतीं हैं– "लक्ष्मीबाई पर कोई प्रलोभन प्रभाव नही डाल सकता, मानवता के नाते इतना ही कर सकती हूँ कि इस समय अँग्रेजों के स्त्री–बच्चों की रक्षा का उपाय करूँ। आप उन्हें मेरे महल में पहुँचा दीजिए।"[3] लक्ष्मीबाई के उक्त कथन में अँग्रेजों के स्त्री–बच्चों को शरण देने की भावना ही विश्व–बन्धुत्व की भावना है।

"बन्धु–मिलन" नाट्यकृति में भीलराज कहता है, जितनी मुसीबतें मेवाड़ियों ने सहन की हैं, उतनी संसार के किसी देश ने नहीं सहन की होंगी। इसके प्रति उत्तर में अभयदान विश्व–बन्धुत्व की भावना का प्रतिपादन करता हुआ कहता है. "........ जो किसी प्रलोभन से सत्यपथ से नहीं भटकता, वहीं तो सच्चा मानव है, जो स्वहित की चिन्ता न कर जग हित के लिए जीता–मरता है, वहीं तो मनुष्य है।"[4]

अभयदान के उक्त कथन में जग–हित के लिए जीना–मरना ही विश्व–बन्धुत्व की भावना है।

1. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–119
2. रक्तदान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–35
3. अमर–बलिदान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–50
4. बन्धु–मिलंन : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–59

"शपथ" नाट्यकृति में धर्मदास विश्व–बन्धुत्व की भावना के सम्बन्ध में कहता है....."सम्पूर्ण बसुधा को कुटुम्ब समझने की शिक्षा देने वाला आर्य दृष्टिकोण यदि व्यापक रूप में हमारे व्यावहारिक जीवन में समाविष्ट हो पाता तो क्या आज हम विभाजित और दुर्बल होते।"[1]

इस प्रकार "प्रेमी" जी के अन्य अनेक नाटकों में गॉधीवादी मानवतावाद के तत्व विश्व–बन्धुत्व की भावना का प्रतिबिम्ब देखने को मिलता है। "विदा" नाटक के द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में "प्रेमी" जी ने स्वयं ही विश्व–बन्धुत्व के विषय में कहा है......"..... मैं चाहता हूँ.... हिन्दुस्तान ही नही सम्पूर्ण संसार स्वर्ग बन जाय।"[2]

2. जीव–दया:–

जीव–दया गॉधीवादी मानवता का प्रमुख अंग है। गॉधी जी ने जीव–दया को आत्मा का महान गुण माना है। उन्होंने जीव–दया के सम्बन्ध में बताया है कि..... "जीव–दया में विचार, विवेक, उदारता, अभय, नम्रता और शुद्ध ज्ञान की आवश्यकता है।"[3]

"प्रेमी" जी का सम्पूर्ण जीवन ही दुःखों से परिपूर्ण रहा है। स्वदुखों एवं आत्मीय जनों के विषाद में दुख–दग्ध होकर "प्रेमी" जी के अचेतन मन में जीव–दया का भाव आया। उनके अनेक नाटकों में जीव–दया का भाव देखने को मिलता है।

"विषपान" नाटक में कृष्णा हिंसा का विरोध करने के लिए ही विषपान करती है। कृष्णा का पाणिग्रहण करने के लिए जयपुर नरेश जगत सिंह तथा जोधपुर नरेश मानसिंह वाह्य शक्तियों के साथ एक–दूसरे को परास्त करने के लिए सन्नद्ध है। युद्ध में अनेक लोगों के कटने की कल्पना करके कृष्णा इसे रोकना चाहती है। वह रमा से कहती है...."मुझे सम्पूर्ण संसार ही विषमय प्रतीत होता है। मुझे अपने बीच कोईशक्तिशाली नहीं जान पड़ता....जो जग के जहर को पी ले और इसे विनाश से बचा लें।"[4] वह रमा से हत्या काण्ड को रोकने का उपाय पूँछती है, परन्तु वह खुद को अपरिहार्य बताती है। ऐसी स्थति में वह निरूपाय हो कर विषपान करती है। तदन्तर संग्राम सिंह के साथ आये हुये महाराणा एवं महारानी को मरणासन्न कृष्णा अपने विषपान के प्रयोजन को बताती है। "मेरे हाड़–मॉस से अकिंचन शरीर के लिए

---

1. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
2. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, (द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में)
3. सत्य और अहिंसा : गॉधी जी, पृ0–310

अम्बर, मारवाड़ के वीर योद्धा अपने बहुमूल्य प्राण गवायें यह मुझे स्वीकार नही था।"[1] इससे स्पष्ट है कि कृष्णा को जीवों पर दया है। इसलिए वह नहीं चाहती कि उसके कारण बहुसंख्यक लोग असमय ही काल कलवित हो जायें।

"कीर्ति–स्तम्भ" नाट्यकृति में राजयोगी जी को यह पता चलता है कि सूरजमल और पृथ्वीराज में भयंकर युद्ध होने वाला है, जिससे मानवता की दृष्टि से रोकना आवश्यक है। वे कहते है....."यदि वे एक दूसरे का रक्त पीकर शान्त हो जाते, तब भी मेवाड़ का बहुत अनिष्ट नहीं होता, किन्तु इनके साथ अनेक सैनिकों के प्राण जायेंगे। मेवाड़ की शक्ति क्षीण होगी। अतः तुम्हें यह रक्तपात रोकना चाहिये।"[2] राजयोगी के इस कथन में जीव–दया का भाव निहित है।

"स्वप्न भंग" नाटक में नादिरा भी युद्ध का विरोध करती है क्योंकि युद्ध में जीव हत्या होना स्वाभाविक है। नादिरा अपने पति दारा के युद्ध भूमि से वापस न आने के कारण चिन्तामग्न है। वह जीव–दया के भाव से ओतप्रोत है। अनिष्ट की आशंका व्यक्त करती हुई नादिरा कहती है......."हजारों वीर जिनके शरीर फौलाद के समान सुदृढ़ है, आज सदा के लिए सो गये होंगे। हजारों माताऐं अपनी गोदी के लाल गॅवा चुकी होगी। हजारों युवतियों की मॉग का सिंदूर आज पुछ गया होगा। कैसा भयंकर खेल है यह, दो–तीन प्राणियों की लोलुपता जीभ आज इतना खून पीकर भी लुप्त नहीं होगी।"[3]

"संवत् प्रवर्तन" नाटक में आचार्य कालक की बहिन सरस्वती को जीवों पर दया है। जब गर्दभिल्ल दर्पण और शकों के बीच भयंकर युद्ध होता है तो सरस्वती कहती है...."स्त्री–बच्चों पर भी उन्होंने दया नही की।"[4]

"शीशदान" नाटक में ॲग्रेजो की सिंहावृत्ति पर अजीजन को क्रोध आता है। इसी के परिणाम स्वरूप सत्ती चौराघाट पर ॲग्रेजों को भारतीय मार देते है। इस सामूहिक हत्याकाण्ड से अजीजन को प्रसन्नता होती है, वही तात्या टोपे को दुःख होता है। तात्या टोपे के हृदय में जीवों के प्रति दया की भावना है, वे ॲग्रेजों के मरने पर भी अजीजन से कहते हैं......"यह प्रसन्न होने का समय नहीं है नाना साहब इस हत्याकाण्ड से दुःखी है और मेरा भी हृदय टुकड़े–टुकड़े हो गया है।"[5]

"भाई–भाई" नाटक में चूड़ाजी मोकल को लेकर भीखारी के छद्म वेश में आता है। उसके इस वेश पर उसकी मॉ किरणमयी को आश्चर्य होता है। इस पर

1. विषपान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–106
2. कीर्ति–स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–111–112
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–82
4. संवत प्रवर्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–46
5. शीशदान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–86

ह उन्हें वस्तु स्थिति से अवगत कराता हुआ कहता है........"रणमल जी के वेतन भोगी सैनिक क्या मुझे सहज ही आने देते? मुझे रोक सकने की शक्ति तो उनमें नहीं है। किन्तु व्यर्थ ही अभागे सैनिको के प्राण जाते। अनेक माताओं की गोद सूनी होती, अनेक नारियों के शीश कां सिन्दूर पुछ जाता। युद्ध की विभीषिका से मानवता को बचाने का प्रयत्न करना सबसे बड़ी वीरता है।"[1] मोकल के इस कथन में जीव–दया का भाव समाया हुआ है।

"रक्तदान" नाट्यकृति में प्रत्येक मनुष्य को अँग्रेजो से घृणा है। अँग्रेज जहाँ भी हाथ लगता है, चाहे वह स्त्री हो या बच्चा, उसे बेदर्दी से मार डाला जाता है। तत्क्षण वह जीव–दया के सम्बन्ध में कहते है। दृष्टव्य है........"और तुम इस बात से प्रसन्न हो शंहजादे, मेरा तो सर यह सुनकर लज्जा से झुका जा रहा है। वीर पुरूष युद्ध के मैदान में अपना पौरूष प्रकट करते हैं, निरीह निःशस्त्र स्त्री–पुरूष का बध नहीं करते। हम योद्धा हैं, कसाई नहीं। विप्लव का अर्थ सामूहिक उन्माद नहीं है।"[2] तदनन्तर वे निःशस्त्र और अरक्षित अँग्रेजो का बध न करने के सम्बन्ध में अपने नाम से घोषणा कराते है। वे अँग्रेज स्त्री–पुरूष को लाल किला में शरण देते है। बहादुरशाह के मन में जीव–दया की भावना है। वह हिंसा तथा लूटपाट का विरोध करते है। मिर्जाइलाही बख्श खॉ द्वारा समाचार पत्र में अंकित इस घटना से अवगत होकर कि शहर में लूट–पाट हो रही है, शाही सेना भी दुकानदारों को लूट रही है। इससे उन्हें दुःख होता है। वे अपने सेनापति मिर्जामुगल से अपने दुःख को व्यक्त करते हैं....... "हमारा हृदय चूर–चूर हो गया है। दुःख की बात तो यह है कि तुम्हारी सेना के आदमी भी हमारी प्रजा को कष्ट देते हैं...... यदि तुम्हारी यही दशा है तो इस जीवन के संध्याकाल में हमें राज्य की इच्छा नहीं।"[3] बहादुरशाह के इस कथन में जीव–दया की भावना निहित है। जब बहादुरशाह को अँग्रेज बन्दी बना लेते है, तब भी अपनी चिन्ता न करते हुए जीवों पर दया की भावना ही दर्शाते है। वे कहते हैं......"हमारा क्या होगा, इसकी हमें चिन्ता नही...... लेकिन हमारी निर्दोष प्रजा पर जो क़हर की बिजली टूटेगी उसकी कल्पना करके हमारा दिल टूटता है।"[4]

"अमर–बलिदान" नाटक में अँग्रेज अधिकारी गार्डन झाँसी के किले में अपने बच्चों को शरण देता है, लेकिन वहॉ पर कुछ सैनिक उसका वध कर डालते है। इस घटना से महारानी लक्ष्मीबाई को दुःख होता है। वे अपने सैनिकों से कहती है..... "देश प्रेम का अर्थ यह नहीं कि हम शत्रु के निरीह स्त्री–बच्चों का वध करते फिरे।

1. भाई–भाई : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–86
2. रक्तदान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–46–47
3. रक्तदान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–112
4. रक्तदान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–176

हम हत्यारे नहीयोद्धा है। युद्ध भूमि में तुम किसी पर दया करो यह मैं नही कहती, लेकिन अपने साधारण जीवन में तुम नृशंस पशु बन जाओ, यह मैं नही चाहती।"[1]

महारानी लक्ष्मीबाई के इस कथन में जीव–दया की भावना निहित है। उनके हृदय में अॅग्रेजो के प्रति भी दया है।

"अमर–आन" नाट्यकृति में अमर सिंह जब गौना करा कर ला रहा था तभी रास्ते में उसकी भेंट शहबाज खॉ से हुई। शहबाज खॉ को भारी प्यास लगी थी, उसके प्राण प्यास से व्याकुल थे, खुद प्यासा रह कर शहबाज खॉ के प्राण बचाये थे। इसी तथ्य को उद्घाटित करता हुआ शहबाज खॉ बल्लू जी से कहता है......."तब मैंने उनसे कहा आप मुझे मर जाने देते। अपने आप को प्यासा क्यों रखा? तब उन्होने कहा मनुष्य वह है जो दूसरो के लिए कष्ट सहे.......आवश्यकता पडने पर प्राण भी दे दे। अपने लिए जीवित रहना जीवन नहीं है। मेरे हृदय में इस व्यक्ति के लिए श्रद्धा का समुद्र उमड पड़ा। मैंने कहा मैं नहीं जानता आप कौन हैं–लेकिन मेरे लिए फरिश्ते हैं आपने मेरी जान बचाई है।"[2]

"कीर्ति स्तम्भ" नाटक में जयमल तारा के रूप पर मुग्ध होकर उसे पकडना चाहता है, लेकिन जैसे ही वह हाथ बढाता है, वैसे ही उसके तीर लग जाता है, तारा के हृदय मे दया की भावना है, वह तीर निकालना चाहती है तथा उपचार के लिए भी आग्रह करती है दृष्टव्य है........ तारा का कथन........"बहुत दर्द है साहस करो, उठो, चलो पास ही हमारी कुटिया है। पिता जी की सहायता से उपचार का प्रबन्ध करा दिया जायेगा।"[3] इसी परिप्रेक्ष्य में जयमल कहता है......"तारा तुम अत्यन्त दयामयी हो।"[4]

"स्वप्न भंग" नाटक में दारा आजीवन मानवतावादी कार्यो को करता है। इसी मानवतावादी दारा के कार्य को मजदूर प्रकाश जीव–दया के सम्बन्ध मे जहॉनारा से कहता है........"मलिक जीवन का नाम शायद तुमने सुना हो। वोलन दर्रे के पास ही दादर नामक स्थान का वह जागीरदार था। सम्राट ने एक बार उसे मृत्युदण्ड सुनाया था तब दारा ने उसकी रक्षा की थी।"[5] प्रकाश के इस कथन मे जीवदया की भावना है।

"अमर आन" नाटक में औरंगजेब आजीवन ही धर्म सम्बन्धी उन्माद में भूलकर मानवता के विपरीत कार्य करता है, लेकिन जीवन के अन्तिम समय में उसका

1. अमर वलिदान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–52
2. अमर आन : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–44
3. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–84
4. कीर्तिस्तम्भ : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–84
5. स्वप्नभंग : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–125

हृदय परिर्वतन हो जाता है। और वह दयापूर्ण कार्य करता है। वह अपनी पुत्री मेहरून्निसा से कहता है........"मेरे पुत्रो में से जो साम्राज्य का उत्तराधिकारी बने उसके लिए उचित होगा इस निर्लज्ज प्राणी के साथ जो बेचारे सेवक राजस्थान की मरुभूमि और दक्षिण के उजाड़ जंगलों में मारे–मारे फिरते रहे हैं उनके प्रति दयापूर्ण व्यवहार करें। उन्होने प्रकटरूप से अपराध भी किये हों तब भी दयालुता दिखा उनके अपराधो की उपेक्षा कर उदारता पूर्वक उन्हे क्षमा ही प्रदान करें।"[1]

3. दलित जीवन के प्रति करूणा भावनाः–

महात्मा गॉधी ने दीन दुःखी मानवता के कष्टों का पूर्णतया निवारण किया, वे भगवान का निवास भी दीन–दुखियों के बीच मानते थे। जैसा कि उन्होंने कहा भी है......."......मुझे यह अनुभूति हो चुकी है कि भगवान दुखियों के बीच में ही रहते है, इसलिए शोषित और संत्रस्त व्यक्तियों के लिए इतनी करुणा है। चूँकि मैं राजनीति में हिस्सा लिए बिना इस प्रकार की सेवा नहीं कर सकता, इसलिए मैं उनके लिए इस राजनीति में हूँ।"[2]

"प्रेमी" जी को दीन–हीन मानवता से विशेष प्रेम था। उन्होने शिवा–साधना में कहा है........ "दुःखी दिल की बात समझने के लिए दिल में दर्द पैदा करने की जरूरत होती है।"[3] यही कारण है कि उनके नाटकों में दलित जीवन के प्रति करूणा और बन्धुत्व का भाव प्रदर्शित होता है।

"रक्षा–बन्धन" नाट्यकृति में बहादुरशाह मेवाड़ को धूल में मिलाने के लिए हिंसा का अवलम्बन ले रहा है। उसके धर्म गुरू शाह शेख ओलिया को दलित जीवन के प्रति करूणा है,वह दुःखी होकर बहादुरशाह को समझाते हुए कहते है....... "मेवाड़ की गरीब रियाया का क्या कसूर है? खुदा की इस बेगुनाह खलकत ने क्या–क्या बिगाड़ा है? यह भी परबर–दिगार अल्ला–ताला की लाडली औलाद है। तू इसे तंग करेगा तो खुदा तुझ पर कहर की बिजली गिरायेगा।"[4] उनके उक्त कथन से भौतिकवाद में आस्था रखने वाला बहादुरशाह अप्रभावित रहता है, फलतः वे मेवाड़ के गॉवों में आग लगाकर प्रफुल्लित होने वाले बहादुरशाह को पुनः प्रबोध देते हुए कहते है......"तू आज क्या से क्या हो गया है? मेवाड़ की गरीब रियाया ने तेरा क्या बिगाडा

---

1. आन का मान : हरिकृष्णप्रेमी, पृ0–74
2. महात्मा गॉधी का दर्शन : डा0 धीरेन्द्र मोहन दत्त,
3. शिवा साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37
4. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37

है, जो तू उनके घरों में आग लगाकर शैतानों की हॅसी हॅस रहा है।"[1]

"संरक्षक" नाटक में महाराव किशोर सिंह नहीं चाहते है कि वे कोटा राज्य की स्वतंत्रता के लिए निरापराध लोगों के रक्त से इस धरती को लाल करें। दुर्गा को महाराव के कथन से आश्चर्य होता है। इस सम्बन्ध में महाराव किशोर सिंह उससे कहतें है......"तुम तो हाडौती के हृदय में प्रवेश पा सकी हो। तुमने देखा है कि गरीब जनसाधारण की इस युद्ध से क्या स्थिति हुई है। हाडौती का एक भी घर का कोई दीपक इस समर की ऑधी से बचा नही। प्रत्येक घर में मातम का अॅधेरा हो रहा है।"[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि महाराव किशोर सिंह दीन–हीन लोगों के दुःख में दुखी है। अन्ततः वे उनके दुखों में एकाकार होकर स्वयं युद्ध में बलिदान देने के लिए कटिबद्ध है।

"सॉपो की सृष्टि" नाटक में खिज्र खॉ असहाय जनता पर अत्याचार करता है। उनके घरों में आग लगाता है। अन्त में खिज्र खॉ को पूर्व कृत्यों का बोध होता है। वे दुखी मानवता के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए कहते हैं....."मैंने अब्बा जान की आज्ञा पाकर युद्धों में अनेक बार भाग लिया है, निरीह ग्रामों को........ खाक में मिलते देखा है। उस समय मैं नही समझ पाया कि जिन ग्रामों को हम जलाकर राख का ढेर बना रहे हैं, उनमें भी हमारी ही तरह इंसान बसते है। हमारी उनसे कोई सहानुभूति न थी, क्योंकि वह हमारे धर्म को मानने वाले नहीं थे। आज वे सारे दृश्य मेरी ऑखों के सामने मूर्त्त हो रहे है। कितना बड़ा इंसानियत का अपमान हमने किया है।"[3]

"बन्धन" नाटक में सेठ राय बहादुर के पुत्र प्रकाश हृदय में हीन–दीन मजदूरों के प्रति करूणा है। वह मजदूर लक्ष्मण को पच्चीस हजार रूपये चुराने के लिए अपने घर भेजता है तथा उसे रक्षार्थ रिवाल्वर भी देता है।[4]

"स्वप्न भंग" नाटक में दारा की बहिन जहानारा को दलित जीवन के प्रति करूणा है। वह कहती है....."बाहर पास की झोपड़ी में चार–चार बच्चों की मॉ अपने भूखे–नंगे बच्चों को कंकरीली भूमि पर निद्रालीन किये रो रही है।"[5] औरंगजेब का विलासी सेना पति कासिम खॉ मजदूर प्रकाश की पौत्री वीणा का संगीत सुनने का आकांक्षी है। इसके अतिरिक्त वह अपने भव्य प्रासाद के निर्माण के लिए मजदूर प्रकाश की झोपड़ी तक को खुदवाना चाहता है। जब प्रकाश विरोध करता है, तो वह उसे बल

---

1. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–61
2. संरक्षक : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–126
3. सॉपों की सृष्टि : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–108
4. बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–62–63
5. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–70

प्रयोग की धमकी देता है। उसी समय यकायक जहानारा आ जाती है, वह वृद्ध प्रकाश का पंक्ष लेती हुई कहती है.... "वेशर्म कासिम क्या गरीबों का मानापमान नही होता..... आज आपके हाथ में शक्ति आ गयी है, इसलिए सारे गरीबों की इज्जत आवरू को मनोरंजन का साधन बनाना चाहता है।"[1] जहानारा के वाक्यों में दलित जीवन के प्रति करूणा और बन्धुत्व निहित है।

"अमर आन" नाटक में औरंगजेब के पुत्र दारा के हृदय में दलितों के प्रति करूणा–भाव को चित्रित किया गया है। अमर सिंह राठौर की मृत्यु के अनन्तर सान्त्वना हेतु दारा का आगमन होता है, उसे इस दुर्घटना से मुगल साम्राज्य की नींव हिलती हुई सी प्रतिभाषित होती है। वह इसे बचाना चाहता है। अहाड़ी रानी की दासी गुलाब उसके मनोभावों से अवगत होकर तीक्ष्ण शब्दों में कहती है........"अत्याचार और छल–प्रपंच के आधार पर खड़ा किया हुआ यह महल धराशायी हो जाये, हमें इससे किंचित मात्र खेद नहीं होगा।"[2] उसकी विद्रोहात्मक उग्रवाणी सुनकर दारा उसका परिचय पूछता है वह कहती है...."मैं पीड़ित भारत की पुकार हूँ। महलों में रहने वाले इस पुकार को सुन नहीं पाते।" इस परिप्रेक्ष्य में दारा सहानुभूतिपूर्वक कहता है...."मैं उन लोगों में से हूँ जो महलों में रह भी झोपड़ी की पुकार सुनना चाहते है। मैं यत्न करता हूँ कि भारत की आत्मा को समझ पॉऊ।"[3] दारा के उक्त कथन में दलित जीवन के प्रति करूणा है। वह दीन–दुखियों के साथ यकायक एकाकार हो जाना चाहता है।

"संरक्षक" नाट्यकृति में दुर्गा को महल छोड कर सामान्य लोगों में देश की वास्तविकता के दर्शन होते है। वह दीन–हीन कृषकों को देख कर व्याकुल हो जाती है। वह गोवर्धन से कहती है.... अपने राजा को देवता समझने वाले परिश्रमी किन्तु निर्धन किसानों की कष्ट कथाओं ने हमारे प्राणों को और भी विचलित कर दिया है। राजा लोग अपने राजमुकुटों की अपने विलास साधनों की रक्षा के लिए अंग्रेजों से लड़ते हैं....."लेकिन उन्होंने सर्वसाधारण के सुख–दुःख की बात कभी नहीं सोची।"[4] दुर्गा के उक्त कथन में दलित जीवन के प्रति करूणा है।

"शिवा–साधना" नाटक के शिवाजी को दलित जीवन के प्रति करूणा है। शिवाजी को तोरणगढ़ हस्तगत करने के उपरान्त प्रचुर धनराशि प्राप्त होती है। वे इस धन का उपयोग क्रान्ति को सफल बनाने के लिए करना चाहते है। उनका निम्न कथन अवलोकनीय है....... "जिस क्रान्ति की पुकार भग्न मन्दिरो, धराशायी राजमहलों,

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–92–93
2. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–85
3. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–85
4. संरक्षण : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–100

पर्ण कुटियों और रोटियों के लिए हाहाकार करने वाले वस्त्र हीन कृषकों के हृदय से उठ रही है।"[1] क्रान्ति को सफल बना कर वे दीन दलितों को कष्टों से परि–निवृत्ति प्रदान करना चाहतें है। उन्हें कंगाल एवं कृषगात कृषकों तथा वस्त्र हीन एवं कुरूप श्रमिकों से प्रेम है।"[2] शिवाजी दीन दलितों के लिए कार्य करते है। शिवाजी के जन कल्याणकारी कार्यों की प्रशंसा करती हुई औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा अपनी दासी सलीमा से कहती है......"वह भी तो इंसान नही रह गया है, उसके उसूलों और ख्यालों की ऊँचाई ने उसे देवता बना दिया है। सल्तनत के दीवानों ने उसके मुल्क के करोड़ों रहने वालों को हैवान से बदतर बना दिया है, हरे–भरे गॉवों और जगमगाते शहरों को वीरान कर दिया है, इसलिए उन्होंने गरीबों और सताये हुओं की खिदमत पर अपनी तमाम जिन्दगी निसार कर दी है।"[3]

"प्रतिशोध" नाटक में छत्रसाल को दलित जीवन के प्रति करूणा है। अपने पिता चम्पतराय की मृत्यु के अनन्तर धनाभाव एवं अनाश्रय की स्थिति में वह निराश है। ऐसी दशा में उनके अग्रज अंगद राय मॉ के गढ़े हुए गहनों को प्रदान करता है, जिन्हें मॉ ने छत्रसाल के विवाह के समय वधू के लिए रखा था। इससे उसमें आशा का संचार होता है, वह उन आभूषणों को बेच कर सैन्य संग्रह का निश्चय करता है। उसको दीन दलितों के प्रति करूणा है। अतः वह धन का उपयोग दुःखो के निवारण के लिए करना चाहता है इसी परिप्रेक्ष्य में छत्रसाल का कथन दृष्टव्य है। वह अपने अग्रज से कहता है....."आज बुन्देलखण्ड में मुट्ठी भर शुभ करण, हीरा देवी और देवी सिंह सोने के थालों में खाते हैं और वैभव के पालनों में झूलते हैं, तो लाखों की संख्या में गरीब जनता दाने–दाने के लिए मुँहताज हो रही है। चलो भैया उनके दुःखो में हमें भी अपने कष्टों में मिला देना चाहिये।"[4] इस प्रकार स्पष्ट है कि छत्रसाल दीन–दुखियों के दुःख में दुःखी है तथा उनके साथ रह कर उनकी सेवा करना चाहता है।

इसी प्रकार का एक अन्य प्रकरण में छत्रसाल के गुरू प्राण नाथ प्रभु का जीवन दीन–दलितों की सेवा से ओत–प्रोत है। नाटक के प्रारम्भ में उनका स्वागत कथन अवलोकनीय है....."मुझे तो भारत के दलित हृदयों की पुकार ने बुन्देल खण्ड की इन जंगली उपत्यकाओं से खीच लिया है हृदय अपने साथ लेकर जीवित है।"[5]

---

1. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–19
2. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–21–22
3. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–134
4. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–69
5. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–4

"रंक्षाबन्धन" नाटक में श्यामा अक्रिंचन पददलित एवं दीन हीन प्रजा की सेवा करने को ही सच्चा सुख मानती है। वह जौहर व्रत में सम्मिलित होने हेतु अनुरोध करने वाले अपने पुत्र विक्रम से कहती है....."मेरे विचार में जीवन एक यन्त्रणा है, नियति का बज्र लेख है। हमें उसे सहना ही होगा और उस सहने को भूल कर, तुच्छ समझ कर उन लोगों की सेवा करनी होगी, जो अधिक पीड़ित है, अधिक दुःखी है।"[1] वह जौहर महाव्रत में सम्मिलित नहीं होता हैं, उसके मतानुसार सतीप्रथा का अनुपालन जीवन से पलायन हैं। वह सेवा कार्य करना चाहती है। वह अपने पुत्र को रणक्षेत्र में जाने का परामर्श देती हुई कहती है......"अपने पति और पुत्र को खोकर मेरा हृदय दीवाना हो गया है वह हर गरीब के अनाथ बच्चों को अपने बच्चे बना लेना चाहती है। उनकी सेवा में अपने को भुलादेना चाहती है।"[2]

उक्त विवेचन के आधार पर हम देखते है कि"प्रेमी" जी को दीन दलितों के प्रति विशेष करूणा थी, वे उनके दुःख दरिद्रता में सहभागी होते थे, उनके इस भाव की प्रति छाया उनके अनेक नाटकों में दृष्टि गोचर होती है।

4. आमूल परिर्वतन के स्थान पर सुधार की भावनाः–

यह गॉधीवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। गॉधी जी ने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में अत्यधिक उपयोगी मानकर इसका व्यवहार किया। वे इस बात पर विश्वास करते थे कि जो व्यक्ति अपना सुधार नहीं कर सकता है, वह दूसरे का सुधार कदापि नहीं कर सकेगा। "पर उपदेश कुशल बहुतेरे" इसलिए हजार उपदेशों से एक सदाचार अच्छा है। फिर यदि कोई किसी दूसरे के आचरण को सुधारने के लिए प्रेम का मार्ग अपनाता है, तो उसको आदर विश्वास और प्रेम मिलेगा ही किन्तु यह तो तभी हो सकता है जब वह स्वयं ईमानदारी से अपने दोषों को दूर करने का प्रयत्न करेगा।"[3]

हरिकृष्ण प्रेमी जी अपने युग के युग पुरूष महात्मा गॉधी के दर्शन से पूर्णतः प्रभावित रहे। गॉधी जी के इस पवित्र भाव का प्रतिबिम्ब उनके नाटकों में दृष्टिगत होता है।

"शपथ" नाट्यकृति में उज्जयिनी की कंचनी परिस्थितिवश नर्तकी बनती है। विष्णु बर्द्धन पतन मार्ग की ओर जाने वाली कंचनी को सुमार्ग पर आने का अधिकारी मानते है। वे वत्स से कहते है......"कोई व्यक्ति किस कारण, प्रलोभन और

1. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–105
2. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–109
3. महात्मा गॉधी का दर्शन : डा0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0–67

परिस्थिति वश पतन के पथ पर चला गया तो क्या वह सदा के लिए सुपथ पर सम्मान पूर्वक आने का अधिकार खो बैठता है। जिस दिन हमारा समाज इतना अनुदार हो जायेगा उसी दिन समझ लो उसमें विनाश के कीटाणु जन्म ले लेंगे।"[1] "वत्स भी विष्णु वर्द्धन के कथन की प्रशंसा करते है। विष्णु बर्द्धन वेश्या को गृहणी बनाने के लिए तैयार हो जाते है।"[2]

"संवत् प्रवर्त्तन" नाट्यकृति में आचार्य कालक की बहिन सरस्वती का अपहरण गर्दभिल्ल दर्पण पर लेता है। आंचार्य कालक इस दुराचारी राजा से प्रतिशोध लेना चाहता था तथा अपनी भगिनी को मुक्त कराना चाहता है। इसलिए आचार्य कालक शकों को आमंत्रित करते हैं। शक यहॉ आकर शासन करने लगते हैं। आचार्य कालक में सुधार की भावना आ जाती है अब वे विक्रम बेताल और भतृहरि के साथ मालव–आकर प्रदेश को स्वतंत्र कराना चाहते है, जिससे मालव–आकर प्रदेश के श्रेणि मुख्य कालक पर अविश्वास करते है। इस सम्बन्ध में आचार्य कालक का कथन दृष्टव्य है......"बन्धुओ, आपकी आपत्ति उचित है। क्रोध के आवेश में मुझसे अपराध हुआ है। मैं केवल दुराचारी राजा से प्रतिशोध लेना चाहता था। मुझे इस बात की कल्पना भी नहीं थी कि शक यहॉ अपना साम्राज्य स्थापित करेंगे। मैं निश्चय ही अपराधी हूॅ और आकर–मालव प्रदेश के श्रेणिमुख्यों के सम्मुख अपराधी की भॉति उपस्थित हूॅ। इसके पूर्व कि किसी और बात पर विचार किया जाये मेरे लिए दण्ड की व्यवस्था कीजिये। मैं आप लोगों की आज्ञा पर प्राण देने को प्रस्तुत हूॅ।"[3]

"प्रकाश स्तम्भ" नाट्यकृति में ब्राह्मण द्वारा बाप्पा का वास्तविक परिचय जान लेने पर नागदा नरेश के विचारो मे सुधार की भावना आ जाती हैं। वे पद्मा का विवाह बाप्पा से करने को सहर्ष तैयार हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में नागदा नरेश का कथन अवलोकनीय है......."आज सचमुच बहुत शुभ दिन है। आज बाप्पा के वास्तविक परिचय को पाकर मेरे हृदय की सारी दुविधायें दूर हो गयी। (बाप्पा से) मुझे क्षमा करो बाप्पा, अनजानें में तुम्हें ग्वाला समझकर मैने तुम्हारी भावनाओं को ठेस पहुॅचायी थी।"[4]

"स्वर्ण विहान" गीत नाटिका में राजा रणधीर जनता से काम लेता है और उस श्रम के बदले मजदूरी नहीं देता है। जनता राजा के अत्याचारों से परेशान है। आखिर वह स्वतंत्रता चाहती है। प्रजा की शक्ति के सामने राजा के विचारों में सुधार की भावना आ जाती है। राजा रणधीर ही स्वंय कहता है.......

1. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–104
2. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–104–157
3. संवत् प्रवर्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–80
4. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–98

"कब तक श्मशान के ऊपर,
रक्खूँ सिंहासन मेरा?
कैसे लहरो–लपटों पर
चल सकता शासन मेरा?
मेरे अपने स्वजनों को
भी तो है तूने छीना।
कर लेती सबको वश में,
यह मधुर प्रेमी की बीणा।
केवल मनुष्य ही बनकर
मैं सीखूँ जग में रहना।
यह राजपाट वैभव तज,
हो प्रेम धार में बहना।।"[1]

"कीर्ति स्तम्भ" नाट्यकृति में जयमल तारा को प्राप्त करना चाहता है। तारा जयमल से प्रेम नहीं करती, फिर भी जयमल तारा को जबरन प्राप्त करने का उपाय सोचता है। यहॉ तक कि उस पर शस्त्र उठाना चाहता है, लेकिन उसके मन में सुधार की भावना आ जाती है। वह तारा के सामने शस्त्र उठाने के स्थान पर अपना मस्तक झुका देता है और अपना मस्तक भी तारा से काट लेने को कहता है। इस परिप्रेक्ष्य में जयमल का कथन दृष्टव्य है......"तो मुझे नारी पर शस्त्र उठाना पड़ेगा। हृदय की प्रत्येक धड़कन में जिसका नाम गूँज रहा है, उसके सुकोमल शरीर को तलवार के घावो से विरूप करना पड़ेगा। नहीं, यह नहीं होगा। मैं तुमसे हार मानता हूँ। लो मैं अपना मस्तक झुकाता हूँ। यदि संसार भर की कठोरता से तुम्हारे हृदय का निर्माण हुआ है तो काट लो मेरा मस्तक।"[2]

"आन का मान" नाट्यकृति में औरंगजेब जीवन के प्रारम्भ में बडे ही कुत्सित कार्य करता है जिससे उसकी सन्तानें तो दुःखी रहती ही है, प्रजा भी अत्यन्त त्रस्त रहती है। जीवन के अन्तिम चरण में उसमें सुधार की भावना आ जाती है। वह अपनी पुत्री में मेहरुन्निसा से कहता है......"लेकिन इस बूढे सॉप के जहर के दॉत टूट गये है बेटी! तुम चाहो तो इसकी थूथरी कुचल सकती हो।"[3] जो औरंगजेब अत्यन्त क्रूर और निर्मम था, उसमें सुधार की भावना आ जाने से शाहजहॉ जैसी उदारता आ गयी है। वह अपनी पुत्री जीनतुन्निसा से कहता है......"हमे ऐसा जान पड़ता है कि हम

1. स्वर्ण विहान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–83–84
2. कीर्ति स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–83
3. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–62

आगरे के किले में है। यह जो पास में बहने वाली भीम नदी की आवाज आ रही है, वह जमुना है। हम औरंगजेब नही है। बूढ़े बीमार और भग्न हृदय शाहजहाँ है। तुम ऐसी जान पड़ती हो जीनत–ऐसी जान पड़ती हो मानो जहाँआरा बेगम बूढ़े बाप को पंखा झल रही है।"[1]

औरंगजेब आजीवन ही धर्म विस्तार की कामना से युद्ध लड़ता रहा, लेकिन अपने जीवन के अन्तिम समय में उसमें सुधार की भावना आ गयी है वह अपनी पुत्री मेहरून्निसा से कहता है......"वास्तविकताओं की तरफ से ऑख मूँद लेने भर से उनका अस्तित्व समाप्त नही हो जाता। तुमने हमें बहुत बाते सुनायी है, अब कुछ हमसे भी सुनना होगा। हमें दिखाई पड़ रहा है कि हम बीमार शाहजहाँ... हमारे चारों बेटे मुहज्जम, मुहम्मद, आजम, मुहम्मद अकबर और कामवक्श शाहजहाँ के चारो बेटे दारा शिकोह, शुजा, मुराद और औरंगजेब है। अपनी–अपनी सेनायें लेकर बढ़े चले आ रहे है हम लड़ाई रोकना चाहते हैं पर हमारी कोई नही सुनता"[2]

"रक्षाबन्धन" नाटक में धनदास नाम का पात्र अत्यन्त ही धनलोलुप है। धन को वह राष्ट्र से बड़ा समझता है। मेवाड़ पर आक्रमण की बात सुनकर बहुत ही प्रसन्न होता है। उसने बहादुर शाह को रसद पहुँचाने का ठेका भी ले लिया है ताकि बहुत सा धन प्राप्त कर सके। उसकी पत्नि माया धन से राष्ट्र को बड़ा समझती है। वह अपने पति धनदास को सद्‌मार्ग की ओर प्रोत्साहित करती है, जिससे धनदास में सुधार आ जाता है। वह अपनी पत्नि माया से कहता है....."माया तुम सच कहती हो तुम वास्तव में देवी हो। तुमने आज मेरी ऑखे खोलदी है। उफ! मैं कितनी गलती पर था, कैसा जघन्य अपराध करने चला था। तुमने बचा लिया। ले जाओ माया मेरा सम्पूर्ण धन! जो वीर रण में वीरगति को पावें उनके बाल–बच्चों की सेवा में मेरा सर्वस्व समर्पण कर दो।"[3]

इसी प्रकार अनेक प्रसंग उनके नाटकों में दृष्टि गोचर होते है, जहाँ व्यक्ति के चरित्र और उसकी प्रवृत्ति में सुधार की भावना जन्म लेती है, और उसके जीवन की शिक्षा परिवर्तित हो जाती है।

5. धार्मिक एकताः–

भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। अतः यहाँ पर किसी एक धर्म को राष्ट्र धर्म नहीं माना गया है। हमारे यहाँ सभी धर्मों के प्रति समभाव है। महात्मा गाँधी भी धार्मिकएकता के पक्षधर थे। उन्होंने सभी धर्मों की एकता के लिए समय–समय पर

1. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–62
2. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–63
3. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–33

विचार प्रकट किये। एक स्थान पर गॉधी जी ने धार्मिक एकता के सम्बन्ध में कहा है.... "सभी धर्म मेरे लिए मेरे अपने हिन्दू धर्म के ही समान हैं, क्योंकि सभी मानव आपस में भाई-भाई है। इसलिए मुझे दूसरे धर्मों के प्रति भीवही आदर भाव है जो मुझे अपने धर्म के प्रति है। इसलिए मेरे सामने धर्म परिवर्तन का प्रश्न ही नही उठता। धार्मिक भ्रातृत्व का यही उद्देश्य होना चाहिये कि किस प्रकार एक हिन्दू को अच्छा और आदर्श हिन्दू तथा एक मुसलमान को और एक ईसाई को अच्छा मुसलमान और ईसाई बनाया जाय।"[1] गॉधी जी सभी धर्मों की विविधता में एकता चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है...."हम सब धर्मों का मृतवत् एक स्तर पर नहीं लाना चाहते, वल्कि विविधता में एकता चाहते है। पूर्व परम्परा और आनुवांशिक संस्कार, जलवायु और दूसरी आस पास की बातों के प्रभाव को उन्मूलन करने का प्रयत्न केवल असफल ही नहीं अधर्म भी होगा। आत्मा सव धर्मों की एक है..... हॉ, वह विभिन्न आकृतियों में मूर्तिमान होती है और यह बात कालान्त तक बनी रहेगी। इसलिए जो बुद्धिमान हैं, समझदार है, वे तो ऊपरी कलेवर पर ध्यान न देकर विभिन्न आकृतियों में उसी एक आत्मा का दर्शन करेंगे। हिन्दुओं के लिए यह आशा करना कि इस्लाम, ईसाई-धर्म और पारसी-धर्म को हिन्दुस्तान से निकाल दिया जा सकेगा एक निरर्थक स्वप्न है। उसी तरह मुसलमानों को भी यह आशा करना कि इस्लाम का राज्य सारी दुनियॉ में हो जायेगा, कोरा स्वप्न किसी दिन सिर्फ उनके कल्पनागत है। पर अगर इस्लाम के लिए एक ही खुदा को और उसके पैगम्बरो की अनन्त परम्परा को मानना काफी होता है तो हम सब मुसलमान है। इसी तरह हम सब हिन्दू और ईसाई भी है। सत्य एक ही धर्म-ग्रन्थ की एकान्तिक सम्पत्ति नहीं है।"[2] गॉधीवादी मानवतावाद के इस तत्व की प्रतिछाया "प्रेमी" जी के नाटकों में दृष्टिगत होती है।

"स्वप्न भंग" नाटक में दारा शिकोह को औरंगजेब के स्वसुर शाहनबाज खॉं आश्रय देते है। वे दारा के सिद्धान्त एवं आदर्शों के सर्मथक है। वे दारा से कहते है....."मैं मुसलमानों के दिल में धार्मिक कट्टरता का अन्त करना चाहता हूॅ।"[3]

"मैं चाहता हूॅ कि मुसलमान देखे जो हिदायतें कुरान में दी गयी है। वे ही हिन्दुओं के वेद और उपनिषदो में है। इनमें और उनमें फर्क ही क्या है? और यदि है भी तो धर्म के नाम पर जन्म भूमि के टुकड़े तो हम न करें।"[4] इसी प्रकार दारा शिकोह भी धार्मिक एकता का पक्षधर है। उसने संस्कृत में लिखे गये गीता और

1. महात्मा गॉधी का दर्शन : डा0 धीरेन्द्र मोहन दत्त, पृ0-36
2. हिन्दू धर्माभियानीमहात्मा गॉधी सम्पादक : जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0- 22-23
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0- 103
4. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0- 103

उपनिषदों का फारसी में अनुवाद किया था जिसे दारा की मृत्योपरान्त प्रकाश, जहॉनारा को वही (गीता और उपनिषदो) की अनुदित पुस्तकें प्रदान करता है। उन पुस्तकों में दारा का सन्देश है कि....“यहॉ न कोई हिन्दू है न मुसलमान केवल उस “एक” उस खुदा उस ब्रह्म का अलग--अलग घट में प्रतिबिम्ब है। हम छाया के लिये लड़ते रहे है और वास्तव को भूल रहें है।”[1]

“स्वप्न भंग” नाट्यकृति में दारा धार्मिक एकता का सर्मथक है। वह खलीलुल्लाह खॉ से कहता है.......“हिन्दू भोले हैं जो आज भी मुगल साम्राज्य के लिए जान देने को प्रस्तुत है। दूर क्यों जाते हो, मेरे पास बैठे हुए रण केशरी बीरवर छत्रसाल हाड़ा को ही देखिए। इन्होंने किसलिए हमारे लिए बावन युद्धों में सफलता पूर्वक तलवार चलाई। इसमें इनका क्या स्वार्थ था? जो हिन्दू मुगलो की ओर से अफगानिस्तान और ईरान में विजय पा सकते है, वे यदि संगठित हो सकें तो क्या मुगल साम्राज्य का अस्तित्व खतरे में नही डाल सकते? यहॉ पर तो हिन्दुओं और मुसमानों को एक होकर ही रहना उचित है।”[2]

“रक्षाबन्धन” नाट्यकृति में जबाहर बाई को जब पता चलता है कि कर्मवती हुमायूँ को भाई बनाना चाहती है, तो वह चौंक जाती है। तब कर्मवती धार्मिक एकता का प्रतिपादन करती हुई जबाहरबाई से कहती है......“चौंकती क्यों हो जबाहरबाई! मुसलमान भी इंसान है। उनके भी बहनें होती है। सोचो तो बहन क्या वे मनुष्य नहीं है? क्या उनके हृदय नहीं है? वे ईश्वर को खुदा कहते, मन्दिर में न जाकर मस्जिद में जाते हैं, क्या इसीलिए हमें उनसे घृणा करनी चाहिये?”[3]

“प्रतिशोध” नाट्यकृति में छत्रसाल बकी खॉ से पूछता है कि आप यहॉ किस लिए आये है? बकी खॉ उत्तर देता है कि बुन्देलखण्ड की आजादी के जंग में आपका साथ देने की इजाजत लेने। यह सुनकर सुजान सिंह कहता है कि बुन्देलखण्ड की आजादी से तुम्हें क्या ताल्लुक है। इसके उत्तर में बकी खाँ धार्मिक एकता के परिप्रेक्ष्य में कहता है.......“हमें ताल्लुक क्यों नहीं बुन्देलखण्ड क्या सिर्फ बुन्देलों का है? क्या यह जमीन सिर्फ हिन्दुओं को दाना–पानी देती है। हम मुसलमानों को नहीं? मजहब के नाम पर मुल्क के टुकड़े न करो सुजान सिंह, जिस मुल्क में हम पैदा हुए, जिसकी मिट्टी में हम खेले–कूदे, जिसके आवोदाना से हम पले, उसकी आजादी से हमारा कोई ताल्लुक नहीं?”[4]

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 128
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 38
3. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 27
4. प्रतिरोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 101

"विदा" नाट्यकृति में नाटक कार ने अकबर एवं जेबुन्निसा को हिन्दुओं का समर्थक निरूपित किया है। औरंगजेब समस्त हिन्दुओं कों मुसलमान बनाकर हिन्दुस्तान में इस्लामी राज्य की स्थापना करने का निश्चय करता है। उसके पक्षपात पूर्ण व्यवहार के कारण उसके पुत्र और पुत्री उसके विरूद्ध हो जाते है। जेबुन्निसा अपने भाई से कहती है......"अब्बा ने इस्लाम की भयानक तस्वीर जो दुनियाँ के सामने रखी है, असल में इस्लाम ऐसा नहीं है। वह दूसरे धर्म को मानने वालों पर अत्याचार को नही कहता। वह प्रत्येक व्यक्ति को बराबर समझने को कहता है।"[1] वह अपनी बहिन जेबुन्निसा से एक दिशा प्राप्त कर उसके क्रियान्वयन हेतु जोधपुर की सेना से ससैन्य मिल जाता है। अकबर के धार्मिक एकता सम्बन्धी विचार उल्लेखनीय हैं। वह कहता है........"मैं हिन्दुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति राजपूत, मुसलमान, सिक्ख, मराठे सभी का विश्वास पाने का यत्न करूँगा। मैं केवल मुसलमानों का बनकर नहीं रहूँगा।"[2] परन्तु उसे असफलता मिलती है। स्वयं महाराणा जसबन्त सिंह की महारानी पूर्वाग्रह ग्रस्त होने के कारण औरंगजेब और अकबर में मुसलमान होने के कारण अन्तर नहीं कर पाती है। उनकी मान्यता है कि अकबर भी दिल्ली के सिंहासन पर प्रतिष्ठित होकर हिन्दू राज्य को सहन नही कर पायेगा, अतः उसे दिल्ली के सिंहासन पर अधिष्ठित कराने के लिये राजपूतों कों सहयोग नहीं करना चाहिये। इस परिप्रेक्ष्य में दुर्गादास कहता है......."भारत में हिन्दू राज्य की कल्पना एक विड़म्बना के अतिरिक्त कुछ नहीं है।[3] क्योंकि राजस्थान में ही जयपुर के महाराजा औरंगजेब की हिन्दू विरोधी नीति को जानते हुए भी उनके साथ हैं। ऐसी स्थिति में दुर्गादास की अभिलाषा है कि भारत में एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हो जिसके पीछे जन बल हो, जिससे प्रत्येक धर्म को विकसित होने का अवसर मिले।"[4]

इसी नाट्यकृति में "आलमगीर जिन्दापीर" औरंगजेब की पुत्री जेबुन्निसा हिन्दू एवं मुसलमान धर्म की आन्तरिक एकता का प्रतिपादन उस समय करती है। जब वह देखती है कि उसके पिता धर्म के नाम पर इस्लाम धर्म का हिन्दुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रसार करना चाहते है। वह कहती है..... "खुदा एक है और आकारहीन है।........मनुष्य को केवल एक खुदा को मानना चाहिये, यही तो इस्लाम कहता है। बहुत से हिन्दू भी यही बात मानते है। सिर्फ वे खुदा को ईश्वर कहते है। सूफी–पीर भी क्या बहुत से देवी देवताओं को मानते है, शिया

---

1. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–77
2. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–78
3. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–89
4. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–89

मुसलमान भी उसी खुदा को मानते है, जिसे आप जैसे सुन्नी।"[1]

इसी कृति में दुर्गादास अकबर से कहता है, भारत के दुर्भाग्य से आज शिवाजी हमारे बीच में नहीं है। वह होते तो आज हिन्दुस्तान की स्थिति ही और होती। वह एक चतुर राजनीतिक थे। वह औरंगजेब के विरूद्ध जितनी भी शक्तियॉ रही है, उन्हें एक सूत्र में बॉधने का यत्न करते रहे। धार्मिक एकता के सम्बन्ध में अकबर कहता है...."वह एक ऊँचे दर्जे के देशप्रेमी थे। एक सच्चे मानव थे। उनके दिल में हिन्दू मुसलमान में किसी प्रकार का भेद नहीं था। उनकी सेना में हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। यद्यपि उन्होंने अब्बाजान की हिन्दू विरोधी नीति के कारण मराठों का संगठन किया था। फिर भी वह मुसलमानों का केवल धर्म के कारण अपमान नहीं करते थे। जहॉ भी उन्हें कुरान शरीफ प्राप्त होता था, उसे सम्मान के साथ किसी मौलबी के पास पहुँचा देते थे। उन्होंने कभी किसी मस्जिद को अपमानित नहीं किया। ऐसे ही व्यक्ति हिन्दुस्तान की दो प्रमुख जातियों को निकट लाकर एक संगठित और शक्तिशाली राज्य का निर्माण कर सकते है।"[2]

"शपथ" नाट्यकृति में जन नायक विष्णुवर्द्धन वैदिक धर्मानुयायियों और बौद्धों में एकता स्थापित कराने के प्रयोजन से बौद्ध भिक्षु महाज्ञान को आमंत्रित कराते हैं। महाज्ञान, पुष्यमित्र का उदाहरण देकर बौद्धो की देश द्रोहितापूर्ण कार्यवाही की समीचीनता प्रतिपादित करते है। इस सन्दर्भ में विष्णुवर्द्धन उन्हें समझाते हुए कहते हैं कि......."कुछ बुद्धिहीन भूपालों के अपवादों को भूलजाना ही श्रेयस्कर है। हमारे किसी पूर्वज ने प्रमाद वश कुछ भूल की है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसे चिरकाल तक स्मरण रख कर अपने राष्ट्रजीवन को छिन्न–भिन्न कर दें।"[3] अतः धार्मिक क्षेत्र में समन्वय स्थापित करते हुए विष्णुवर्द्धन का अधोलिखित कथन दृष्टव्य है....."वैदिक धर्म ने भगवान बुद्ध को भी धर्म का अवतार माना है। बौद्ध और वैदिक धर्मावलम्बी जननी जन्मभूमि भारत की समान सन्तान हैं। कोई मॉ का चीर हरण करे तो दोनो पुत्रों को समान दुख होना चाहिए।"[4] विष्णु वर्द्धन धार्मिक एकता को राष्ट्रीयता के लिये अवश्यक मानते हैं।

"रक्त रेखा"नाट्यकृति में अरब का बन्दी इस्लाम का कट्टर भक्त होने के कारण इसके प्रसार के लिए किसी भी देश की सीमा में प्रवेश करने के साथ–साथ महिलाओं को भी आमंत्रित करता है फिर भी उसकी मान्यता है कि इस्लाम धर्म के अनुसार वह निर्दोष है उससे दाहर कहता है......."भारत का किसी धर्म से बैर नहीं है।

1. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–5
2. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–153
3. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–87
4. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–87–88

इस्लाम धर्म के अनुयायी अरब व्यापारी भारत में शताब्दियों से आते रहे हैं, उनमें से अनेक यहीं बस गये हैं। भारत वासियों ने उन्हें अपना बन्धु बनाकर रखा है। भारत प्रत्येक धर्म की पवित्रता पर आस्था रखता है और प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वाधीनता प्रदान करता है।"[1]

"अमर आन" नाटक मे दारा अहाड़ी रानी के किसी कथन से सहमत होकर कहता है......."मैं आपसे सहमत हूँ, हिन्दू और मुसलमान इस साम्राज्य की दो भुजायें हैं.......दो आँखे हैं, दो पॉव हैं और मैं तो यह कहूँगा हिन्दू दायी भुजा हैं और मुसलमान बॉई।"[2]

"आन का मान" नाट्यकृति में सफीयतुन्निसा दुर्गादास से कासिम खॉ के सम्बन्ध में संशय व्यक्त करती है। वह कहती है कि आखिर कासिम खॉ भी मुसलमान है। दुर्गादास इसके समाधान में सफीयतुन्निसा से कहते हैं......."मुसलमान तो तुम भी हो बेटी, मुसलमान तो तुम्हारे अब्बा भी है, सम्राट शाहजहॉ, जहॉगीर, अकबर महान् सभी मुसलमान थे, मुसलमान तो सम्राट हुमायूँ भी थे, जिन्होंने चित्तौड़ की राजमाता कर्मवती की भेजी हुई राखी की लाज रखने के लिए अपने साम्राज्य को खतरे में डालना स्वीकार किया था। शहजादी, मानवता सब धर्मो से ऊँचा धर्म है। मानवता पर मुझे विश्वास था और है, सभी औरंगजेब नहीं हो सकते।"[3] दुर्गादास का उक्त कथन धार्मिक एकता को पुष्ट करता है।

धार्मिक एकता को निरूपित करती हुई इसी नाट्यकृति में मेहरून्निसा, जीनतुन्निसा से कहती है......"तो सम्राट को चाहिये कि किसी भी धर्म से अपना सम्बन्ध न रखें। वह यह न करें कि मस्जिदें बनवायें और मन्दिरों को तुड़वायें या मन्दिरों को बनवाये और मस्जिदों को तुडवायें। उच्च पदों पर धर्म के आधार पर नहीं योग्यता के आधार पर नियुक्तियॉ करें। सभी धर्मों के अनुयायियों पर समान कर लगाये जायें और समान सुविधायें उन्हें दी जायें। जहॉपनाह, सम्राट के लिए प्रजा के सब लोग उनकी सन्तान हैं। एक सन्तान से प्यार और दूसरी से घृणा करने का परिणाम साम्राज्य रूपी परिवार के सर्वनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं हो सकता।"[4]

"संवत् प्रवर्तन" नाट्यकृति में सरस्वती विक्रम को धार्मिक एकता के सम्बन्ध में बताती है। वह कहती है कि......"वास्तव में जैन एवं जैनेवर शताब्दियों से भाई–भाई की की भॉति रहते आये थे। धर्म उनके बीच दीवार खड़ी नहीं करता था। अनेक परिवार ऐसे थे जो अलग–अलग धर्मों को पालते हुए भी शादी विवाहों द्वारा एक

1. रक्त रेखा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27
2. अमर आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–89
3. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 19
4. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0– 76

दूसरे से सम्बन्धित थे।"[1]

"सॉपों की सृष्टि" नाट्यकृति में मलिक नायव काफूर को वर्ण विभाजन व्यवस्था के कारण हिन्दू धर्म पसन्द नहीं है। वह अनुभव करता है कि शूद्र जाति में उत्पन्न होने के कारण भारत ने उसका उचित मूल्यांकन नहीं किया है, इसके विपरीत इस्लाम धर्म स्वीकार करते ही वह दिल्ली सम्राट अलाउद्दीन का प्रधान सेनापति एवं प्रोन्नति पाकर मन्त्री बन जाता है, इसलिए वह इस्लाम धर्म का प्रशंसक है, परन्तु गुर्जर नरेश की पत्नी कमलावती, इस्लाम धर्म का संहार रूप देखने के कारण उसकी आलोचना करती हुई कहती है....."काफूर तुम भारतीय धर्म पर रूष्ट हो, क्योंकि तुमने सिर्फ उसका गलत रूप देखा है, जो पिछली कुछ सदियों की उपज है। मैं इस्लाम से रुष्ट हूँ, क्योंकि मैंने उसका संहारक रूप देखा है। वास्तव में देखा जाय तो कोई धर्म बुरा नहीं है, बुरे हैं उसका गलत अर्थ लगाने वाले।"[2]

इसी नाट्यकृति में नाटककार ने धार्मिक एकता का प्रतिपादन करने के लिए कमलावती की पुत्री देवल एवं अलाउद्दीन के बड़े पुत्र खिज्र खॉ के प्रणय प्रसंग को प्रस्तुत किया है। दोनों संगीत-प्रेमी प्रणयानुरंजित हैं। अलाउद्दीन विवाह के सम्बन्ध में दोनों की सम्मति लेता है, परन्तु दोनों ही विवाह करने से मना करते हैं। तदुपरान्त देवल के माध्यम से नाटककार ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि......"मैंने इन्हें पास से देखकर जाना कि धर्म क नाम पर इंसानों का पृथक करना अस्वाभाविक है।"[3]

इस प्रकार "प्रेमी" जी ने मानवता के हित के लिए अपने नाटकों में धार्मिक एकता को प्रश्रय दिया है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में प्रायः यह तत्व दृष्टिगत होता है।

6. साम्प्रदायिक एकता:-

"गॉधी जी साम्प्रदायिक एकता चाहते थे। स्वतंत्रता के दौरान देश का विभाजन हुआ। भारत और पाकिस्तान दोनों ही नवनिर्मित देशो में साम्प्रदायिक दंगे, हत्यायें और लूटमार हुई। गॉधी ने इस साम्प्रदायिक पागलपन की बाढ़ को रोकने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगादी और उसे रोकने में बहुत कुछ सफल भी हुए।"[4]

गॉधी जी ने हिन्दू धर्म की विशेषतायें बताते हुए हिन्दू धर्म का अनेक

---

1. संवत् प्रवर्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0- 43
2. सॉपों की सृष्टि : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0- 47
3. सॉपों की सृष्टि : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0-88
4. महात्मा गॉधी की चुनौती कम्युनिज्म : गोपीनाथदीक्षित, पृ0-103

मत सम्प्रदायों के साथ यह–अस्तित्वव भी स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में उनका कथन उल्लेखनीय है.....“हिन्दू धर्म नकारात्मक नहीं है। इसमें दुनियॉ भर के पैगम्बरों की पूजा के लिए स्थान है। सामान्य अर्थों में यह मिशनरी धर्म नहीं है। निःसन्देह इसने अनेक जातियों को अपने में मिलाने का काम किया है। मगर आत्मसात की यह प्रक्रिया बड़ी सूक्ष्म और सतत् विकासमान प्रवाह का परिणाम थी। हिन्दू धर्म प्रत्येक को अपने विश्वास के अनुसार ईश्वरोपासना का उपदेश करता हैं और इसीलिए अनेक मत सम्प्रदायों को साथ इसका शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व है।”[1]

गॉधी जी भारत के सभी सम्प्रदायों (हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई और पारसी) को एकता के सूत्र में आवद्ध करना चाहते थे। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता विशेषकर हिन्दू–मुस्लिम एकता पर जोर दिया।[2]

साम्प्रदायिक एकताके विषय में “स्वप्न भंग” नाटक में “प्रेमी” जी ने स्वयं कहा है.....“आज यह स्वाधीनता पाश से मुक्त है, किन्तु उनके कुत्सित संस्कार अब भी इसके प्राणों में बसे हुए हैं इन कुत्सित संस्कारों में से एक है। साम्प्रदायिक विद्वेष, जिसे दूर करने केप्रयत्न में गॉधी जी जैसे महामानव को प्राणो की आहुति देनी पड़ी।”[3]

इस प्रकार हम देखतें हैं कि हरिकृष्ण “प्रेमी” जी के अनेक नाटकों में साम्प्रदायिक एकता का चित्रण मिलता है।

“स्वप्न भंग” नाट्यकृति में रोशनआरा साम्प्रदायिक एकता के विषय में कासिम खॉ से कहती है....“सम्राट और दारा को मुसलमानों का जरा भी विश्वास नहीं है। जय सिंह, जसबन्त सिंह और छत्रसाल हाड़ा को ही सारे काम सौंपे जाते हैं। क्या कासिम खॉ के हाथो में ताकत नहीं है।”[4] कासिम खॉ विचार करता है कि हम तो पीढ़ियों से ही मुगल साम्राज्य के लिए खून बहाते आये हैं। आज पराये हो गये हैं, लेकिन जो हिन्दू मुगल साम्राज्य की जड़ खोदते थे, विश्वास पात्र बन गये हैं। यह सोचकर कासिम खॉ जसबन्त सिंह से बदला लेने के लिए उद्यत होता है, तभी रोशन आरा साम्प्रदायिकता का पोषण करती हुई कहती है....“जसबन्त सिंह से कैसा बदला, बदला लेना है जहॉंनारा से, दारा से। इन्होंने ने ही तो हम मुगलों को हिन्दुओं का दास बना रखा है। अपने वास्तविक शत्रु का न भूलो सरदार! जड़ पर चोट करने से डालियॉ और पत्तें तो आप ही नष्ट हो जायेंगे।”[5]

---

1. हिन्दू धर्माभिमानी महात्मा गॉधीः जगदम्बा प्रसाद वर्मा, पृ0–16
2. भारतीय राजनैतिक चिन्तन : डॉ0 पुखराज जैन, पृ0–178
3. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, द्वितीय संस्करण के सम्बन्ध में
4. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–34
5. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–35

इसी नाट्यकृति में दारा का साथ हिन्दू सम्प्रदाय तो देने के लिये तैयार है ही, जामनगर के महाराणा भी दारा से प्रभावित होकर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत हैं। यहाँ तक कि अपनी पुत्री का विवाह सिपहरशिकोह से करने का निश्चय कर लेते है।[1] रोशन आरा औरंगजेब से पूछती है अब क्या स्थिति है? औरंगजेब साम्प्रदायिक एकता को प्रदर्शित करता हुआ कहता है कि....''शाहनबाज खॉ के आग्रह पर जामनगर के महाराजा ने अपनी लड़की की शादी दारा से करके अपना सम्बन्ध चिरस्थाई बनाया।''[2]

''प्रतिशोध'' नाट्यकृति में चंपत राय की सहायता से औरंगजेब तख्ते ताऊस पर बैठ गया तब वह चम्पतराय का बड़ा ही अहसानमन्द होता है। साम्प्रदायिक एकता के सम्बन्ध में औरंगजेब कहता है.....''महाराज चम्पतराय, आज औरंगजेब जो तख्ते ताऊस पर बैठ सका है, वह आपकी बहादुरी का ही नतीजा है। मैं जिन्दगी भर आपका अहसानमन्द रहूँगा।''[3]

इसी नाट्यकृति में बकी खॉ साम्प्रदायिक एकता में विश्वास करता हुआ कहता है......''मैं अपने मुट्ठीभर साथियों को लेकर बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों में जो तमन्ना लेकर घूमता फिरता हूँ, उसके पूरे होने के दिन आ गये हैं। चम्पतराय के लड़के छत्रसाल और अंगदराय और उनके चचेरे बलदिवान ने औरंगजेब के खिलाफ तलवार उठाई है। मैंने भी उसका साथ देने का इरादा किया है।''[4] जेबुन्निसा साम्प्रदायिक एकता के विषय में सोचती है कि....मैं यह सोचकर हैरान हूँ कि मज़हब के नाम पर इन्सान इन्सान की जान क्यों लेता है? मालूम नहीं कि यह खुदग़रजी की ऑधी इन्सानियत को कहॉ लिये जा रही है। अब्बा को भी सारी जिन्दगी भर एक खब्त सवार रहा हैं.... दुनियॉ को मुसलमान बनाने का! आखिर क्यों? क्या हिन्दू रहकरइन्सान इन्सान नहीं रहता? मुसलमान बनकर क्या वह ज्यादा खूबसूरत हो जाता है? अब्बा के तअस्सुब ने न जाने कितने बेकसूर लोगोंकी जान ले ली हैं हक का जलबा दुनिया के रिस्तों से ऊपर है मेरा जी चाहताहै कि इस जुल्म के खिलाफ मैं भी बागी बनकर मराठों, बुन्देलों और राजपूतों की मदद करूँ। राजपूतों की कौम भी कितनी अच्छी है। जहॉ औरतें भी तलवार चलाती है। काश! मैं राजपूतानी होती।[5]

''रक्षा बन्धन'' नाट्यकृति में कर्मवती हुमायूँ को राखी भेजकर साम्प्रदायिक एकता को स्थापित करती है। जब जबाहरबाई कहती है हुमायूँ को एक

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–106
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–109
3. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–41
4. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–98
5. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–121

मुसलमान को भाई बनाओगी। इसके उत्तर में कर्मवती कहती है....“ जवाहरबाई! मुसलमान भी इंसान है। उनके भी बहनें होती है। सोचो तो बहन! क्या वे मनुष्य नहीं है? क्या उनके हृदय नहीं है? वे ईश्वर को खुदा कहते, मन्दिर में न जाकर मस्जिद में जाते हैं, क्या इसीलिए हमें उनसे घृणा करनी चाहिये?”[1] कर्मवती हुमायूँ को भाई बनाकर साम्प्रदायिक एकता को प्रतिपादित करती है। वह जवाहर बाई से बहती है.... “समझदार शत्रु को सदा शत्रु बनाये रखना ही तो मनुष्यता नहीं है। हुमायूँ बीर है और बीर पुत्र है। विग्रह और सन्धि दोनों ही में वह मेवाड़ियों के लिए योग्य प्रतिपक्षी है। उसे भाई बनना आता है। ऐसे बीर की बहन बनने में किसी भी क्षत्राणी को गर्व होना चाहिये।”[2]

इसी रक्षा बन्धन नाटक में कर्मवती की भेजी हुई राखी जब दूत द्वारा हुमायूँ को प्राप्त होती है। उस समय साम्प्रदायिक एकता को प्रकट करता हुआ कहता है.....“मेरी ऐसी किस्मत (हिन्दूबेग)! तुम जानते हो मैं मेवाड़ की इज्जत करता हूँ और हर एक बहादुर आदमी को करनी चाहिये। वहॉ की खाक भी सर पर लगाने की चीज है। वहॉ के जर्रे–जर्रे में बहिश्त है।”[3] तातारखॉ कहता है.....“ऑखो पर से तअस्सुव का चश्मा हटा कर देखों। जिन्हें हम दुश्मन समझते हैं, वे सब हमारे भाई है। हम एक ही खुदा के बेटे है।”[4] हुमायूँ जब पत्र को पढ़ता है पत्र पढ़ कर वह दूत से कहता है. ....“बहन कर्मवती से कहना, हुमायूँ तुम्हारी मॉ के पेट से पैदा न हुआ तो क्या, वह तुम्हारे सगे भाई से बढ़कर है। कहदेना मेवाड़ की इज्जत मेरी इज्जत है।”[5] उक्त कथन साम्प्रदाायिक एकता का ही पोषक है।

तातार खाँ जब हुमायूँ से पूछता है कि जहॉपनाह ने उसकी इल्तजा मंजूर कर ली है तो हुमायूँ साम्प्रदायिक एकता से परिपूर्ण कथन कहता है कि.......“यह इल्तजा नहीं हुक्म है। राखी आ जाने के बाद भी क्या सोचविचार किया जा सकता है? यह तो आग में कूद पड़ने का न्यौता है। हिन्दुस्तान की तवारीख कह रही है कि रानी के धागों ने हजारों कुर्बानियॉ कराई हैं। मैं दुनियॉ को बता देना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के रस्मोरिवाज मुसलमानो के लिए भी उतने ही प्यारे हैं, उतने ही पाक हैं।”[6]

इसी नाट्यकृति में हुमायूँ साम्प्रदायिक एकता के सम्बन्ध में हिन्दु बेग से कहता है.......“बहन का रिश्ता दुनियॉ के सारे सुखों दौलतों, तांकतों और सल्तनतों

1. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–26
2. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–28
3. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–36
4. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37
5. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37
6. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–37

से बढ़कर है। मैं इस रिश्ते की इज्जत रखूँगा, सल्तनत जाये, पर मैं दुनियॉ को यह कहते नहीं सुनना चाहता कि मुसलमान बहन की इज्जत करना नहीं जानते। तख्त से उतर कर अगर किसी सच्ची बहन के दिल मे जगह पा सकॅू तो अपने आप को दुनियॉ का सबसे खुशकिस्मत इन्सान समझूँगा। बहन कर्मवती। तुम्हारी राखी मुझे वही ताकत दे जो राजपूतों को देती आई है।"[1]

इसी नाट्यकृति में हुमायूँ अपनी बहिन कर्मवती की राखी का बदला चुकाने के लिए चित्तौड़ जाता है। वह शाह से कहता है......"मैं खुदा से दुआ मॉगता हूँ कि चम्बल और चित्तौड़ के बीच की सारी जमीन गायब हो जाय या ऑधी का कोई झोंका मुझ को उड़ाकर चित्तौड़ के किले में पहुँचा दे। मेरी सारी फौज चाहे यही रह जाय पर मैं अकेला ही मेवाड़ की मुसीबत में शामिल होकर मेवाड़ी राजपूतों के साथ मिलकर, मामूली सिपाही की हैसियत से लड सकॅू। बहन कर्मवती के चरणों की पाक खाक सर पर लगाने का मौका पा सकॅू, और लडते हुए जान देकर उसकी राखी का कर्ज चुका सकॅू।"[2] हुमायूँ को समय से आने में देर हो जाती है। जिसके कारण कर्मवती जौहर की ज्वाला में जलकर भष्मसात हो जाती है तथा हुमायूँ मेवाड़ रक्षा करता है। वह मेवाड़ को बहादुर शाह से पुनः जीतकर महाराणा विक्रमादित्य को सौंप देता है। विक्रम हुमायूँ से कहता है कि मेवाड़ की रक्षा करने की कीमत आपको बहुत ज्यादा देनी पड़ रही है। हुमायूँ साम्प्रदायिक एकता के सम्बन्ध में कहता है कि...... "बहन के प्यार की कीमत इन राखी के धागों की कीमत दुनियॉ की बादशाहत और बहिश्त सल्तनत से भी बढ़कर है महाराणा! मुझे आफसोस इसी बात का है कि मैं ठीक बक्त पर आकर बहन कर्मवती के कदमों की खाक पर सर न चढ़ा सका।"[3]

नाटक के अन्त में हुमायूँ कर्मवती की चिता के पास बैठकर मॉफी मॉगता हुआ साम्प्रदायिक एकता के सम्बन्ध में कहता है......"बहन! मुझे मॉफ करो, मैं तुम्हारा नालायक भाई हूँ, बहुत कोशिश करने पर भी मैं तुम्हें न बचा सका। पर तुम्हारे मेवाड़ को तुम्हारे दुश्मन के हाथ से छीनकर फिर मेवाड़ियों को सौंपे जाता हूँ। मुझ पर मुसीबत की बिजली चमक रही है, मुझे ताकत दो कि मैं उसका मुकाबला कर सकॅू, जिस तरह तुमने राजपूतों को मरना सिखाया, उसी तरह मुझे भी सिखाओ।"[4]

स्वप्न भंग नाट्यकृति में छत्रसाल साम्प्रदायिक एकता के सम्बन्ध मे कहता है......"मनुष्य न हिन्दू है न मुसलमान। युवराज, दारा और मैं साथ–साथ उठते है। शतरंज का खेल खेलते हुए महबूब खॉ चाल चलने को कहता है। इस पर

1. रक्षा बन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–39
2. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–65
3. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ–92
4. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–93

रतनसिंह कहता बैठते, हँसते गाते और एक दूसरे का सुख–दुःख कहते– सुनते हैं। मानो हम एक ही बाप के बेटे हैं। हमारे सामने जाति और धर्म का प्रश्न ही नहीं उठता।"[1]

"शतरंज के खिलाड़ी" नाट्यकृति में रत्नसिंह और महबूब खॉ जैसे पात्रों की अवधारणा स्वतः साम्प्रदायिक एकता की उद्घोषक है। दोनों मे अगाध मित्रता हैं......."तुम हमारे मित्र हो तुमसे क्या चाल चलूँ? मित्र को पराज़ित करने में भी हृदय को वेदना होती है।"[2] इस सम्बन्ध में महबूब खॉ कहता है......."क्या कहने हैं, बडे उदार हो, कर्ण के अवतार। इस सम्बन्ध में रत्नसिंह भी कहता है कि कर्ण को तुम क्या जानो.......हातिम का नाम लिया होता तो तुम्हारे मुँह से शोभा देता।"[3] इस कथन का प्रायोजन भी साम्प्रदायिक एकता की स्थापना करना है। इसके अतिरिक्त रत्नसिंह अपने पुत्र गिरिसिंह के पालन–पोषण का दायित्व अपने मित्र महबूब खॉ को सौंपता है। यह भी साम्प्रदायिक एकता का प्रयोजन है।

"संरक्षक" नाटक मे स्व0 महाराव उम्मीद सिंह का संरक्षक जालिम सिंह अपने पुत्र माधौ सिंह को वंशानुगत संरक्षक बनबाना चाहता है। महाराव उम्मीद सिंह के पुत्र महाराव किशोर सिंह उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते हैं। फलतः कोटा में गृह–युद्ध प्रारम्भ हो जाता है। उस समय कोटा में विद्यमान अँग्रेजों का संरक्षक सेनापति जालिम सिंह एवं माधौ सिंह का पक्ष लेता है। कोटा पर आक्रमण होते ही महाराव किशोर सिंह आत्मोत्सर्ग के लिए उद्यत हो जाते हैं। वे अपने साथियों और प्रजा को संकट–मुक्त करने के प्रयोजन से उक्त निश्चय करते हैं। ऐसे विषम समय में कोटा के सेनापति असरफ अली और मिर्जा मुहम्मद अली अपना पूर्व सहयोग देने को तैयार हैं। मुहम्मद अली का कथन अवलोकनीय हैं........"यह हिन्दुस्तान सिर्फ हिन्दुओं का ही नहीं, मुसलमानों का भी है। इस जमीन के अन्न से हम पले हैं, इसकी धूल में हम खेले हैं, यह हमारी मॉ है इसकी आजादी के लिये जान देना हमारा फर्ज है।"[4] यह कथन साम्प्रदायिक एकता का द्योतक है।

"विदा" नाटक में महाराजा जसवन्त सिंह की मृत्यु के उपरान्त महारानी नवजात शिशु राजकुमार अजीत सिंह को मारवाड़ की गद्दी का अधिपति घोषित करने के लिए दुर्गादास एवं अनेक राठौर योद्धाओं को साथ लेकर दिल्ली पहुँचती है। वहॉ पर औरंगजेब से निवेदन करने के लिए दुर्गादास को भेजा जाता है। दुर्गादास जोधपुर की रिक्त राजगद्दी अजीत सिंह को दिये जाने की प्रार्थना करता है,

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रमी, पृ0–80
2. शतरंज के खिलाड़ी : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–10
3. शतरंत के खिलाड़ी : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–10
4. संरक्षक : हरिकृष्ण, पृ0–57

परन्तु उसके निवेदन को ठुकराकर मुगल सल्तनत की सुश्रुषा एवं समृद्धि के लिए महाराजा जसवन्त सिंह के पुत्र अजीत सिंह को दिल्ली मे रखना चाहता है। दूरदर्शी दुर्गादास भली भॉति जानता है कि यदि राजकुमार को यहॉ छोड़ दिया तो औरंगजेब उसे मुसलमान बना देगा। अतः वह राजकुमार को सुनियोजित ढंग से भगाना चाहता है। जब उसने देखा कि दिल्ली में समस्त राजपूत मुगल सेना के घेरे में हैं, इसलिए वह अजीत सिंह को दिल्ली से बाहर भेजने के लिए अपने विश्वास पात्र कासिम खॉ की सहायता लेना चाहता है। जोधपुरी सेना के सेनापति एवं सामन्त मुकुन्द दास को कासिम खॉ पर मुसलमान होने के कारण विश्वास नहीं है। इस स्थिति में दुर्गादास कहता है....."मुसलमानों में सभी औरंगजेब नहीं हैं, मुकुन्ददास जी, सत्ता और प्रभुता की प्राप्ति के लिए लोभवश कुछ मुसलमान धर्म का नाम लेकर अन्य धर्माबलम्बियों पर भले ही अन्याय कर रहे हों, लेकिन क्या हम सभी हिन्दू दूध के धुले है। इनमें से कितने ही हिन्दू ऐसे हैं, जो आज भी अन्याय करने वालों के साथ हैं....और कितने ही मुसलमान ऐसे हैं जो हिन्दुओं के साथ बन्धुत्व निभाना चाहते हैं, और औरंगजेब के समर्थक नहीं है।"[1] दुर्गादास का यह कथन साम्प्रदायिक एकता से परिपूर्ण है।

"रक्तदान" नाटक में बहादुरशाह जफर अपनी पत्नी जीनत महल से कहता है....."मुगल राजवंश में कौन ऐसा है जो मुसलमान होते हुए हिन्दू नहीं हैं। हमारी मॉ हिन्दू थी। सम्राट शाहजहॉ और सम्राट जहॉगीर की माताएँ हिन्दू थी। हमारी रगो में हिन्दू रक्त भी उसी प्रकार प्रवाहित है, जिस प्रकार मुगल। फिर हिन्दुस्तान में जन्म लेने के कारण कम से कम हिन्दू तो हम हैं ही।"[2]

मिर्जा कायाश खाँ द्वारा ईद के दिन गाय की कुरवानी से सम्बन्धित षडयन्त्र का पता चलते ही बहादुर शाह अपने पुत्र, मिर्जा मुगल से घोषणा पत्र लिखाते हैं, इसके अन्तर्गत वे साम्प्रदायिक सौहार्द्र बनाये रखने सम्बन्धी भाव व्यक्त करते हैं।[3] वे साम्प्रदायिक एकता का महत्व बताते हुए कहते हैं....."हिन्दू और मुसलमानों के जीवन अब एक दूसरे से इतने गुथ गये हैं कि अब दोनों के पृथक अस्तित्व की कल्पना करना भी घातक है, दोनों के बीच भ्रातृत्व रखेबिना भारत स्वतंत्र हो नहीं सकता और स्वतंत्र रह नही सकता।"[4]

इस प्रकार प्रेमी जी के अनेक नाटकों में साम्प्रदायिक एकता के दर्शन होते है।

---

1. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–19
2. रक्तदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–15
3. रक्तदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–116
4. रक्तदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–127

7. राष्ट्रीय एकताः–

गाँधी जी मानवतावादी विचारक थे, वे धार्मिक, साम्प्रदायिक एवं जातीय एकता के साथ राष्ट्रीय एकता के भी पक्षधर थे। गाँधी जी सर्व स्वीकृत रूप से भारतीय राष्ट्र के पिता माने गये हैं। उन्हीं के उपदेशों से प्रोत्साहित होकर भारतीय संविधान सभा ने, जिसके अधिकांश सदस्य उनके भक्त और सहयोगी थें, उनके देहान्त के बाद भारतीय संविधान बनाया।[1] संविधान की प्रस्तावना इस प्रकार है....."हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोक तन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त करके के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता को सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 ई0 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते है।"[2]

महात्मा गाँधी की राष्ट्रीय एकता से प्रभावित होकर "प्रेमी" जी ने भी अपनी नाट्यकृतियों में राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में स्पष्ट कहा है...."मेरा देश स्वतंत्र हो गया, किन्तु देशवासियों ने अभी तक राष्ट्रीयता के महत्व को नहीं समझा, इसलिये राष्ट्रीयता की भावनाओं को उत्साहित करने वाले साहित्य की आज आवश्यकता है।"[3]

राष्ट्रीय एकता के सन्दर्भ में प्रेमी जी ने कहा है कि......."इस संघर्ष कें युग में यदि हम सिर ऊँचा करके चलना चाहते हैं, तो पहले राष्ट्रीय एकता स्थापित करें।"[4] उनके अनेक नाटकों में राष्ट्रीय एकता का प्रतिविम्व दृष्टिगत होता है।

"रक्षाबन्धन" नाट्यकृति में हिन्दू–मुस्लिम एकता का भव्य वर्णन है। गुजरात का बादशाह बहादुरशाह मेवाड़ में शरण प्राप्त अपने भाई को वागी घोषित करने के अनन्तर मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य को उसे वापिस भेजने के लिए सन्देश प्रेषित करता है, साथ ही अनुरोध अस्वीकार किये जाने की स्थिति में वह मेवाड़ पर आक्रमण करने की धमकी देता है। उक्त तथ्य से अवगत होकर चाँद खाँ वहाँ से जाने की इच्छा प्रकट करता है, परन्तु विक्रमादित्य मना कर देता है, तब चाँद खाँ कहता है कि एक मुसलमान के लिए इतना बखेड़ा मत कीजिए। इस कथन के सन्दर्भ में विक्रमादित्य कहता है क्या कहा? मुसलमान के लिए क्या मुसलमान इन्सान नहीं है?

---

1. गाँधी जी की चुनौती–कम्युनिज्म को : गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–62
2. गाँधी जी की चुनौती–कम्युनिज्म को : गोपीनाथ दीक्षित, पृ0–62
3. उद्धार –सरस्वती मन्दिर में : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–62
4. विषपान (भूमिका) : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–08

जाति धर्म के नाम पर मनुष्यता के टुकडे मत कीजिये।"[1] अन्ततः उससे प्रभावित होकर चॉद खॉ भी स्वीकार करता है कि......."हिन्दू और मुसलमान दोनों ही हिन्दुस्तानी हैं और रहेंगे। दोनों को एक होकर रहना पडेगा।"[2]

जिस समय बहादुरशाह मेवाड़ पर आक्रमण करने का आदेश देता है, उसी समय उसके धर्म–गुरू शाह शेख औलिया आकर उसे राष्ट्रीय एकता का संदेश देते हुए कहते हैं......."भूलता है बहादुर, हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमान भी हिन्दू हैं। क्यो अपने भाइयो का खून बहाना चाहता है?"[3] फिर भी बहादुर अपने पूर्व निर्णय पर दृढ़ रहता है, जिसके फलस्वरूप भयंकर युद्ध होता है, जिसका सामना करने में मेवाड़ अक्षम सिद्ध होने लगता है, तब कर्मवती हुमॉयू से सहायता लेने के लिए राखी भेजने का निर्णय लेती है।महाराणा संग्राम सिंह की द्वितीय पत्नी जबाहर बाई मुसलमानों को भारत का शत्रु मानने के कारण कर्मवती के निर्णय का विरोध करती है, लेकिन कर्मवती राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में कहती है......."ऐसा न कहो उन्हें भी तो भारत में जीना–मरना है। हमारी तरह भारत उनकी भी जन्म भूमि हो चुकी है। अब उन्हें काफिले में लाद कर अरब नहीं भेजा जा सकता है। उन्हें यहॉ रहना पड़ेगा और हमें उन्हें रखना पड़ेगा। वे हमें भाई समझें और हम उन्हें। यही स्वाभाविक भी है और यही उचित है।"[4] तदन्तर रानी कर्मवती हुमायूॅ को राखी भेजती है और हुमायूॅ अपनी धर्म बहिन की रक्षा के निमित्त हो जाता है। परन्तु वह बिलम्ब से आ पाता है। इसी बीच मेवाड़ पूर्णतः ध्वस्त हो जाता है। वह कर्मवती की राख को मस्तक पर लगाता है तथा विक्रम के समक्ष बहादुरशाह की भूल स्वीकार कर हिन्दुओं की उदारता का वर्णन करता है, तब विक्रमादित्य राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में कहता है....... "हिन्दू और मुसलमान ये दोनो ही नाम धोखा हैं, हमें अलग करने वाली दीवारे हैं, हम सब हिन्दुस्तानी हैं।"[5]

"शपथ" नाट्यकृति में विष्णुवर्द्धन अभयदत्त से कहता है......."अभयदत्त जी, किन्तु मैं चाहता हूॅ कि हमारी संवेदना और सहानुभूति व्यापक रूप धारण करे। राज्य, प्रदेश, जाति और बंशों की प्राचीरों को चीरता हुआ हमारा व्यक्तित्व मुक्त आकाश में पंख फैलाये देश के प्रत्येक प्राणी को अपनी आत्मा का अंश माने।"[6] मंदाकिनी विष्णु वर्द्धन के उक्त कथन से सहमत होकर राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में

1. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–19
2. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–21
3. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–27
4. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–38
5. रक्षाबन्धन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–130
6. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56

कहती है......"निश्चय ही हमें व्यक्तिगत मानापमान और हानि लाभ की भूल सम्पूर्ण राष्ट्र के हिताहित को ध्यान में रखकर एक राष्ट्रपताका की छत्रछाया में खड़े होकर एकता का गीत गाना होगा। कैलाश की ऊँचाई पर गूँजने वाली रागिनी भारतीय महासागर की लहरों में भी सुनाई पड़नी चाहिए।"[1] सुहासिनी भी राष्ट्रीय एकता का समर्थन करती हुई कहती है......"अर्थात् भारत के प्रत्येक हृदय की धडकनों का राग एक होना चाहिए। सम्पूर्ण जन–समुदाय के पग एक ही ताल पर उठने चाहिए।"[2]

इसी नाट्यकृति में अभयदत्त राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में कहता है..... "आर्य सदा ही विभाजित और संकुचित सीमाओं में बंधे हुए नहीं रहे। इतिहास साक्षी है कि सम्राटचन्द्रगुप्त मौर्य, प्रियदर्शी, अशोक परम् भट्टारक स्कन्दगुप्त, पराक्रमॉक आदि सम्राटों ने राष्ट्रीय एकता के महत्व को समझा था। तभी तो सम्पूर्ण भारत में एक चक्रवर्ती साम्राज्य की स्थापना को आवश्यक माना था, जब–जब भारत एकता के सूत्र में ग्रंथित हुआ, तब–तब इसके तेज की चकाचौंध से विश्व की ऑखें चौंधिया गयीं। तब उसकी ओर देखने का साहस किसी को नहीं हुआ और यदि भूल से किसी ने भारत पर आक्रमण करने का दुस्साहस किया भी तो मुँह की खानी पड़ी।"[3]

"शिवा–साधना" नाट्यकृति में बीजापुर के बादशाह आदिलशाह की पत्नी बड़ी साहिबाशाहजी पर आरोप लगाती हुई कहती है....."तुम हिन्दुओं ने मुसलमानी राज को मिटा देने का जाल बिछाया है।"[4] इस पर शाह जी का कथन राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में अवलोकनीय है...."हम हिन्दुओं ने पराये व्यक्तियों को पराया समझा ही नहीं, यहाँ शक आये हूण आये और न जाने कौन–कौन आये। वे हमारे बन कर रहे और हम में मिल गये। हमने तो मुसलमानों के लिये भी अपना हृदय खोल दिया।"[5]

इसी नाट्यकृति में शिवाजी भी राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयासरत रहते है। मोरोपन्त पिंगले "पेशवा" शिवाजी को सूचित करता है कि पठान सेना के 600 पदच्युत सिपाही उनके अधीनस्थ कार्य करने को उद्यत हैं। इसके साथ–साथ वह यह भी बताता है कि पठान सूर और विश्वास पात्र तो होते हैं किन्तुउनकी धार्मिक कट्टरता उन्हें कभी भी पथ भ्रष्ट कर सकती है। इस पर शिवाजी कहते है.... "किन्तु यदि स्वराज्य केवल हिन्दुओं तक ही सीमित रह गया है तो मेरी साधना अधूरी रह जायेगी। मैं जो बीजापुर और दिल्ली के शासनों की जड़उखाड़ डालना चाहता हूँ, वह

1. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
2. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–56
3. शपथ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–57
4. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–26
5. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–26

इसलिए नही कि वे मुस्लिम राज्य है, बल्कि इसलिए कि वे आततायी है। एक तन्त्र है लोकमत को कुचल कर चलने के आदी है।" इससे स्पष्ट है कि शिवाजी हिन्दू होने के साथ ही राष्ट्रीय एकता के लिए प्रयासरत रहे। शिवाजी समस्त जातियों के प्रति स्नेह एवं भ्रातत्व भाव व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं....."....मैंने कभी किसी मस्जिद की एक ईंट को भी ऑच नहीं आने दी। जहॉ मुझे कुरान मिला है मैंने आदर के साथ किसी मौलवी के पास पहॅुचा दिया है।"[2] शिवाजी को आधार बनाकर लिखे गये इस नाटक में साम्प्रदायिक सद्भावना को अक्षुण रखने के कारण प्रो0 जयनाथ "नलिन" ने प्रेमी जी की प्रशंसा की है।"[3]

"आन का मान" नाट्यकृति में दुर्गादास राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाने के लिए अकबर की पुत्री सफीयतुन्निसा से कहते हैं हम समझने लगे हैं कि केवल मुसलमान ही भारत हैं न केवल हिन्दू ही। दोनों को यहॉ जीना है, यही मरना हैं औरंगजेब चाहते है कि उन्होंने मुस्लिम संस्कृति का जो भी गलत–सलत रूप समझ रखा है वही भारत की एक मात्र संस्कृति रहे.....वही राज्य करे, लेकिन सहस्त्रो वर्षों की हिन्दू संस्कृति चाहे उसके वास्तविक स्वरूप से हम दूर हो गये हों, अपनी मौत मरने को तैयार नहीं है। पंचनद प्रदेश में सिखो, ब्रज में जाटों, बुन्देलखण्ड मे बुन्देलों, राजस्थान में राजपूतों और महाराष्ट्र में मराठों के रूप में हिन्दुओं के तेज की ज्योतियॉ जगमगा उठी हैं। ये असंगठित हैं....अपनी सीमाओं में बॅधी हुई हैं.... लेकिन अब यह राजाओं का युद्ध नहीं रहा। अब इस युद्ध को लड़ने के लिए छत्रपतियों और महाराजाओं की आवश्यकता नही है। जन–जीवन स्वयं ही युद्ध को लड़ लेगा।"[4]

"प्रतिशोध" नाट्यकृति में डाकू बकीखॉ बुन्देलखण्ड की स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु प्रारम्भ होने वाले युद्ध में अपना पूर्व सहयोग देने को उद्यत है, इस तथ्य से अवगत होकर सुजान सिंह को आश्चर्य होता है, उस समय वह कहता है.... "बुन्देलखण्ड क्या सिर्फ बुन्देलों का है? क्या यह जमीन सिर्फ हिन्दुओं को दाना–पानी देती है? हम मुसलमानों को नहीं? मजहब के नाम पर मुल्क के टुकड़े न करो सुजान सिंह। जिस मुल्क में हम पैदा हुये, जिसकी मिट्टी में हम खेले–कूदे, जिसके आबोदाना से हम पले उसकी आजादी से क्या हमारा कोई ताल्लुक नहीं? क्या उसकी आन हमें जान से प्यारी नहीं हो सकती?[5]

---

1. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–29
2. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–39
3. शिवा–साधना : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–39
4. आन का मान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–43–44
5. प्रतिशोध : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–101

"अमर–आन" नाट्यकृति में अमर सिंह सलाबत खॉ से राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में कहता है...."मैं तुम्हारे जैसे व्यक्तियों से जो सम्राट अकबर की खडी हुई एकता की इमारत को भूमिगत करने को प्रस्तुत है.... कहता हूॅ होश में आओं! यह मुगल साम्राज्य अकेले मुगलों का नहीं है। बाहरसे आये हुये व्यक्तियों को भारत माता ने अपनी गोद में इसलिए स्थान दिया था कि वे उसे माता समझेंगे उसके सारे पुत्रो को एक मानेंगे।"[1]

"स्वप्न–भंग" नाट्यकृति में प्रकाश का कथन राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। जिसमें प्रकाश दारा के सम्बन्ध में कहता है...."क्या राष्ट्रीय एकता के लिए एक महात्मा का बलिदान व्यर्थ जायेगा। क्या भारत की भावी पीढ़ियॉ इस महान् बलिदान को भूल जायेंगी....हिन्दुस्तान क्या तू इस इस आबाज को सुनेगा! सुनकर कुछ करेगा।"[2]

"भाई–भाई" नाट्यकृति में चूडा जी मालवा के सुल्तान से राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हैं, वे कहते हैं कि यह भारत मॉ का ही रूप है। मोकल इसका पुत्र नहीं है, किन्तु इसने उसे अपना दूध पिलाया है, अपने हृदय का समस्त स्नेह दिया है, इसे अपना ही पुत्र मानती है और इसकी सुरक्षा के लिए सर्वस्व देने को प्रस्तुत हैं। और इसी प्रकार जो भारत का अन्न खाता है, उसे भारत माता अपनी सन्तान मानती है।"[3]

"विदा" नाटक में औरंगजेब अपने पुत्र से कहता है कि तुम वही सोचो जो मैं सोचता हूॅ। तो अकबर राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में कहता है कि...."और वही सारा हिन्दुस्तान सोचे।"[4]

"प्रकाश स्तम्भ" नाट्यकृति में पछ्मा बाप्पा से राष्ट्रीय एकता के सम्बन्ध में कहती है....."यदि विदेशी और विधर्मी भारत को अपनी मॉ मान लें तो भारत की मिट्टी उसे भारतीय बना लेगी। कितने शक और हूण हम क्षत्रियों में समा गये।"[5]

"संवत् प्रवर्तन" नाट्यकृति में सरस्वती से विक्रम पूॅछता है कि क्या तुम मेरी मॉ नहीं हो; सरस्वती कहती है मैं तुम्हारी मॉ हूॅ और नहीं भी हूॅ। बेताल जब कहता है.... हो भी और नहीं भी तो इसके उत्तर में सरस्वती राष्ट्रीय एकता का प्रतिपादन करती हुई कहती है....इसमें विचित्र क्या है? मॉ क्या वही होती है, जो जन्म

1. अमर–आन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–35
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–127
3. भाई–भाई : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–68
4. विदा : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–55
5. प्रकाश स्तम्भ : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–16–17

देती है। हमारा देश भी तो हमारी माँ है। धरती को हम माँ कहते है। गाय को हम माँ कहते हैं और प्रत्येक भारतीय परनारी को हम माँ ही कहते हैं, तब मैं विक्रम की माँ क्यों नहीं हूँ।"[1]

"स्वर्ण विहान" गीत नाटिका में विजय का कथन राष्ट्रीय एकता का प्रेरक है... देखिये–

"जीवन आहुतियाँ डाल–डाल,
कर दे बसुधा का थाल लाल।
आने दे फिर से स्वर्ण काल,
हो एक जननि के सभी लाल।।"[2]

"साँपों की सृष्टि" नाट्यकृति में अलाउद्दीन की पत्नी माहरू बेगम अलाउद्दीन के विश्वास पात्रों के छल से रक्षा के निमित्व कमलावती से सहायता की याचना करती है, परन्तु उसे अपने देश को विनष्ट करने वाले अलाउद्दीन से घृणा है। महारू बेगम इस घृणित भाव की निरर्थकता प्रतिपादित करती हुई कमलावती से कहती है.... "जब तक सारे हिन्दुस्तानी एक जाजम पर बैठकर खाना नहीं खा सकेंगे.... जब तक यहाँ आठ घरों के लिए नौ चूल्हों की जरूरत होगी, जो भारतीय विदेशियों से लड़ते समय भी युद्ध करने की अपेक्षा छूत–छात पर ही अधिक ध्यान रखते हैं, उनका उद्धार कैसे हो सकता है?"[3]

इस प्रकार माहरू बेगम के इस कथन से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय एकता के लिए अस्पृश्यता निवारण आवश्यक है।

"शीश दान" नाटक में अपना भारत देश पराधीन है। अंग्रेजों से टक्कर लेने के लिए तात्याटोपे समस्त देशवासियों को एक सूत्र में बाँधना चाहते है। वह कहते हैं कि...."अंग्रेजों ने पिछले सौ–डेढ़ सौ वर्षों में भारत की दुर्बलता को नंगा कर दिया है। बहुत कुछ खोकर हमारी आँखें खुली है। अब एक होकर भविष्य में भी रहना है और देश के शासन में प्रत्येक व्यक्ति की आवाज रहनी है। प्रत्येक भारतीय को समझना है कि जिस प्रकार हमारे शरीर में विभिन्न अंग हैं, लेकिन अंगो का एक दूसरे से सम्बन्ध है और सारे अंगो से मिलकर शरीर बनता है, उसी प्रकार हमारा यह राष्ट्र है। पैर के नाखून को चोट लगती है तो सारा शरीर तिलमिला जाता है। वही बात हमारे देश के सम्बन्ध में होनी चाहिये। देश के किसी भी कोने में अत्याचार हो तो सारा देश उसके प्रतिकार के लिए तैयार हो जाये। सहानुभूति की डोर में सारे देश को

1. संवत् प्रवर्त्तन : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–06
2. स्वर्ण–विहान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–17
3. साँपों की सृष्टि : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–

सप्तम् अध्याय

प्रेमी जी और समसामयिक गाँधीवादी नाटककार

1. सेठ गोविन्द दास
2. विष्णु प्रभाकर
3. उदय शंकर भट्ट
4. उपेन्द्र नाथ 'अश्क'
5. गोविन्द बल्लभ पन्त

सप्तम् अध्याय

प्रेमीजी और समसामयिक गाँधीवादी नाटककार

हिन्दी नाट्यधारा को जयशंकर प्रसाद के पश्चात् जिन साहित्यकारों ने आगे बढ़ाने का कार्य किया उनमें श्री हरिकृष्ण "प्रेमी" का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। यद्यपि "प्रेमी" जी "प्रसाद" जी की भाँति नाटक को कलात्मक संस्पर्श तो नहीं दे सके, तथापि उनके नाटकों का अपना एक विशेष महत्व है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रेमी जी के नाटकों के वैशिष्ट्य को रेखांकित करते हुए लिखा है "हरिकृष्ण प्रेमी ने भी कई ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। वस्तु विन्यास और प्रसंगानुकूल भाषा योजना में वे बहुत सफल हुए हैं, पर प्रसाद के समान मोहक कवित्व और उदात्त गुणों वाले चरित्रों का उतना अच्छा प्रयोग नहीं कर सके, परन्तु फिर भी प्रेमी जी के नाटकों में नाटकीय तत्व प्रचुर मात्रा में हैं।"[1]

"प्रेमी" जी के नाटकों की विशेषता बतलाते हुए श्री विश्व प्रकाश दीक्षित "बटुक" ने लिखा है–..."हिन्दी नाट्य साहित्य में तो वे सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने प्रेमी जी को प्रसाद जी से भी ऊँचा दर्जा दिया था। हिन्दी नाट्य साहित्य को पल्लवित और पुष्पित बनाने में आपका महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी की ऐतिहासिक नाट्य साहित्य की परम्परा को प्रेमी जी से बड़ा बल मिला है।"[2]

डॉ0 विमला कुमारी मुंशी यद्यपि प्रेमी जी को प्रसाद से ऊपर नहीं मानतीं, विविध रूपों में यह प्रभाव देखने को मिल सकते हैं। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में मेरा उद्देश्य किसी प्रकार का तुलनात्मक विवेचन करना नहीं है, अपितु मैं मात्र उन नाटक कारों की विषयगत एवं कलागत प्रवृत्तियों का सामान्य परिचय प्रस्तुत कर रहा हूँ, जो प्रेमी जी के समकालीन रहे।

1. सेठ गोविन्द दासः–

सेठ गोविन्द दास प्रेमी जी के समकालीन एक प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। जिन्होंने काव्य, उपन्यास यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें, आत्म–कथा निबन्ध सभी कुछ लिखा है किन्तु वे प्रमुख रूप से नाटककार हैं और देश एवं समाज के हित की कामना

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी : ग्रन्थावली, भाग–3, पृ0–527
2. नाटक कार हरिकृष्ण प्रेमी : विश्व प्रकाश दीक्षित "बटुक", पृ0–210–211

से प्रेरित होकर उन्होंने नाटकों का सृजन किया। उन्होंने भी प्रेमी जी की ही भॉति ही पौराणिकऐतिहासिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों से अपने नाटकों के लिए विषयों का निर्वाचन किया है और आधुनिकता की तूलिका से सब रंग भरने की चेष्टा की है।"[1]

सेठ गोविन्द दास की नाट्यकला की विशेषता बतलाते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–..."सेठ गोविन्द दास ने भी कई ऐतिहासिक तथा अन्य श्रेणी के नाटक लिखे हैं, सेठ जी बहुत अध्ययनशील ग्रन्थकार हैं। वे नाटक सम्बन्धी नई कारीगरियों का अध्ययन और प्रयोग बराबर करते रहते हैं।"[2]

हिन्दी में संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक नाटक सेठ गोविन्द दास ने ही लिखे हैं।[3] इस सन्दर्भ में ग्रीश जी का कथन है– "...यहॉं यह भी कहना उचित होगा कि भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की सी ही सत्वर लेखन शक्ति उनमें विद्यमान हैं। अनेक नाटकों के लिखने में उन्होंने जितना समय लिया है जानने में आश्चर्य होता है। अभी कोई दो वर्ष पॉच माह पूर्व तक सेठजी के पचासी नाटक थे। कुछ मित्रों के सुझाव पर उन्होंने पन्द्रह नाटक और लिख कर शतक पूर्ण करने का निश्चय किया और पॉच महीने में ही अन्य कार्यों के करते हुए चौदह नाटक लिख डाले। इन चौदह नाटकों में एकांकी केवल छः हैं शेष आठ पूरे नाटक हैं, तीन–चार और पॉच अंकों के। सेठ जी ने अपना सौवॉ नाटक महात्मा गॉधी पर लिखा। बड़े से बड़ा नाटक लिखने पर उन्हें शायद ही एक सप्ताह का समय लगा हो, फिर इतना अधिक लिखने पर भी उनके नाटक एक विशिष्ट उच्च स्तर के होते हैं।"[4]

अपने ऐतिहासिक नाटकों में सेठ गोविन्द दास जी ने प्रेमी जी की तरह ही राष्ट्रीय विचारधारा को प्रमुख रूप से उभारने का प्रयास किया है। डॉ जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल के अनुसार–..."हरिकृष्ण प्रेमी ने 'रक्षाबन्धन', 'शिवा–साधना', 'प्रतिशोध', 'स्वप्न भंग', 'आहुति' में सांस्कृतिक एकता का प्रतिपादन किया है। और उसी के आधार पर राष्ट्रीय एकता की कल्पना की गयी है। सेठ गोविन्द दास के 'शेरशाह' और 'कुलीनता' सांस्कृतिक नाटक हैं, जिनमें ऐतिहासिक राष्ट्रीय धारा बहुत उभर कर आयी है।"[5]

सेठ गोविन्द दास पर भी हरिकृष्ण प्रेमी की तरह ही गॉधीवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता हैं, वे अपने अधिकांश नाटकों में समस्याओं को सामाजिक

1. गोविन्द दास एक सफल साहित्य सृष्टा (भारतीय नाट्य साहित्य) गिरजादत्त शुक्ल गिरीश : पृ0–333
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली : पृ0–527
3. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ0–673
4. सेठ गोविन्द दास एक सफल सृष्टा : गिरजादत्त शुक्ल गिरीश, पृ0–333
5. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ0–673

धरातल पर सरल और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करके उसके समाधान का प्रयत्न सुधारवादी आदर्शवाद से करते हैं। सेठ गोविन्ददास विशिष्ट प्रतिभा के धनी साहित्यकार थे यह बात निर्विवाद है; उन्होंने भी युग की समस्याओं को लेकर नाटकों का सृजन किया। महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व से वे भी बहुत अधिक प्रभावित थे। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इस बात को तो सिद्ध कर ही रहा है कि प्रेमी जी के ऊपर महात्मागाँधी का प्रभाव किस सीमा तक पड़ा पर यह भी स्पष्ट है कि सेठ गोविन्द दास जी पर भी महात्मागाँधी के व्यक्तित्व का चमत्कारी प्रभाव पड़ा था, इतना अधिक कि उन्होंने अपने सौवें नाटक का विषय ही महात्मागाँधी के जीवन को बनाया। अधिकांश समीक्षको ने सेठ गोविन्द दास को एक सफल नाटककार के रूप में मान्यता प्रदान की है। जबकि एक समीक्षक डॉ विमला कुमारी मुंशी सेठ गोविन्द दास को श्रेणी के अनुसार तृतीय श्रेणी का नाटककार मानती हैं, और प्रेमी जी को उनसे उत्कृष्ट कोटि का साहित्यकार सिद्ध करती हुई लिखती है– "...सेठ जी अपने नाटकों में कला सम्बन्धी कोई ऐसी वस्तु न दे सके जिसे नाटक साहित्य में महत्वपूर्ण देने का नाम से स्मरण किया जा सके न ही वे कोई गौरवपूर्ण और प्रसन्न निर्माण ही कर सके। प्रेमी जी का स्थान सेठ जी से बहुत ऊपर है।"[1]

सम्भवतः तुलनात्मक दृष्टि से प्रेमी जी का स्थान सेठ गोविन्द दास से ऊपर सिद्ध किया जा सके क्योंकि सेठ गोविन्द दास नें संख्या की दृष्टि से अधिक कृतियों का सृजन किया है। ऐसी स्थिति में किसी कृति के साथ पूर्ण न्याय न हो सकना आश्चर्य की बात नहीं। इसीलिए कलात्मक दृष्टि से वे प्रेमी जी से कम श्रेणी वाले नाटककार सिद्ध हो सकते हैं किन्तु जहॉ तक नाट्य–विधा को लोकप्रिय बनाने का प्रश्न है, उसमें सेठ गोविन्द दास का नाम महत्वपूर्ण है।

2. विष्णु प्रभाकर:–

विष्णु प्रभाकर एक ऐसे साहित्यकार हैं जो प्रेमी जी के समकालीन होकर अद्यतन सृजनरत हैं, उन्होंने अपनी लेखनी गद्य की अनेक विधाओं में चलाई है। शरद चन्द्र की जीवनी, आवारा मसीहा से औपन्यासिक जीवनीकार के रूप में उनकी एक विशिष्ट पहचान है। कथा साहित्य और उपन्यास साहित्य में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान है। समसामयिक नाटक और एकांकी को चिंतन मनन की वैचारिक सम्पदा से समृद्ध बनाने में उनका योगदान उल्लेखनीय है।

डॉ0 गोविन्द चातक का उनके सन्दर्भ में यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है– "भारतेन्दु ने हिन्दी नाटक को युग–बोध के साथ जोड़ा, प्रसाद ने उसे एक विशिष्ट मानवीय धरातल प्रदान किया। प्रसाद के नाटकों ने इतिहास में मानव ईहा, उसके

1. हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व–डॉ विमला कुमारी मुंशी, पृ0–182

घात प्रतिघात तथा अन्तर्मन की कोमल कटु झाँकियाँ प्रस्तुत करने में अपूर्व भूमिका निभाई। किन्तु छायावाद के अन्त के भी साथ नये आयामों की खोज की जो आकुलता काव्य के क्षेत्र में उभरी वह नाटक के लिए अनजानी अनचीन्हीं न रही। नाटक के सामने एक जवलन्त प्रश्न था ...समसामयिक भाव–बोध और रंग धर्मिता का ऐसे ही समय पर जगदीश चन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ अश्क, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट आदि ने हिन्दी नाटक को नई दिशा देने में महत्वपूर्ण कार्य किया। विष्णु प्रभाकर (जन्म 1912) का नाम भी इन्ही लोगों के साथ लिया जा सकता है।"[1]

यद्यपि विष्णु प्रभाकर नाट्यरचना की ओर बहुत बाद में प्रवृत्त हुए, किन्तु उस क्षेत्र में उन्होंने पर्याप्त सफलता अर्जित की। विषय और शिल्प की दृष्टि से वे कई बातों में श्री हरिकृष्ण प्रेमी के अत्यन्त निकट जान पड़ते हैं। प्रेमी जी भाँति ही भाषा की सरलता उनके नाटकों में दृष्टि गोचर होती है, जिस प्रकार प्रेमी जी महात्मागाँधी की विचार धारा से अत्यन्त प्रभावित रहे उसी प्रकार विष्णु प्रभाकर के साहित्य पर भी महात्मागाँधी की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। इस सन्दर्भ में गोविन्द चातक का यह कथन दृष्टव्य है– "...विष्णु प्रभाकर का कृतित्व उनके व्यक्तित्व की भाँति ही विशिष्ट कोटि का है। वे एक ओर साहित्य में यथार्थवादी दृष्टि कोण लेकर आये दूसरे ओर उनमें गाँधीवादी मान्यताओं के कारण उच्च जीवन मूल्यों और जीवन की आदर्श स्थितियों के प्रति एक उदार आग्रह दिखाई देता है। इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण एक ओर वे शरद से आकृष्ट हुए, दूसरी ओर प्रेमचन्द से ... शरद् और प्रेमचन्द उनके मानसिक संसार के सृजक कहे जा सकते हैं, किन्तु गाँधी की मानवतावादी दृष्टि ने ही उनका साहित्यिक संस्कार किया है।"[2]

गाँधीवादी मानवतावाद का प्रभाव उनके प्रत्येक नाट्यकृति में देखा जा सकता है। प्रायः उनके नाटकों के मूल में भौतिक सभ्यता की विसंगतियों से टूटते हुए परिवारों का चित्रण है, किन्तु उसके साथ–साथ एक नैतिकता बोध, आदर्श की परिकल्पना उनकी प्रत्येक कृति में विद्यमांन रहती है और यह आदर्श या नैतिकता उन्होंने गाँधीवाद से ही ग्रहण की है। उनके नाटकों में इस बात की पीड़ा देखी जा सकती है कि आज के युग में गाँधी जी को विस्मृत किया जा रहा है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि विष्णु प्रभाकर आधुनिक युग के एक सशक्त नाटककार हैं और उनकी नाट्यकृतियों में परोक्ष रूप से हरिकृष्ण प्रेमी का प्रभाव दृष्टि गोचर होता है।

---

1. टूटते परिवेश (विष्णु प्रभाकर) की भूमिका : गोविन्द चातक
2. टूटते परिवेश (विष्णु प्रभाकर) की भूमिका : गोविन्द चातक

3. उदयशंकर भट्ट:–

पं० उदय शंकर भट्ट ऐसे प्रतिभाशाली नाटककार हैं, जिन्होंने अनेक पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों का सृजन किया है। यद्यपि भट्ट जी की प्रतिभा और कल्पना का प्रतिफलन कविता, नाटक, उपन्यास आदि साहित्य की अनेक विधाओं में हुआ तथापि नाटक कार के रूप में वे जितने प्रसिद्ध हैं, उतने उपन्यासकार अपना कवि के रूप में नहीं है।[1]

भट्ट जी की कला का पूर्ण विकास पौराणिक नाटकों में दिखाई पड़ता है। पौराणिक क्षेत्र के भीतर से वे ऐसे पात्र ढूँढ़ कर लाये हैं, जिनके चारों ओर जीवन की रहस्यमयी विषमतायें बड़ी गहरी छाया डालती हुई आती हैं – ऐसी विषमतायें जो वर्तमान समाज को भी क्षुब्ध करती रहती है।[2]

शुक्ल जी के कथन से स्पष्ट है कि भट्ट जी ने नाटकों के कथानक भले ही पुराणों से उठाये हैं, किन्तु उनकी समस्या आधुनिक है। वर्तमान समाज के बन्ध और संघर्षो का चित्रण वे पौराणिक आख्यानों या ऐतिहासिक घटनाओं के द्वारा करते है। उदाहरण के लिए वर्तमान समाज की विसंगति है नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की समस्या।

'अम्बा' नामक नाटक में इस समस्या को पौराणिक संदर्भ में उभारा गया है। इसमें भीष्म, शान्तनु और शाल्भ उसी चिरन्तन पौरूषत्व दंभ के प्रतीक हैं, जो नारी को पुरूष की उपभोग्या मात्र मानता है। उधर अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका और सत्यवती उन प्रपीड़ित नारियों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो नारी को अधिकृत वस्तु समझे जाने का विरोध करती है। अम्बिका तीक्ष्ण शब्दों में कहती है–"यही तो समाज की मर्यादा है। असमर्थ रोगी पुरूष के विवाह के लिए एक नहीं तीन–तीन कन्याओं को हर लाना स्त्रीत्व समाज और मनुष्यता की हत्या नही तो और क्या है? हमारे अधिकार किसने छीन लिए, समाज ने ही तो, मैं तो कहती हूँ कि हम सदा से मनुष्य की इच्छाओं की दासी हैं। पुरूष के प्रति आज नारी का स्वर भी ऐसा ही तीखा है।[3] इसी प्रकार की अन्य अनेक वर्तमान काल की समस्याएँ भट्ट जी के पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों में उभरी है। उन्होंने अतीत का चित्रण वर्तमान की विसंगतियों को उभारने के लिए किया है। डॉ० वि० ना० भट्ट के शब्दों में–"क्या पौराणिक और क्या ऐतिहासिक नाटकों में भट्ट जी को अतीत मात्र अतीत के लिए प्रिय नही है। अपने पात्रों को नूतन भावनाओं और वाणी से मुखर बना कर लेखक ने उनकी विषमताओं में अतिशय आत्मीयता और आधुनिकता समाहित कर दी है फलतः एक ओर तो पात्रों का

1. नाटककार उदयशंकर भट्ट (भारतीय नाट्य साहित्य) डॉ० विष्णु नाथ भट्ट, पृ०–343
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ०–556
3. नाटककार उदयशंकर भट्ट (भारतीय नाट्य साहित्य) डॉ० विष्णु नाथ भट्ट, पृ०–345

स्वभावगत अभिजात्य अक्षुण्ण बना रहा दूसरी ओर पिछले युग की राष्ट्रीय और नैतिक चेतना के निकट ही आ गये है। उनके नाटक कथा वस्तु में प्राचीन होते हुए भी अपनी अभिव्यक्ति में अर्वाचीन हैं।"[1]

"प्रेमी" जी के नाटकों का भी यही वैशिष्ट्य है कि उन्होंने कथानक इतिहास या पुराण से चुने हैं जबकि समस्यायें आधुनिक हैं, किन्तु "प्रमी"जी के पास जो शिल्प कौशल है, वह भट्ट जी के पास नहीं है। डॉ0 जयनाथ नलिन के विचार से–"भट्ट जी की नाटक रचना के पीछे न तो तीक्ष्ण नाटकीय प्रतिभा की सशक्त प्रेरणा ही है और न किसी विशेष अवस्था और जीवन दर्शन का अनुरोध ...प्रसाद और प्रेमी में इन दोनों का समावेश है। ...उनके प्रारम्भिक नाटक कला और टैक्नीक की दृष्टि से अत्यंन्त असफल रहे।"[2]

4. उपेन्द्र नाथ "अश्क":–

"अश्क" जी आधुनिक हिन्दी के नाटककारों में अग्रगण्य है। उनके अधिकांश नाटक सामाजिक ही है। उनका एक ही नाटक ऐतिहासिक है। अश्क जी भी प्रेमी जी तथा अन्य नाटककारों की भॉति हिन्दी नाटकों के विकास क्रम के उस पीढ़ी के नाटककार हैं, जिसे नाटक के विकास का तृतीय उत्थान काल या प्रासादोत्तर काल कहा ज़ाता है। इस काल के अधिकांश नाटककारों ने काफी संख्या में ऐतिहासिक नाटक लिखे किन्तु अश्क इस क्रम के प्रथम प्रहर की अतीतवादी राष्ट्रीय नैतिकता के आदर्शवादी प्रभाव से कम प्रभावित हुए और उन्होंने इसीलिए केवल अपना पहला और अन्तिम नाटक ऐतिहासिक लिखा।[3]

अश्क जी का प्रथम नाटक 'जय पराजय' है जो उनका एक मात्र ऐतिहासिक नाटक है। इस नाटक में मध्ययुग के ऐतिहासिक कथा वस्तु को आधार बना कर राष्ट्रीय नैतिकता की भावना को उभारा है। वस्तुतः यह नाटक प्रसादोत्तर काल कला की दृष्टि से संस्कृत रचना शैली की रूढ़ियों से और कथावस्तु की दृष्टि से शनैः–शनैः पुराण और इतिहास और अतीतोन्मुखता से मुक्ति का काल है। उस युग मे राष्ट्रीयता और देश भक्ति की भावना ने नाटकों में ऐतिहासिक कथावस्तु को संजोकर रखा केवल अन्तर इतना है कि प्रसाद के नाटकों और प्रसाद कालीन दूसरे नाटकों में कथावस्तु का चयन भारतीय इतिहास के प्राचीन काल से किया गया है, और प्रसादोत्तर कालीन नाटकों में इतिहास के मध्य युग से मध्ययुगीन सामन्ती

1. नाटककार उदयशंकर भट्ट (भारतीय नाट्य साहित्य) डॉ0 विष्णु नाथ भट्ट, पृ0–344
2. हिन्दी नाटककार : डॉ0 जयनाथ नलिन, पृ0–175
3. भारतेन्दु से अश्क तक (हिन्दी नाटक और रंगमंच–पहचान और परख, सम्पादक इन्द्रनाथ मदान) : गोपाल कृष्ण कौल, पृ0–64

वातावरण में अपने समय की देश–भक्ति की राष्ट्रीय भावना को प्रतिविम्बित करने का प्रयत्न किया गया है। परम्परागत राष्ट्रीय नैतिकता के अनेक मूल रूपों को इस समय के नाटकीय पात्रों के कार्यव्यापार और सम्वादों में प्रत्यक्ष विकसित किया गया है। हिन्दू मुस्लिम एकता की भावना को लेकर हरिकृष्ण "प्रेमी" ने 'शिवासाधना', 'रक्षाबन्धन' और 'स्वप्नभंग' आदि नाटकों में लिखा, उग्रस्वाधीनता की जातीय भावना को लेकर मिलिन्द ने 'प्रताप–प्रतिज्ञा' स्वामिभक्ति की भावना से गोविन्द बल्लभ पंत ने 'कुलीनता' और उदय शंकर भट्ट ने 'दाहर' और राजपूतों के हठ और सामंती प्रजा प्रेम की भावना को लेकर अश्क ने जय–पराजय आदि नाटकों की रचना की।[1]

जय–पराजय के अतिरिक्त अश्क जी ने अनेक सामाजिक नाटक लिखे 'स्वर्ग की झलक', 'छठा बेटा', 'कैद', 'उड़ान', इत्यादि उनके सामाजिक नाटक हैं, जिनमें उन्होंने वर्तमान जीवन की समस्याओं को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है। अश्क जी ने एकांकी शिल्प में अनेक प्रयोग किये और उसे विकसित भी किया। उन्हें रंग–मंच के तकनीक की अच्छी जानकारी थी, उनके अनेक नाटक रेडियो से भी प्रसारित हुए। डॉ0 विमला कुमारी मुंशी के शब्दों में– "उपेन्द्रनाथ अश्क को मैं प्रथम कोटि का नाटककार मानती हूँ। उनके नाटकों में कला के विकसित रूप के दर्शन होते है। 'जय–पराजय', 'उड़ान', 'छठा बेटा', 'तूफान से पहले' आदि उत्तम कोटि के नाटक हैं, जिनमें व्यक्ति तथा समाज की अनेकानेक समस्याओं का विवेचन है। अश्क जी प्रथम श्रेणी के नाटककार होते हुए भी प्रभाव तथा साहित्यक कलेवर की दृष्टि से प्रसाद तथा प्रेमी के बाद आते है।"[2]

5. गोविन्द बल्लभ पंतः–

गोविन्द बल्लभ पंत हिन्दी के उन प्रबुद्ध नाटककारों में थे, जिन्होंने नाट्य लेखन में किसी अन्य परम्परा को न अपना कर अपनी स्वतंत्र नाट्यकला को अपने चिन्तन मनन एवं युगीन परिस्थितियों के अध्ययन अवलोकन के आधार पर जन्म दिया।[3] उन्होंने अनेक सामाजिक एवं ऐतिहासिक नाटकों की रचना की उनके 'राजमुकुट' तथा 'अन्तःपुर का छिद्र' आदि प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक है। उनके ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा के सम्बन्ध में डॉ0 जय किशन खण्डेलवाल ने डॉ0 राणवीर उपाध्याय के मत को उद्धत किया है। डॉ0 उपाध्याय का अभिमत महत्वपूर्ण है।

1. भारतंन्दु से अश्क तक (हिन्दी नाटक और रंग–मंच : पहचान और परख सम्पादक : इन्द्रनाथ मदान) : गोपाल कृष्ण कौल, पृ0–62–63
2. हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व– डॉ0 विमला कुमारी मुंशी, पृ0–183
3. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ0–674

उनके अनुसार– "प्रसाद के अनन्तर उसी प्रकार की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना की निरूपण प्रवृत्ति हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द बल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट, चन्द्रगुप्त, विद्यालंकार आदि लेखकों के ऐतिहासिक नाटकों में पायी जाती है, किन्तु इन नाटककारों में न प्रसाद का सा इतिहास विषयक गम्भीर अध्ययन–मनन ही पाया जाता है और न प्रसाद की जैसी महान प्रतिभा ही दृष्टिगत होती है, फिर भी इन सभी नाटककारो का हिन्दी नाट्य साहित्य में विशिष्ट स्थान है और उनकी कृतियों से हिन्दी नाट्य साहित्य समृद्ध और सम्पन्न हुआ है।"[1] स्पष्ट है कि श्री गोविन्द बल्लभ पंत भी हरिकृष्ण प्रेमी की भॉति महत्त्वपूर्ण नाटककार है और उन्होंने भी ऐतिहासिक नाटकों का सृजन किया है। उनके ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास के साथ कल्पना का समन्वय है और साहित्यिक तथा जन नाट्य परम्परा का भी समन्वय मिलता है।[2]

पंत जी ने सामाजिक नाटकों का सृजन भी किया है– 'अंगूर की बेटी', 'सिन्दूर की बिन्दी', 'अधूरी मूर्ति' आदि उनके सामाजिक नाटक है। उनके नाटकों मे सर्वत्र समाज–सुधार की भावना परिलक्षित होती है। उनका 'अधूरी मूर्ति' नाटक एक ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें साम्प्रदायिक सद्भाव का निरूपण है। यह नाटक अत्यन्त मार्मिक ढंग से एकता का सन्देश देता है। इस प्रकार उनके नाटक भी हरिकृष्ण प्रेमी जी की भॉति ही समाज–सुधार, नैतिकता, साम्प्रदायिक सद्भाव इत्यादि का सन्देश देते हुए गॉधीवादी विचारधारा का समर्थन करते है। कलात्मक दृष्टि से भी उनके नाटक सफल कहे जाते है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार– "गोविन्द बल्लभ पंत के नाटक बहुत लोकप्रिय हुए ...उनके नाटकों में नाटकीय गुण प्रचुर मात्रा में मिलते है।"[3]

डॉ0 विमला कुमारी मुशी ने पंत जी की नाट्यकला को रेखांकित करते हुए लिखा है– "श्री गोविन्द बल्लभ पंत हिन्दी के प्रतिभाशाली नाटककार है, उनके नाटक लेखन की प्रेरणा है। कला का अनुरोध या नाटक निर्माण कामना का आग्रह ... घटनाओं को नाटकीयता प्रदान करने में पंत जी अतिकुशल थे। पंत जी में जीवन की विभिन्नताओं को नाटकीय रूप देने की अद्भुत क्षमता की वे प्रथम कोटि के नाटककार है तथा प्रेमी जी के समकक्ष श्रेणी के अधिकारी है।"[4]

---

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ0–682
2. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियॉ : डॉ0 जय किशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ0– 674
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली–3 : पृ0–527
4. हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व–डॉ0 विमला कुमारी मुंशी, पृ0–182

अष्टम् अध्याय

उपसंहार

अष्टम अध्याय

उपसंहार

महात्मा गाँधी एक विलक्षण व्यक्तित्व थे, अपने आचरण और व्यवहार से उन्होंने भारतीय समाज का ऐसे समय में मार्गदर्शन किया जब समाज दासता के बंधनो मे जकड़ा हुआ था। यद्यपि राजनीति का क्षेत्र संत–महिलाओं के लिए नहीं होता पर गाँधी जी इसके अपवाद थे। संत होकर उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में शुचिता और सत्य जैसे उदात्त मानवीय मूल्यों को स्थापित किया। उन्हें महात्मा और राष्ट्रपिता जैसे विशेषणों से विभूषित किया गया। महात्मा गाँधी जन–जन के लोकप्रिय थे। उनके एक आह्वान पर सारा हिन्दुस्तान उनके पीछे चल पड़ता था। दुनिया के लोगों ने उनके अन्दर एक विशिष्ट तेज के दर्शन किए। भारतीय ही नहीं अनेक विदेशी भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके शिष्य बने और भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई में उनके सहयोगी बने।

महात्मा गाँधी ने रामराज्य की परिकल्पना की वे राजनीति में सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता जैसे मानवीय मूल्यों का प्रयोग करके एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जो आदर्श समाज हो जिसमें समाज के अंतिम व्यक्ति तक को सुख–सुविधाओं की प्राप्ति हो सके। अपने सपने के समाज को स्थापित करने के लिए गाँधी जी ने कुछ सिद्धान्त भी दिए और स्वयं ही उन सिद्धान्तों पर चल कर उनकी सत्यता भी सिद्ध की। गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित सिद्वान्तों को ही गाँधीवाद के नाम से जाना गया। यद्यपि स्वयं गाँधी जी इस प्रकार के किसी वाद को नहीं मानते थे उन्होंने लिखा भी है– "गाँधीवाद जैसी कोई वस्तु है ही नहीं और मुझे अपने पीछे कोई सम्प्रदाय छोड़कर नहीं जाना है। मैने कोई नया तत्व या सिद्धान्त खोज निकाला है ऐसा दावा नहीं है,मैने शाश्वत सत्यों को अपने नित्य के जीवन और प्रश्नों से सम्बन्द्ध करने का प्रयास अपने ढंग से किया है। सत्य और अंहिसा अनादि काल से चले आ रहे है, मैनें केवल यथासम्भव इसके प्रयोग किये है। आप लोग इसे गाँधीवाद न कहें,इसमे वाद जैसा कुछ भी नहीं हैं।"[1]

यद्यपि स्वयं गाँधी जी ने गाँधीवाद जैसे वाद का खण्डन किया, पर लोगों ने उनके सिद्धान्तों में एक नवीनता के दर्शन किए और उसे गाँधीवाद का नाम दिया। विख्यात अमेरिकन लेखिका पर्लवर ने कहा– "आज के विक्षुब्ध और सशक्त संसार में गाँधी जी के जीवन काल में ही उनके नाम से एक व्यक्तिं का बोध न होकर·

1. हरिजन बंधु : 29.3.39

जीवन के एक प्रकार का बोध होता है।"[1] वस्तुतः जीवन के इस प्रकार को या जीवन संचालित करने वाली इस शैली को ही गाँधीवाद कहा गया। गाँधीवाद ने सम्पूर्ण जन मानस पर व्यापक प्रभाव डाला। उनके इस प्रभाव को स्वीकारते हुए डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने गाँधी जी की मृत्यु के पश्चात् कहा था– "गाँधी जी ने शरीर त्याग दिया किन्तु उनकी अमर आत्मा उस कार्य को निरंतर कर रही है। जिसमें वे जीवन भर लगे रहे। वह समय अवश्य आता जब सारा उस कार्य को निरंतर कर रही है, जिसमें वे जीवन भर लगे रहे। वह समय अवश्य आता जब सारा संसार उनकी आबाज को सुनता और उनके सत्य एवम् अहिंसा के सिद्धान्तों को समझने के लिए आकर्षित होता, किन्तु संभवतः भगवान की यह इच्छा थी कि उनकी आबाज हम तक केवल आत्मा द्वारा आत्मा को पहुँचे। आत्मा–आत्मा को पुकार रही है, यद्यपि गाँधी जी का देहावसान हो गया है फिर भी वे संसार में पुनर्जीवन फूकने के पवित्र कार्य में संलग्न हैं।"[2]

विश्व ने जिसे गाँधीवाद कहा वह अनेक प्राचीन एवम् अर्वाचीन नैतिक मूल्यों का सार तत्व है। उसमें हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, जैन व सभी के धर्म–सिद्धान्तों के मूल तत्व सम्मिलित हैं। उन्होंने प्राचीन काल से चले आ रहे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, करुणा जैसे सिद्धान्तों को अपनाकर एक नवीन मार्ग प्रतिपादित किया। वे हृदय परिवर्तन में विश्वास रखते थे और इसके लिए उपवास, धरना, असहयोग सविनय अवज्ञा जैसे अस्त्रों का प्रयोग करते थे, उनके इन प्रयोगों ने ब्रिटिश साम्राज्य की नीव हिला दी। हिंसा के विरुद्ध उनकी अहिंसात्मक लड़ाई अत्यन्त सफल रही। गाँधीजी के इन्हीं अभिनय व प्रयोगों ने उन्हें जीते जी एक चमत्कारी पुरुष बना दिया और अनेक लोग उनके पीछे चल पड़े। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र को आन्दोलित किया। साहित्य पर भी महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व तथा उनके सिद्धान्तों का यथेष्ट प्रभाव पड़ा; उन्हें केन्द्र बनाकर अनेक खण्ड काव्यों, महाकाव्यों और स्फुट साहित्य की रचना की। उनके समकालीन अधिकांश साहित्यकार उनके व्यक्तित्व से अछूते न रह सके, गद्य और पद्य दोनों ही विधाओ के साहित्यकारों ने उनके प्रभाव से अनेक रचनाएँ लिखीं यही कारण है उनके समकालीन साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गाँधीवाद का प्रभाव अवश्य दृष्टिगोचर होता है।

गाँधीवादी साहित्य लेखन की परम्परा में अनेक साहित्यकारों का नामोल्लेख किया जाता है। कविता के क्षेत्र में सर्वश्री मैथिली शरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सुमित्रानंदन पंत, माखन लाल चतुर्वेदी, सोहन लाल द्विवेदी, रघुवीर शरण मित्र, गोकुलचंद शर्मा इत्यादि अनेक कवि है जिनकी कविताएं

---

1. आधुनिक राजनीतिक चिन्तन : हरिदत वेदालंकार, पृष्ठ–635
2. आधुनिक राजनीतिक चिन्तन : हरिदत वेदालंकार, पृष्ठ–635

गाँधी और गाँधीवादी दर्शन से आच्छादित है। कथा लेखन को भी गाँधीजी ने प्रभावित किया, मुंशी प्रेमचंद अपने बाद के समय में अवश्य मार्क्सवाद से प्रभावित हो गए किंतु प्रारम्भिक दौर में वे विशुद्ध गाँधीवादी थे। उनका अधिकांश कथा–साहित्य गाँधीवादी सुधारवादी भावना से ओतप्रोत है। कथाकार जैनेन्द्र कुमार तो घोषित गाँधीवादी रहे। उन्होंने अत्यन्त कलात्मक कौशल के साथ गाँधीवादी सिद्धान्तों को अपने कथा साहित्य में पिरो दिया। उनके अधिकांश कथा साहित्य में सत्य, अहिंसा, और आत्मपीड़न द्वारा हृदय परिवर्तन के स्वर सुनाई पड़ते है। नाटकों के क्षेत्र में भी गाँधीवाद का प्रभाव पर्याप्त रूप से दृष्टिगोचर होता है। सेठ गोविन्द दास, विष्णु प्रभाकर, उदय शंकर भट्ट, उपेन्द्र नाथ अश्क, गोविंद बल्लभ पंत इत्यादि के नाटकों में प्रत्यक्ष एवम् परोक्ष रूप से गाँधीवाद का प्रभाव देखने को मिलता है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी भी इसके अपवाद नही है उनके नाटक भी गाँधीवादी भावना से परिपूर्ण है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी का जन्म (सन् 1908) तब हुआ जब देश पराधीनता की श्रृंखलाओं में जकड़ा हुआ था, और महात्मा गाँधी उसकी मुक्ति के लिए किसी देवदूत के समान लोगों के अंदर स्वतंत्रता की चेतना का संचार कर रहे थे। तत्कालीन समाज गाँधी जी के विचार दर्शन से प्रेरणा ग्रहण करके रूढ़ियों से मुक्त होकर एक नवीन पथ पर अग्रसर हो रहा था। गाँधी जी केवल राजनीतिक आन्दोलन में ही सक्रिय नहीं थे अपितु वे हिन्दू समाज के पुनरुद्धार के लिए भी सचेष्ट थे। उन्हीं के प्रयासों के परिणामस्वरूप समाज में जाति प्रथा, छुआछूत, बाल–विवाह, नारी शोषण, मद्यपान जैसी कुरीतियों के विरोध में जनमानस सक्रिय था और समाज से इन कुरीतियों को दूर करने के लिए कटिबद्ध था। धार्मिक क्षेत्र में पाखण्ड और साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करके गाँधी जी एक ऐसे धर्म के प्रतिपादन का प्रयास कर रहे थे जहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख, ईसाई इत्यादि सम्प्रदायों में कोई भेद न रहे। स्पष्ट है गाँधी जी अपने युग के ऐसे महापुरुष थे जो समग्र परिवर्तन की दिशा में प्रयासरत थे। जिन दिनों गाँधी जी अपने इन प्रयासों को मूर्तरूप देने का प्रयास कर रहे थे उन्हीं दिनों प्रेमी जी किशोरवय समाप्त करके युवावस्था में प्रवेश कर रहे थे।

प्रेमी जी का पारिवारिक वातावरण भी राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण था। प्रेमी जी की माँ का स्वर्गवास तब हो गया था जब वे केवल दो वर्ष के शिशु थे, माँ के अभाव ने उन्हें अत्यन्त भावुक एवं अर्न्तमुखी बना दिया था तथा वे किशोरवय से ही काव्य के प्रति उन्मुख हो गए थे, दूसरी ओर परिवार के राष्ट्रीय वातावरण ने उनके अन्दर राष्ट्रीयता के भाव प्रवल कर दिए। उनके अग्रज श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय काँग्रेस के कर्मठ कार्यकर्ता थे। वे स्वयं भी कवि थे, कवि एवं राष्ट्रवादी होने के कारण उन्होंने अनुज श्री हरिकृष्ण को भी इसी ओर प्रेरित किया। इस प्रकार प्रेमी जी को बाल्यावस्था से ही राष्ट्रीय विचारधारा और साहित्यिक प्रेम का प्रशिक्षण पारिवारिक परिवेश में उपलब्ध हुआ। तत्युगीन साहित्य भी गाँधीवादी विचारधारा से ओतप्रोत था।

श्री प्रेमी जी पर युग की इन प्रवृत्तियों का प्रभाव पड़ा। उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में हरिभाऊ उपाध्याय पं0 माखनलाल चतुर्वेदी तथा पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि साहित्यकारों से प्रभाव ग्रहण किया। यह सब साहित्यकार किसी न किसी रूप में गाँधीवाद से प्रभावित थे। प्रेमी जी पर भी यह प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था, उन्होंने अपनी प्रथम रचना– स्वर्णविहान गाँधीजी के सिद्धान्तों के अनुरूप ही लिखी परिणामस्वरूप अंग्रेजी सरकार ने इसे जब्त कर लिया।

प्रेमी जी ने साहित्य में तो गाँधीवादी सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया ही वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में भी उनका अनुकरण किया। सन् 1927–28 में प्रेमी जी हरिभाऊ उपाध्याय के आमंत्रण पर अजमेर आ गए और वहाँ त्यागभूमि नामक पत्रिका के सहायक सम्पादक हो गए। इस काल में प्रेमी जी को अनेक नवीन अनुभूतियाँ हुई जिससे उनकी राष्ट्रीय भावना और प्रबल हो गई। उन पर गाँधीवाद का जो प्रभाव इस अन्तराल में पड़ा वह आजीवन अमिट और अक्षुण्ण रहा। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेना प्रारम्भ किया और सन् 1930 में राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्होंने जेल यात्रा भी की, अंग्रेजी सरकार द्वारा त्यागभूमि पत्रिका जब्त कर ली गई। उसके पश्चात् सन् 1942 के आन्दोलन में भी उन्होंने जेल यात्रा की। उनका सम्पूर्ण जीवन अनेक प्रकार के अभावो एवम् कष्टों से परिपूर्ण रहा, पर वे त्याग की वृत्ति के साथ सहज रूप से सब कुछ स्वीकार करते रहे। सम्भवतः यह सब उनके ऊपर महात्मा गाँधी के प्रभाव का ही परिणाम था।

प्रेमी जी एक प्रतिभा सम्पन्न नाटककार थे। उनका देहावसान सन् 1974 में हुआ, वे जीवन पर्यनत सृजनरत रहे। आजादी मिलने के बाद भी उनकी रचनाओं में राष्ट्र निर्माण के स्वर प्रमुखता से उभर कर आते रहे। गाँधीवाद इनका जीवन दर्शन था जो उनकी प्रत्येक कृति में परिलक्षित होता रहा। उन्होंने उन्नीस ऐतिहासिक नाटक, एक पौराणिक नाटक, तीन सामाजिक नाटक, एक गीत नाटिका, पाँच संगीत नाटिकाएँ, बारह एकांकी नाटक तथ कुछ संस्मरणात्मक निबंधों का सृजन किया। उनकी प्रत्येक कृति कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित दिखाई देती है। गाँधीवादी विचार दर्शन के मूल तत्व–सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, हृदय परिवर्तन, पश्चाताप सभी अत्यन्त प्रमुखता से उभर कर सामने आए है। उनकी प्रथम गीत नाटिका–स्वर्ण विहान को अंग्रेजी सरकार ने जब्त कर लिया था। वह नाटिका असहयोग की भावना से परिपूर्ण है। इसमे एक अत्याचारी राजा के शासन से मुक्ति के लिए एक सन्यासी जनता से आवाह्न करता है कि जनता उस क्रूर राजा के शासन से मुक्ति के लिए उसका असहयोग करे और उसकी जेले भर दे। स्पष्ट है कि यह संन्यासी और कोई नहीं स्वयं महात्मा गाँधी है तथा राजा ब्रिटिश शासक है। यहाँ तो प्रेमी जी ने प्रत्यक्षतः असहयोग की बात की है। कुछ अन्य ऐतिहासिक नाटकों यथा– संवत–प्रवर्तन, विदा, कीर्ति स्तम्भ, आन का मान,

रक्षा बन्धन इत्यादि नाटकों में वे प्रतीकों में परोक्षरूप से असहयोग की बात करते है। केवल असहयोग ही नही, सत्य, अहिंसा, हृदय परिवर्तन, पश्चाताप का भी प्रेमी जी ने अपने नाटकों में विशद चित्रण किया है। प्रेमी जी के अधिकाश नाटक ऐतिहासिक है। उन्होंने इतिहास में से भी ऐसे प्रयासों और ऐसे चरित्र नायको को अपने नाटकों के लिए चुना है जिनके माध्यम से वे गाँधी जी के सिद्धान्तों को परोक्ष रूप से प्रतिपादित कर सके।

महात्मा गाँधी एक राजनैतिक व्यक्तित्व ही नही थे अपितु वे एक आध्यात्मिक पुरुष भी थे। उनके सिद्धान्तों के पुनर्जन्म में विश्वास, अलौकिक सत्ता में आस्था, कर्मफल के सिद्धान्त में विश्वास, ईश्वर की सत्ता को सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी मानना आदि भी सम्मिलित है। प्रेमी जी ने गाँधी जी के इन आध्यात्मिक सिद्धान्तों कों भी अपने नाटकों में प्रत्यक्ष एवम् परोक्षरूप में स्वर दिए है। महात्मा गाँधी एक ही ईश्वर को मानते थे। उनकी प्रार्थना में कहा जाता था –'ईश्वर अल्ला तेरो नाम सबको सन्मति दे भगवान'। प्रेमी जी ने भी अपने नाटको में इसी एकेश्वरवाद का समर्थन किया है। यद्यपि उन्होंने अपने नाटकों में उस सत्ता को अलग–अलग नामों से अभिहित किया है–यथा एक्र लिंग, विश्वनियंता, भगवान, विधाता, चैतन्य, खुदा, परवरदिगार, अल्लाहताला, महाकाल, भवानी आदि फिर भी वे एकेश्वरवाद के समर्थक रहे उनके अलग–अलग नाटकों के अनेक पात्र इस बात को स्वीकारते है कि ईश्वर एंक है। विदा नाटक में जेबुन्निसा कहती है– 'मनुष्य को केवल एक खुदा को ही मानना चाहिए और किसी देवी देवता पर विश्वास नहीं करना चाहिए।'[1] स्वप्न भंग नाटक में दारा कहता है– 'यह दुनिया और इस दुनिया में सब कुछ नहीं है।'[2] आहुति नाटक में मीर गभरू कहता है– 'दुनिया में सिर्फ एक माँ है और वह है खुदा।'[3] इसी प्रकार कीर्तिस्तम्भ, शिवासाधना, शतरंज के खिलाड़ी, भग्न प्राचीर, प्रतिशोध, शीशदान, छाया, आन का मान, शपथ, भाई–भाई, रक्षाबंधन, संवत प्रवर्तन इत्यादि समस्त नाटकों में एकेश्वरवाद का समर्थन तो मिलता ही है साथ ही गाँधी जी के अन्य आध्यात्मिक सिद्धान्त यथा पुनर्जन्म में विश्वास, अलौकिक सत्ता में आस्था, ईश्वर के सर्वशक्तिमान स्वरूप का उल्लेख तथा कर्मफल के सिद्धान्त में विश्वास की भावनाएँ अनेक रूपों में प्रकट हुई हैं।

वस्तुतः प्रेमी जी अपने साहित्य के माध्यम से एक ऐसे राष्ट्र निर्माण का संदेश दे रहे थे जो पूर्णतः गाँधी जी के राम राज्य के अनुकूल हो, यही कारण है कि उनके नाटकों में जहाँ एक ओर गाँधी के उदांत आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश है वही

1. विदा : पृ0–5
2. स्वप्न भंग : पृ–117
3. आहुति : पृ–26

गाँधीवादी मानववाद एवम् समतामूलक गाँधीवाद के सिद्धांत भी अनेक स्थलों पर देखने को मिल जाते है। महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता की लड़ाई में मानवता को प्रमुख स्थान दिया था। उन्होंने धार्मिक साम्प्रदायिक एकता, जातीय एकता, राष्ट्रीय एकता की भावना पर विशेष बल दिया। उन्होंने बसुधैब कुटुम्बकम की भावना को बढ़ावा देते हुए विश्व बन्धुत्व की भावना का प्रतिपादन किया। प्रेमी जी भी इस मानवता की भावना से अछूते नहीं रहे। प्रेमी जी का विचार था कि संसार आज महाविनाश की ओर जा रहा है। इस महाविनाश को रोकने का एक ही उपाय है गाँधीवादं भारत का विकास भी गाँधीवादी मार्ग पर चल कर एक ही हो सकता है। प्रेमी जी के ही शब्दों में– "एक बात स्पष्ट है कि शस्त्रों द्वारा जो विजय प्राप्त की जाती है, उससे शत्रुता समाप्त नहीं होती। इसलिए प्रेम की, अहिंसा की शक्ति से ही एक स्थायी विजय प्राप्त कर सकते है। गाँधी जी का मार्ग ही संसार को महाविनाश से बचा सकता है। यह निर्विवाद है कि भारत को बाहरी आक्रमण के साथ अनेक आन्तरिक संघर्ष करने है और आन्तरिक संघर्षों में हमे अहिंसा के मार्ग द्वारा ही विजय प्राप्त करनी है।

स्पष्ट है कि प्रेमी जी आन्तरिक संघर्षों को सुलझाने में गाँधीवाद–अहिंसा को ही सक्षम मान रहे थे। आन्तरिक संघर्षों में साम्प्रदायिक संघर्ष उस समय पर भी बड़ी समस्या थी। साम्प्रदायिकता के साथ ही, भारतीय समाज की अनेक विकृतियाँ सर उठाए खड़ी थी इनमें छुआछूत, दहेज समस्या, नारी शोषण, दलित उत्पीड़न आदि की समस्याएँ भी प्रमुख थी। प्रेमी जी ने इन समस्याओं के समाधान भी गाँधीवाद में से देखते हुए उनको प्रमुखता से अपने नाटकों में रेखांकित किया है। साम्प्रदायिकता की समस्या को प्रमुख समस्या मानते हुए उन्हें प्रेमी जी 'स्वप्न भंग' नाटक में लिखा था– "आज यह पराधीनतापाश से मुक्त है किन्तु उसके कुत्सित संस्कार अब भी इसके प्राणों में बसे हुए है। इन कुत्सित संस्कारों में से इन्हें–साम्प्रदायिक विद्वेष, जिसे दूर करने के प्रयत्न में महात्मा गाँधी जैसे महामानव को भी प्राणों की आहुति देनी पड़ी।"[1] इसी साम्प्रदायिक विद्वेष से लड़ने के लिए प्रेमी जी ने अपने अधिकांश नाटकों में साम्प्रदायिक स्वहार्द को विशेष स्थान दिया।

रक्षा बन्धन में हुमायूँ और कर्मवती का भाई बहन का रिश्ता, शतरंज के खिलाड़ी में रत्न सिंह और महबूब खाँ के सम्बन्ध इत्यादि द्वारा प्रेमी जी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता पर बल दिया। महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने इसके लिए नाटक के कथानक इतिहास से लेकर यह सिद्ध किया कि इतिहास में ऐसे वैमनस्य नहीं थे। अनेक सम्वादों द्वारा भी उन्होंने यही प्रतिपादित करने का प्रयास किया, उदाहरणार्थ रक्तदान में बहादुर शाह जफर का अपनी पत्नी से यह कहना– "मुगल राजवंश में कौन ऐसा है जो हिन्दू नहीं है। हमारी माँ हिन्दू थी। सम्राट शाहजहाँ और सम्राट

1. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी

जहाँगीर की माताएँ हिन्दू थी। हमारी रगो में हिन्दू रक्त उसी प्रकार प्रवाहित है जिस प्रकार मुगल। फिर एक हिन्दुस्तान में जन्म लेने के कारण कम से कम हिन्दू तो हम है ही।"[1] इसी प्रकार स्वप्न भंग में छत्रशाल का यह कथन "मनुष्य न हिन्दू है न मुसलमान।"[2] इसी प्रकार के अनेक कथन साम्प्रदायिक एकता को प्रतिपादित करने वाले है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय एकता, छुआछूत की भावना, दलितो के प्रति करुणा के भाव भी अनेक नाटकों मे प्रतिबिम्बित है।

'प्रेमी जी एक आदर्श भारत का रूप हृदय में संजोये थे और यह आदर्श भारत वही था जो गाँधी जी के सपनों का भारत था। जहाँ ऊँच–नीच न हो, जहाँ छुआछूत न हो, जहाँ दलितों के प्रति अन्याय न हो, जहाँ सबको न्याय मिले, जहाँ धर्म, जाति, सम्प्रदाय के नाम पर विद्वेष न हो। जहाँ सभी अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए त्याग की भावना से, सेवा भाव से परिपूर्ण हो। निश्चित ही ऐसा भारत वह भारत हो।' जहाँ सभी सुखी हो, सभी निरोगी हो और सभी कल्याण पर चलने वाले हो। यहीं कारण है कि प्रेमी जी के नाटकों में गाँधीवाद प्रत्यक्ष एवं परोक्षरूप से चित्रित हुआ है। श्री सुरेश चन्द्र गुप्त ने प्रेमी जी के नाटकों की विशेषता बताते हुए लिखा है– "प्रेमी जी के नाटकों में राष्ट्रीय और नैतिक चेतना के प्रतिपादन की ओर मुख्य ध्यान दिया गया हैं। उन्होंने सामाजिको के आचार नियमन की ओर प्रेरित नाट्य रचना को आवश्यक मानते हुए जीवन को कुछ निश्चित आदर्शो से समनवित रख कर उपस्थित रहने पर बल दिया है। इस दृष्टि से उन्होंने मानव जीवन के कर्तव्य पक्ष की ओर विशिष्ट ध्यान दिया है।"[3]

निसंदेह प्रेमी जी के नाटकों में मानव जीवन के कर्तव्य पक्ष की ओर विशिष्ट ध्यान दिया गया है और वह भावना प्रेमी जी ने की है। महात्मा गाँधी के विचार दर्शन से ही ग्रहण की है। महात्मा गाँधी आचरण की पवित्रता पर विशेष बल देते थे तथा वे चाहते थे कि– कथनी और करनी में कोई भेद न हो तभी व्यक्ति स्वयं आचरणवान होकर राष्ट्र को समुन्नत कर सकता है। यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि प्रेमी जी भी एक आदर्श राष्ट्र के निर्माण के लिए गाँधी जी के आदर्शों पर व्यक्ति को चलाना चाहते थे। यह संदेश उनकी प्रत्येक नाट्यकृति में दृष्टिगोचर होता है। इस संदर्भ में प्रेमी जी ने स्वयं लिखा भी है– "इस बहुत बलिदानों के पश्चात् प्राप्त की हुई स्वतंत्रता की रक्षा करनी है। अपनी दुर्बलताओं को दूर करना है और देश को सुखी और सहृदय बनाना है। यह तभी सम्भव है जब

---

1. रक्तदान : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–15
2. स्वप्न भंग : हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–80
3. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी (भारतीय नाट्य साहित्य सम्पादक नगेन्द्र में संकलित) ...... श्री सुरेश चन्द्र गुप्त, पृ0–367

हम एकता के सूत्र में बंधकर देश के उत्थान में जुट जायें। महात्मा गाँधी ने देश की एकता की रक्षा के लिए प्राण दे डाले। भारत सब वर्गों, जातियों एवं धर्मों का है। सब में भाईचारा होना चाहिए, सबको समान सुविधाएँ और अधिकार प्राप्त होने चाहिये और सब राष्ट्रीयता की भावना से एक सूत्र में बंधे रहना चाहिये। यही गाँधी जी की कामना थी। मैंने अपने कुछ नाटकों के द्वारा उनकी इस कामना को सफल बनाने की दिशा में थोड़ा सा योगदान दिया है।"[1]

1. विदा : (प्रस्तावना), हरिकृष्ण प्रेमी, पृ0–3 और 4

सहायक प्रमुख ग्रन्थों की सूची

(अ) प्रेमी जी का साहित्य

क्रमांक	
1. अमर आन	नाटक
2. अमर बलिदान	नाटक
3. अग्नि परीक्षा	नाटक
4. अमृत पुत्र	नाटक
5. अनन्त के पथ पर	काव्य
6. आहुति	नाटक
7. आन का मान	नाटक
8. उद्धार	नाटक
9. कीर्ति स्तम्भ	नाटक
10. छाया	नाटक
11. जादूगरनी	काव्य
12. नई राहें	नाटक
13. प्रकाश स्तम्भ	नाटक
14. प्रतिशोध	नाटक
15. पाताल विजय	नाटक
16. बन्धु मिलन	नाटक
17. बन्धन	नाटक
18. बादलों के पार	एकांकी
19. भग्न प्राचीर	नाटक
20. भाई–भाई	नाटक
21. मेरे प्रेरणा के स्रोत	निबन्ध
22. ममता	नाटक
23. रक्षा बन्धन	नाटक
24. रक्त रेखा	नाटक
25. विषपान	नाटक
26. विदा	नाटक
27. शिवा साधना	नाटक
28. शतरंज के खिलाड़ी	नाटक
29. शक्ति साधना	नाटक

30. शपथ — नाटक
31. शीशदान — नाटक
32. समाजसुधार के लिए मेरे संघर्ष — नाटक
33. स्वप्न भंग — नाटक
34. स्वर्ण विहान — गीत नाटिका
35. संरक्षक — नाटक
36. संवत् प्रवर्त्तन — नाटक
37. साँपों की सृष्टि — नाटक

(ब) अन्य ग्रन्थ

38. अहिंसक समाजवाद की ओर — मो0 क0 गाँधी
39. अहिंसा और सत्य — गाँधी जी
40. आत्मकथा — गाँधी जी
41. आधुनिक राजनीतिक चिन्तन — हरिदत्त वेदालंकार
42. आधुनिक हिन्दी विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव — हरिकृष्ण पुरोहित
43. ईशावास्योपनिषद्
44. काँग्रेस का इतिहास — डॉ0 बी पट्टामि सीतारमैया
45. कलेक्ट्रेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी
46. गाँधी जी की चुनौती कम्युनिज्म को — गोपीनाथ दीक्षित
47. गाँधी जी और साम्यवाद — मशरूवाला
48. टूटते परिवेश — गोविन्द चातक
49. दी फिलॉस्फी ऑफ महात्मा गाँधी — गोपीनाथ धवन
50. धर्म–नीति–दर्शन — महात्मा गाँधी
51. नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी — विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक'
52. पांतजलि योगदर्शन — भाष्यकार–श्री राम शर्मा
53. बापू की सीख — गाँधी जी
54. भारतीय सवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास — डॉ0 रघुवंशी
55. भारतीय राजनीतिक चिन्तन — डॉ0 पुखराज जैन
56. भारतीय अंग्रेजी राज्य के दो सौ वर्ष — केशव कुमार ठाकुर
57. भारत का इतिहास — क्रोआअन्तोनोवा एवं लेविन क्रोतोस्की
58. भारतीय नाट्य साहित्य — डॉ0 नगेन्द्र
59. महात्मा गाँधी का दर्शन — अनुवादक : रामजी सिंह

60. महादेव भाई की डायरी : खण्ड–5
61. मंगल प्रभात — गाँधी जी
62. राष्ट्रीयता और साम्यवाद — आचार्य नरेन्द्रदेव
63. साहित्य के मूल्य — डॉ0 देवेन्द्र ठाकुर
64. साहित्यिक निबन्ध — डॉ0 गणपति चन्द्र गुप्त
65. सेठ गोविन्द दास एक सफल साहित्य सृष्टा — गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश'
66. संस्कृति के चार अध्याय — रामधारी सिंह 'दिनकर'
67. सत्याग्रह मीमांसा — गाँधी जी
68. हरिकृष्ण प्रेमी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व — डॉ0 विमला कुमारी मुंशी
69. हिन्दी नाटक कार — प्रो0 जयनाथ 'नलिन'
70. हिन्दी नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव — डॉ0 श्रीपति शर्मा
71. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ — डॉ0 जयकिंशन खण्डेलवाल
72. हिन्दी स्वराज्य — गाँधी जी
73. हिन्दी कहानी : पहिचान और परख — इन्द्रनाथ मदान
74. हिन्दी साहित्य का इतिहास — आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
75. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली : भाग–3
76. हिन्दू धर्मभिमानी महात्मा गाँधी — जगदम्बा प्रसाद वर्मा
77. हिन्दी नाटक और रंग मंच पहिचान — गोपाल कृष्ण कौल
78. श्रीमद भगवत् गीता — गीता प्रेस गोरखपुर

(स) पत्र पत्रिकाएँ

1. इण्डियन ओपेनियन पत्र
2. गुजराती नवजीवन पत्र
3. यंग इण्डिया पत्र
4. बापू के पत्र मीरा के नाम
5. बापू के पत्र बीबी अगतुस्सलाम के नाम
6. मनोरमा ईयर बुक
7. महात्मा गाँधी जीना पत्रो (गुजराती पत्र)
8. साप्ताहिक हिन्दुस्तान : ऊषा चौकसे
9. हरिजन पत्र
10. हरिजन बन्धु पत्र
11. हरिजन सेवक पत्र